मार्गशीर्ष, ३०६ तुलसी-संवत्

संपादक

पं० कृष्णविहारी मिश्र—श्रीप्रेमचंद—पं० रामसेवक त्रिपाठी
बी०ए०,एल्-एल्०बी०

वार्षिक मू० ६॥)
छमाही मू० ३॥)

Newul Kishore Press, Lucknow.

विदेश के लिये—
वार्षिक ६)
एक प्रति का मू० ॥=)

"हिज़ मास्टर्स वायस"

माडेल नं० १०१ (पार्टेबल)

नाप १६¼ × ११¼ × ५ इंच

नये प्रकार का "हिज़ मास्टर्स वायस" भीतरी हार्न, गोलीदार साकिट के साथ, नये प्रकार का आवाज़ बढ़ानेवाला टोन-आर्म नया आविष्कृत "हिज़ मास्टर्स वायस" नं० ४ साउंड बॉक्स, मज़बूत और हलकी बनावट, नाना प्रकार के रंग और सजावट, चमड़े का हैंडल, किनारों पर सुन्दर निकिल और एनामिल किए हुए पुरज़े जड़े हैं। तले में रबड़ के पाये, जो बॉक्स को फिसलने से बचाते हैं, लगे हुए हैं।

सिंगल स्प्रिंगवाला मोटर। १० इंच टर्नटेबुल, जिस पर १२ इंच के रिकार्ड भी बजाये जा सकते हैं। कम और ज्यादा चाल दिखलानेवाला आला। सुइयाँ रखने का प्याला। टंगस्टाइल सुइयों की डिब्बी रखने के लिये स्प्रिंगदार क्लिप, ढकने में छः रेकार्ड रखने के लिये जगह रखा हुआ है।
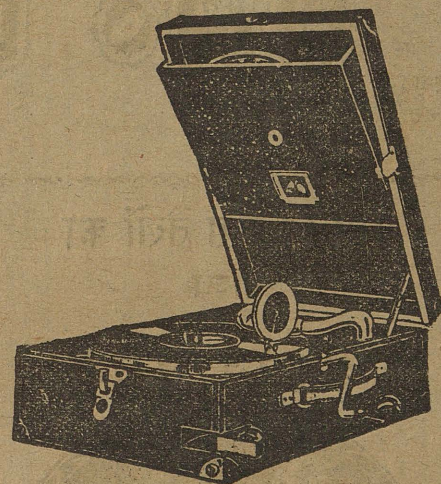
नं० १०१ काले वाटरप्रुफ़ चमड़े के ऐसे कपड़े से सजा हुआ। मूल्य २५) रुपये।

हमारे अधिकार-प्राप्त डीलरों से ख़रीदें।

दि ग्रामोफोन कम्पनी लिमिटेड

पोस्टबॉक्स नं० ४८, कलकत्ता

नं० २८, रामपर्ट-रोड, बम्बई

३॥।-) एक दर्जन दाद की दवा पर १९९ खिलौने इनाम
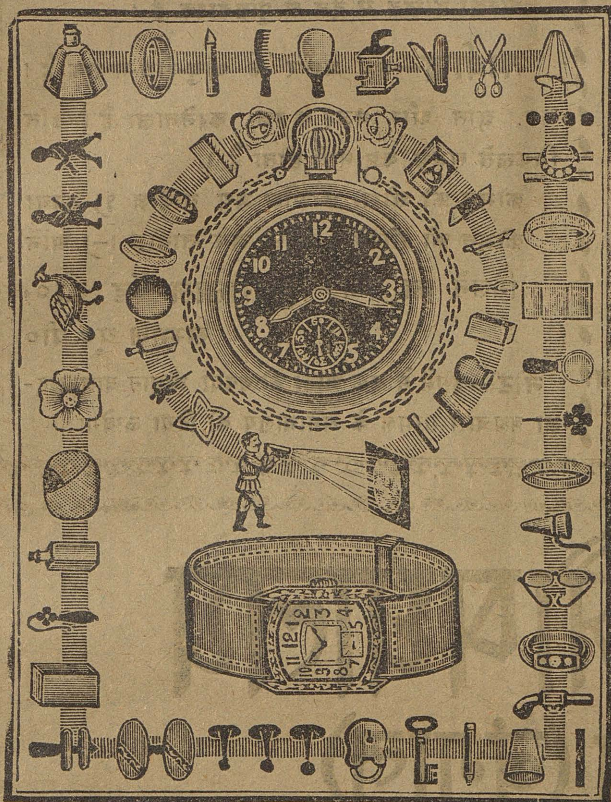
फैशनेबुल अनवर्किंग रिस्टवाच और यूज़लेस ब्यूटी पाकेट वाच [मुफ्त इनाम] दिल भावन काट छाट खूबसूरती और मजबूती की [गारंटी ३ वर्ष] नया पुराना खराब से खराब दाद क्यों न हो, २४ घंटे में जड़ मूल से मिटा देती है। १२ डिब्बी दाद दवा की कीमत सिर्फ ३॥।-) और साथ में १९९ खिलौने इनाम जाते हैं। इनामी चीज़ों के नाम फैशनेबुल किलाना रिस्टवाच, अँगूठी, शीशा, रूमाल, वायस्कोप, तसवीर, इत्र की शीशी, गले के ४ बटन, हाथ का बटन, नाक फूल, सेफ्टी पिन, गोली, तैल, शीशी, नगदार अँगूठी, माऊथ हारमोनियम, गेंद, दवात, पेपरपिन, रिंग, ताश, फीता, शीशी, निब, पेंसिल, किलिप, अष्टधातु अँगूठी, मनीबेग, नगीनेदार सेफ्टी पिन, कैंची, होल्डर, बत्तक, चिड़िया, जापानी खिलौना, छोटा खिलौना, घड़ी की चैन, चाबी, पेंसिल, पिस्तौल, छर्रा, ऐठनदार नगीनेवाली अँगूठी, अक्षर मिटाने का रबर, कंघा, चाय या दूध छानने की चलनी, कान का फूल, फाउंटपेन, किलिप, कान के बुंदे, तसवीर, फाउंटपेन, मर्दानी कंघी, ६४ तसवीरवाला वायस्कोप, अनवर्किंग, पाकेटवाच, सुईज बंडल, पेपरकिलिप, १४४ वाटरिंग पिक्चर, डाकव्यय, पैकिंग आदि १) रु०।

पता—लंडन वाच एंड औक्सफोर्ड कंपनी,

नं० १, राजारास्ता हाट खोला, कलकत्ता

हास्य-रस की अनूठी पुस्तक
मधुमेही लेखक
बेकार वकील
विज्ञापनयुग का
सफल नवयुवक
सिद्धांती
आलस्य-भक्त
आफ़त का मारा
दार्शनिक
ठलुआ-क्लब
गुलाबराय
निराश कर्मचारी
समालोचक
प्रेमी वैज्ञानिक
यह पुस्तक क्या है, हँसी का हज़ारा, ख़बरों का ख़ज़ाना, मनोरंजन का मसाला। एक बार हाथ में लीजिए, फिर क्या मजाल कि आप इसका सब रस सुड़के बिना इसे छोड़ दें। दावे के साथ कहा जा सकता है कि पाठक इस पुस्तक को हाथ में लेकर भूख-प्यास तक भूल जाता है। ऐसी मनोरंजन और गुदगुदी उत्पन्न करनेवाली भाषा में लिखी गई है कि लेखक की लेखनी चूम लेने का जी चाहता है। व्यंग्य और विनोद का सच्चा आनंद लेना हो, तो इसे एक बार अवश्य पढ़िए। मूल्य केवल ॥)
मिलने का पता—बुकडिपो, नवलकिशोर-प्रेस, लखनऊ

विनय-पत्रिका
(सटीक)

टीकाकार—
अनेक ग्रंथों के रचयिता और रामचरित-
मानस की सुप्रसिद्ध बालबोधिनी
टीका करनेवाले
पंडित सूर्यदीनजी शुक्ल

इसमें मूल-कविता के साथ शब्दार्थ भी दिए गए हैं। पदच्छेद भी है। वेदांत और भक्ति के ग्रंथों का आशय लेकर प्रमाण के साथ, प्रत्येक भजन का भावार्थ भी दिया गया है। टीका ऐसे ढंग से की गई है कि थोड़े पढ़े-लिखे भी बड़ी सुगमता से इसका अर्थ समझ सकें। विद्यार्थियों के लिये तो यह अपने ढंग की सर्वोत्तम है।

मूल्य सजिल्द १॥)

दृष्टि-कूट
(सटीक)

टीकाकार—
सरदार कवि

महात्मा सूरदास के कूटों से भला कौन अपरिचित होगा। ये इतने कठिन हैं कि बड़े-बड़े पढ़े-लिखों की बुद्धि भी इनका अर्थ लगाने में चकरा जाती है। कूटों के देखने ही से सूरदासजी की विद्वत्ता और प्रगाढ़ पांडित्य का पता लगता है कि इन्होंने इनकी रचना में कितना परिश्रम किया होगा। हर कोई इसे आसानी से नहीं समझ सकता। अतः हमने साहित्य-सेवियों की सुविधा के लिये कविवर सरदार कवि-कृत छंदोबद्ध टीका-सहित यह दृष्टि-कूट प्रकाशित किया है। टीका की भाषा बड़ी सरल और सुबोध है। प्रत्येक साहित्य-सेवी को तो इसकी एक प्रति अवश्य अपने पास रखनी चाहिए। मूल्य ।≈)

सब प्रकार की पुस्तकें मिलने का पता—
मैनेजर—बुकडिपो, नवलकिशोर-प्रेस, लखनऊ

साहित्य-सुमन-माला के

स्थायी ग्राहकों के नियम

(१) स्थायी ग्राहक-सूची में नाम लिखानेवाले सज्जनों को प्रवेश-शुल्क के ॥) पेशगी भेजने पड़ेंगे।

(२) स्थायी ग्राहकों को माला में प्रकाशित सभी ग्रंथ पौने मूल्य पर दिए जावेंगे। प्रत्येक ग्राहक ग्रंथ-माला की प्रकाशित पुस्तकों की प्रतियाँ अपनी इच्छानुसार एक से अधिक हर समय मँगा सकते हैं।

(३) नवीन पुस्तकों के प्रकाशित होने पर सूचना दी जायगी। १५ दिन तक पत्रोत्तर का आसरा देखकर वी० पी० लेना स्वीकार समझकर पुस्तकें वी० पी० से भेज दी जायँगी। पुस्तकें यथासाध्य ४-५ एक साथ भेजी जायँगी, जिससे ग्राहकों को डाक-ख़र्च की बचत होगी।

(४) नवीन पुस्तकों में ग्राहकों को सभी पुस्तकें लेना आवश्यक नहीं है। यह उनकी इच्छा पर निर्भर है। परंतु वर्ष-भर में कम-से-कम ५) की पुस्तकें लेना प्रत्येक ग्राहक को आवश्यक है।

(५) जिस ग्राहक के यहाँ से दो बार वी० पी० वापस लौट आएगी, उसका नाम स्थायी ग्राहक-सूची से पृथक् कर दिया जायगा।

(६) स्थायी ग्राहकों को नवलकिशोर-प्रेस से प्रकाशित हिंदी और उर्दू-पुस्तकें (रीडरों को छोड़कर) पौने मूल्य पर दी जायँगी।

नोट—हमारी प्रकाशित पुस्तकों का सूचीपत्र सूचना मिलने पर मुफ़्त भेजा जाता है।

आदेश-पत्र

सेवा में—

व्यवस्थापकजी, बुकडिपो, नवलकिशोर-प्रेस, लखनऊ.

प्रिय व्यवस्थापकजी,

आपकी ग्रंथ-माला के उद्देश्य और विशेषताएँ, स्थायी ग्राहकों के नियम और आपकी प्रार्थना पढ़ ली। आपकी ग्रंथ-माला का स्थायी ग्राहक बनना चाहता हूँ। कृपया मेरा नाम स्थायी ग्राहक-सूची में लिख लीजिए। प्रवेश-शुल्क के ॥) मनीऑर्डर से भेजता हूँ / पहली वी० पी० में जोड़ लीजिए और नवीन पुस्तकें जो भी इस ग्रंथ-माला में प्रकाशित हों, उसकी सूचना नियमानुसार भेजते रहिए।

योग्य सेवा लिखिएगा।

भवदीय

[हस्ताक्षर कीजिए]

मेरा पता

____

____

____

[नोट—नाम और पता साफ़-साफ़ अक्षरों में लिखने की कृपा कीजिए]

लेख-सूची

کارروائي حسب آرڈر ٥ قاعدہ ٢٠ ضابطہ ديواني

سمن بغرض انفصال مقدمہ

مقدمہ نمبري ۲۴۹ سنہ ۱۹۲۹ع

بعدالت جناب منصف صاحب بہادر کنڈہ مقام پرتاب گڑھہ

لالہ رامچندر ولد نتھورام کھنڈیل وال ساکن منکندرو گنج پرگنہ پرتابگڑہ — مدعي

بنام بابو جگناتھہ سنگہ ولد بابو مادھو سنگہ قوم ٹھاکر ساکن ڈھڈھوئي پرگنہ و تحصيل پٹي ضلع پرتابگڑہ — مدعاعليہ

بنام † بابو جگناتھہ سنگہ ولد بابو مادھو سنگہ قوم ٹھاکر سکن موضع ڈھڈھوئي پرگنہ و تحصيل پٹي ضلع پرتابگڑہ

ہرگاہ مدعي نے تمھارے نام ايک نالش بابت ۵۱۹ روپيہ ۱۵ آنہ کے دائير کي ہے لہذا تم کو حکم ہوتا ہے کہ تم بتاريخ ۲۷ ستائيس ماہ جنوري سنہ ۱۹۳۰ع بوقت ۱۰ دس بجے اصالتاً يا معرفت وکيل کے جو مقدمہ کے حال سے قرار واقعي واقف کيا گيا ہو اور جو کل امور اہم متعلقہ مقدمہ کا جواب دے سکے يا جس کے ساتھہ کوئي اور شخص ہو جو جواب ايسے سوالات کا دے سکے حاضر ہو اور جوابدہي دعوي مدعي مذکور کي کرو اور ہرگاہ وہي تاريخ جو تمھارے احضار کے لئے مقرر ہے واسطے انفصال قطعي مقدمہ کے تجويز ہوئي ہے پس تم کو لازم ہے کہ اپنے جواب دعوي کي تائيد ميں جن گواہوں کی شہادت پر يا جن دستاويزات پر تم استدلال کرنا چاہتے ہو اسي روز ان کو پيش کرو *

مطلع رہو کہ اگر بروز مذکور تم حاضر نہ ہوگے تو مقدمہ بغير حاضري تمھارے مسموع اور فيصل ہوگا *

آج بتاريخ ۳ ماہ جنوری سنہ ۱۹۳۰ع ميرے دستخط اور مہر عدالت سے جاري کيا گيا *

جج

وقت حاضري بدفتر منصفي کنڈہ ۱۰ دس بجے سے ۴ چار بجے تک *

† يہاں پورا پتہ درج کرو *

‡ نقل عرضي دعوی يا مختصر بيان نوعيت دعوی يا جيسي صورت ہو (حسب قاعدہ ۱ آرڈر ٥ مجموعہ ضابطہ ديواني) *

चित्र-सूची

१—रंगीन

२—व्यंग्य-चित्र

سمن بغرض قرار داد امور تنقیح طلب

مقدمہ نمبر ۵۳۱ سنہ ۱۹۲۹ع

عدالت جناب بابو تربنی پرشاد صاحب بہادر منصف فتحپور مقام بارہ بنکی

دلجیت سنگھ ولد سبکرن سنگھ قوم ٹھاکر ساکن بہر کندا پرگنہ محمد پور ضلع بارہ بنکی — مدعی

بنام

مہنت اونکارداس وغیرہ

بنام {

۱—مہنت اونکار داس عمر تخمیناً ۴۰ سال چیلہ مہنت اودت نراین داس قوم فقیر نانک ساہی بھگوتال پرگنہ فتحپور تحصیل فتحپور ضلع بارہ بنکی — مدعاعلیہ

۲—رام کشن سنگھ عمر تخمیناً ۴۷ سال ولد چندی ، سنگھ قوم ٹھاکر ساکن بہر کندا پرگنہ محمد پور تحصیل فتحپور ضلع بارہ بنکی — مدعاعلیہ

واضح ہو کہ مدعی نے تمہارے نام ایک نالش بابت دلاپانے مبلغ ۱۱۱ روپیہ ۱۴ آنہ ۱۱ پائی کے دائیر کی ہے لہذا تم کو حکم ہوتا ہے کہ تم بتاریخ ۷ سات ماہ فروری سنہ ۱۹۳۰ع بوقت ۱۰ بجے پر اصالتاً یا معرفت وکیل کے جو مقدمہ کے حال سے قرار واقعی واقف کیا گیا ہو اور جو کل امورات اہم متعلقہ مقدمہ کا جواب دے سکے یا جس کے ساتھ کوئی اور شخص ہو جو جواب ایسے سوالات کا دے سکے حاضر ہو اور جوابدہی دعوی مدعی مذکور کی کرو اور تم کو ہدایت کی جاتی ہے کہ جملہ دستاویزات کو جن پر تم بتائید اپنی جوابدہی کے استدلال کرنا چاہتے ہو پیش کرو *

مطلع رہو کہ اگر بروز مذکور تم حاضر نہ ہوگے تو مقدمہ تمہاری غیر حاضری میں مسموع اور فیصل ہوگا *

آج بتاریخ ۱۱ ماہ جنوری سنہ ۱۹۳۰ع میرے دستخط اور مہر عدالت سے جاری کیا گیا *

جج

تنبیہہ—اگر بیانات تحریری کی ضرورت ہو تو لکھنا چاہئے کہ تم کو (یا فلاں فریق کو یعنی جیسی کہ صورت ہو) حکم دیا جاتا ہے کہ بیان تحریری بتاریخ ۲۷ ماہ جنوری سنہ ۱۹۳۰ع تک گذرانو *

اگر کوئی عدالت بموجب آرڈر ۵ قاعدہ ۳ مجموعہ ضابطہ دیوانی مدعاعلیہ کی اصالتاً حاضری کی ضرورت سمجھے تو فارم (۱-O) (یا ۲-O) استعمال کرے اور محض الفاظ " یا معرفت وکیل کے جو مقدمہ کے حال سے قرار واقعی واقف کیا گیا ہو اور جو کل امور اہم متعلقہ مقدمہ کا جواب دے سکے یا جس کے ساتھ کوئی اور شخص ہو کہ جواب ایسے سوالات کا دے سکے " قلمزد کردے *

---

† نقل عرضی دعوی یا مختصر بیان نوعیت دعوی یا جیسی صورت ہو (حسب قاعدہ ۲-آرڈر ۵-مجموعہ ضابطہ دیوانی) *

وقت حاضری بدفتر ۱۰ بجے سے ۴ بجے تک *

अटल शिवाजी

अटल रहे हैं दिग्ग अंतनि के भूपधरि रैय्यत को रूप निज देश पेश करिकै ;
राना रह्यो अटल बहाना करि चाकरी को बाना तजि भूषण भनत गुण भरिकै ।
हाड़ा राठौ रहे कच्छवाहे गौर और रहे अटल चकत्ता की चमाऊ धरि डरिकै ;
अटल शिवाजी रह्यो दिल्ली को निदरि धीर धरि ऐड़ धरि तेग धरि गढ़ धरिकै ॥

'भूषण'

अध्यक्ष—श्रीविष्णुनारायण भार्गव

वर्ष ८
खंड १

मार्गशीर्ष, ३०६ तुलसी-संवत् (१९८६ वि०)

संख्या ५
पूर्ण संख्या ८९

वृंदावन

दैहै कोऊ गारी और तारी दै हँसैगो कोऊ,
कोऊ देखि दूरि हीं तैं बावरो बताइहै ;
कोऊ कहै धूरि डारौ कोऊ कहै डेल मारौ,
कोऊ करि दया परि बीच मैं बचाइहै।
मुरली मुकुट पीतपट वारो साँवरो सो,
सुंदर सरूप आय हिय मैं समाइहै ;
लागिहै लपटि ब्रजरज बीर अंग ऐसे,
बृंदावन-बीथिन मैं बुद्धि कब जाइहै।

वीर कवि

शिवाजी महाराज की वास्तविक जन्म-तिथि
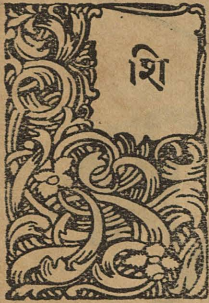
शिवाजी महाराज के जन्म-काल आधुनिक शास्त्रीय पद्धति से निश्चित करने का पहला प्रयत्न सुप्रसिद्ध श्रीयुत राजवाड़े ने उनतीस साल पूर्व शक १८२२ (सन् १९००) में किया। लोकमान्य बाल-गंगाधर तिलक ने "केसरी" में एक लेख लिखकर उसी समय उनकी पद्धति की शास्त्र-विशुद्धता की प्रशंसा की। उस समय के पूर्व से ही शिवाजी महाराज की जन्म-तिथि सामान्यतः वैशाख शुद्ध २, शक १५४९ (सन् १६२७) मानी जाती थी। उस समय भी उनकी जन्म-तिथि के संबंध में एक मत न था। श्रीयुत राजवाड़े उनकी जन्म-तिथि वैशाख शुद्ध पंचमी मानते थे, लोकमान्य तिलक वैशाख शुद्ध प्रतिपदा और सर्वसाधारण वैशाख शुद्ध द्वितीया। ऐसा मतभेद होने का कारण यह था कि उस समय इस प्रश्न का निर्णय करने के लिये जो प्रमाण उपलब्ध था, वह अपूर्ण और अविश्वसनीय था।

पूर्व-इतिहास

इसके सोलह साल बाद भारत-इतिहास-संशोधक मंडल के चतुर्थ सम्मेलन के समय लोकमान्य तिलक ने 'जेधे-शकावली' उपस्थित की। इस कारण उनके वास्तविक जन्म-तिथि-संबंधी झगड़े के निर्णय का योगायोग प्राप्त हुआ। वास्तव में यह योग नव-दस वर्ष पूर्व ही प्राप्त हुआ होता; क्योंकि स्वर्गवासी दयाजीराव सर्जेराव उर्फ़ दाजी साहब जेधे देशमुख ने यह शकावली, शक १८२८ (सन् १९०६) में, लोकमान्य के अधीन की थी। परंतु लोकमान्य पर कारा-गृह-वास का प्रसंग इस समय आ जाने के कारण यह शका-वली उनके छूटकर आने तक प्रकाशित न हो सकी। इसी प्रकार श्रीयुत राजवाड़े को भी होनप देशपांडे के पुस्तक-संग्रह में एक शकावली मिली। वह सन् १९१४ में छापी गई। उसमें भी 'जेधे-शकावली के समान' शिव-चरित्र की सूक्ष्म मितियाँ दी हैं। उसमें भी शिव-जन्म-तिथि जेधे-शकावली के समान होनी चाहिए, यह बात हम आज उसकी दूसरी उपलब्ध प्रति से निश्चय-पूर्वक कह सकते हैं; परंतु श्रीयुत राजवाड़े को जो प्रति मिली थी, वह फटी हुई थी। उसमें प्रारंभ का भाग नहीं था। इस कारण उसमें बताई शिव-जन्म-तिथि ज्ञात न हो सकी।

वास्तविक तिथि का उदय

इस प्रकार होनप-शकावली के प्रारंभ का भाग फट जाने के कारण और लोकमान्य के कारागृह-वास से जेधे-शकावली के अप्रकाशित रह जाने के कारण, शिवाजी की वास्तविक जन्म-तिथि शक १८३८ (सन् १९१६) तक लोगों के सामने न रक्खी जा सकी। इस समय लोकमान्य ने यह लिखा कि प्रकाशित और अप्रकाशित बखरों में जन्म-तिथि के संबंध में बहुत ही मतभेद है, इस कारण इसके संबंध में जितना विचार होगा, उतना ही ठीक होगा। उस समय इससे अधिक वह कुछ भी न कर सके। कारण यह कि उस समय इस प्रश्न पर विचार करने के लिये जिस-जिस साधन-सामग्री की आवश्यकता थी, वह पूर्ण रूप से उपलब्ध न थी। तथापि जेधे-शकावली तथा उसमें बताई हुई शिव-जन्म-तिथि विश्वसनीय और सर्वमान्य होगी, यह बात श्रीसर-दार मेहेंदले और स्वर्गवासी पांडुरंग-नरसिंह पटवर्धन के ध्यान में आई थी; क्योंकि मूल शकावली को बारीकी से देखकर उसकी नक़ल करने और उसकी जाँच-पड़ताल करने का काम उन्हीं ने किया था। परंतु उस समय इस विषय पर पूर्ण विचार वह भी नहीं कर सके।

ऐतिहासिक तिथि-निर्णय का प्रश्न शास्त्रीय रीति से हल करने के लिये आभ्यंतर-प्रमाण और गणित के कुछ सूक्ष्म कोष्ठकों की ज़रूरत पड़ती है। इनके अभाव के कारण इसके संबंध में कुछ संतोष-जनक काम न हो सका। जेधे-मिति की यथार्थता विद्वानों को मान्य होने के लिये, उसके प्रकाशित होने के समय से, कुछ काल लगा। इसका कारण यह था कि उस समय आभ्यंतर-प्रमाण और गणित के साधन कुछ भी उपलब्ध न थे। यह कमी पूरी करने का श्रेय स्वर्गवासी गणपतराव खरे और श्रीयुत सदाशिवराव दिवेकर को है। खरे की 'शिवकालीन जंत्री' तैयार होने के समय से जेधे-शका-वली की मितियों तथा तत्कालीन योरपियन पत्रों और मुसलमानी लेखों में मिलनेवाली तारीख़ों के मिलान करने का काम शक्य हुआ। इसके शिवा श्रीयुत दिवेकर

ने 'शिवभारत' की प्रति की खोज की । अतएव शिव-जन्म-तिथि के लिये उत्तम प्रकार का आभ्यंतर-प्रमाण भी मिल गया। इन सब साधनों का उपयोग कर जेधे-मिति ग्राह्य समझनी चाहिए, इस बात के प्रतिपादन करने का पहला श्रेय श्रीयुत वासुदेव शास्त्री खरे को है। इसके बाद उनके मत के समर्थन करने का काम श्रीयुत चांदोरकर ने, सन् १९२१ में, किया । श्रीयुत ज० स० करंदीकर ने २०-५-२४ के केसरी में यह बात आम तौर पर प्रकाशित कर यह सूचना की कि अब से इसी तिथि को सत्य मानकर उत्सव करना चाहिए।

इसके सिवा श्रीयुत डिस्कलकर ने बंबई के रायल एशियाटिक सोसाइटी के फ़ोर्ब्स कलेक्शन को देखकर उसमें प्राप्त मिति भा० इ० सं० मंडल के सामने रक्खी। प्रसिद्ध ज्योतिर्विद् वें० बा० केतकर ने अनेक उल्लेखों के आधार पर साधारणतः शक-संवत् १५५१ (सन् १६३०) के पक्ष में मिलने-जुलनेवाला गणितमंडल के सामने रक्खा, और श्रीयुत दत्तात्रय-विष्णु आपटे ने जेधे-शकावली के वाक्यों का अर्थ करते समय, कौन-सी पद्धति स्वीकार करना और अनेक शंकाओं का किस प्रकार समाधान करना चाहिए, इसका विचार सम्मेलन के सामने उपस्थित किया। इस प्रकार भा० इ० सं० मंडल के सामने समय-समय पर आए हुए प्रमाण जिन-जिनको देखने को मिले, उन्हें जेधे-मिति की ग्राह्यता मान्य हो गई। उसके अनुसार शिव-जन्म-तिथि का उत्सव फाल्गुन-वदि तृतीया को मनाने की कल्पना रा० दिवेकर ने, रा० करंदीकर की सूचना के अनुसार, उपस्थित की। यह बात बहुतों को मान्य हो गई, और उसी के अनुसार शिवनेरी में पहला उत्सव मनाया गया।

आक्षेपक

किंतु बड़ौदे के कुछ विद्वानों ने, इस प्रश्न के संबंध में जल्दी हो रही है ऐसा जानकर वर्तमान पत्र और मासिक पत्रिकाओं द्वारा जेधे-तिथि के विरुद्ध आलोचना करना आरंभ कर दिया। श्री० सर देसाई, श्री० वाकसकर और श्री० दा० ना० आपटे ने बंबई के "नवाकाल", "लोकमान्य", "श्रीशिवाजी" और "केसरी" में अनेक लेख लिखकर यह बतला दिया कि जेधे-तिथि पर कितने ही आक्षेप हो सकते हैं।

जेधे-शकावली और शिवभारत के विरुद्ध आक्षेपकों के लूले आधार

आक्षेपकों ने बीस आधार उपस्थित किए हैं। पिछले सौ साल में जिन्होंने मरहटों का इतिहास या शिवाजी का चरित्र लिखा है, उन्होंने शिवाजी-जन्म का शक-काल १५४९ (सन् १६२७) ही माना है। यह बात बिलकुल सत्य है कि ऐसे लोगों की संख्या सैकड़ों में होगी । इसलिये शक १५४९ (सन् १६२७) के पक्ष में साक्षियों की संख्या बीस है या दो सौ है, यह बात महत्त्व की नहीं है। महत्त्व की बात यह है कि मुख्य प्रमाणभूत लेखक कौन-कौन हैं, और प्रामाणिक शास्त्रीय ग्रंथों की दृष्टि से उनकी इस विषय के लेखों की योग्यता क्या है ।

आधारभूत ग्रंथों की योग्यता स्थिर करते समय पहले यह भी निर्णय कर लेना होगा कि वे किस-किस काल के हैं। महाराष्ट्र के ऐतिहासिक काल के मुख्य तीन विभाग हो सकते हैं। पहला काल शिवकालीन याने शाहू के आगमन-पर्यंत का, दूसरा काल पेशवाई के अंत तक का याने सन् १८१८ तक का और तीसरा काल अँगरेज़ी-राज्य के आरंभ से। शिव-जन्म का प्रश्न शिवकालीन विभाग का है। इसलिये इस प्रश्न के निर्णय के लिये पेशवाई और अँगरेज़ी-काल के साक्षियों की अपेक्षा शिव-कालीन साक्षियों की विश्वसनीयता अव्वल दरजे की समझनी चाहिए। हमारे कहने का यह अर्थ नहीं कि उन दोनों काल के साक्षियों की ओर हम ध्यान ही न दें। यदि शिवकालीन और पेशवाईकाल की साक्षियाँ सामने आवें और उनके कथन में एक दूसरे से विरोध हो, तो समकालीनत्व के कारण शिवकालीन साक्षी की अधिक प्रामाणिकता मिलना स्वाभाविक ही है। इसके साथ यह बात भी ध्यान में रखनी चाहिए कि केवल समकालीन होने से ही साक्षी का कथन सब प्रकार से प्रमाणभूत नहीं होता । समकालीनत्व के सिवा साक्षी में अगाध ज्ञान, विश्वसनीयता और सुसंगति आदि गुणों का होना भी आवश्यक है। इस-लिये इन सब दृष्टियों से जेधे-पक्ष और आक्षेपक पक्षों की साक्षियों के बलाबल का निर्णय करते समय जिन-जिन बातों पर ध्यान रखना ज़रूरी है, वे नीचे लिखी जाती हैं—

वास्तविक जन्म-तिथि की साक्षियाँ	आक्षेपकों की साक्षियाँ
१. शिवकालीन हैं ।	१. शिवकालीन नहीं हैं, पेशवाई और अँगरेज़ी-काल की हैं ।
२. उनकी शिव-जन्म की एक-एक बात (याने शक-संवत्सर, मिति, दिन और नक्षत्र) गणित की कसौटी में बराबर उतरती है ।	२. एक की भी शिव-जन्म की मिति गणित की कसौटी में नहीं उतरती ।
३. उन्हें शिव-चरित्र की मितियों का पूर्ण ज्ञान है, और वे डेढ़ सौ से अधिक घटनाओं का काल ठीक बतलाती हैं ।	३. उन्हें शिव-चरित्र की मितियों की बात बिलकुल नहीं मालूम है । शिव-चरित्र की दस-बारह से अधिक मितियाँ उन्हें बिलकुल नहीं मालूम ।
४. उनके परस्पर कथनों में मेल मिलता है ।	४. परस्पर में मेल नहीं, इस कारण कुछ भी निश्चित नहीं कर सकते ।
५. उसमें सैकड़े दो से चार तक ग़लतियाँ हैं ।	५. उसमें सैकड़े दो से चार तक सत्य बातें हैं ।

साक्षियों के काल

शक-संवत् १५४९ के पक्ष की सभी साक्षियाँ पेशवाई या अँगरेज़ी-काल की हैं, शिवकालीन नहीं हैं । यह बात नीचे दर्शाई गई है—

आधारभूत ग्रंथों का काल-निर्णय—

ग्रंथ	काल	शक
१. रायरी-बखर	शक १६८२-९२	
२. ९१ कलमी-बखर		
३. तारीख़-ए-शिवाजी	उत्तर-पेशवाई काल के	१६९२-१७०२
४. प्रभानवल्ली-शकावली		१७२०
५. धड़फले-सूची		१७२९
६. चिटनीस-बखर		१७३२
७ भ० सा० छोटी बखर		१७३९
८ शिव-दिग्विजय		१७४०
९. नागपूर-भोंसले की बखर	अँगरेज़ी-काल के	१७४४
१०. छत्रपति-वंशावली-सूची		१७४४
११. शिवाजी-प्रताप		१७५१
१२. रामदासी शकावली		१७५३
१३. विजयदुर्ग की हक़ीक़त		१७५७
१४. पंतप्रतिनिधि की बखर		१७६६
१५. पंडितराव की बखर		१७७०
१६. शेडगाँवकर-बखर		१७७६
१७. भिड़े का इतिहास		१७८८

ऊपर की सूची में बहुतों के काल उस-उस ग्रंथ के अंत में दिए हुए हैं, इसलिये वे वाद-ग्रस्त नहीं हैं। परंतु यहाँ पर यह बतलाना ठीक होगा कि तीन-चार ग्रंथों का काल किस प्रकार से निश्चित किया गया ।

कहते हैं, 'शिव-दिग्विजय' ग्रंथ शक १६४० में लिखा गया है; परंतु यह ठीक नहीं है । उसका असली शक-काल १७४० (सन् १८१८) है। ज्योतिर्विद् शंकर बालकृष्ण दीक्षित ने इस बात को सिद्ध कर दिया है । श्रीयुत राजवाड़े ने भी इसी का समर्थन किया है । इसलिये इसके संबंध में अधिक विवेचन की आवश्यकता नहीं है ।

इक्यानबे कलमी-बखर, रायरी-बखर और तारीख़-ए-शिवाजी, तीनों क़रीब-क़रीब एक ही हैं । यह बात एक दूसरे का मिलान करने से सहज में मालूम हो जायगी। कई लोग समझते हैं कि वे शिवकालीन हैं, परंतु यह बात ठीक नहीं हैं ; क्योंकि इन्हीं तीन बखरों में व्यंकोजी के दो लड़कों का निर्वंश होकर तीसरे का याने तुकोजी का वंश बना रहा, ऐसी बात लिखी है। इससे हम निस्संदेह कह सकते हैं कि यह बखर पेशवाई काल की है ।

तारीख़-ए-शिवाजी नाम की बखर, फ़ारसी में होने पर भी, मराठी-बखर का भाषांतर है। उसमें भी यही लिखा है कि पहले दो निर्वंशी हुए, परंतु तुकोजी के एक पुत्र हुआ, जिसके वंशज अभी तक तंजोर में राज्य कर रहे हैं । इससे निश्चय-पूर्वक हम कह सकते हैं कि इसका रचना-काल सवाई माधवराव के समय का होना चाहिए ।

विश्वसनीयता की दृष्टि से यह फ़ारसी-ग्रंथ महत्त्व का नहीं है। उसमें फ़ालतू कथाएँ बहुत-सी हैं । यही बात बखर को प्रकाशित करनेवाले प्रो० यदुनाथ सरकार कहते हैं ।

बर्जेस-शकावली की मराठी-इतिहास-संबंधी तिथियाँ ग्रैंटडफ़ के ग्रंथ से ली गई हैं। ग्रैंटडफ़ ने इस बात में चिटनीस का आधार लिया है। इसलिये यदि चिटनीस के ग्रंथ पर विचार कर लिया गया, तो उसके बाद के और दूसरे ग्रंथों पर स्वतंत्र विचार करने की कोई ज़रूरत नहीं है।

इस प्रकार आक्षेपकों की कुछ साक्षी उत्तर-पेशवाई-काल की और २० में से शेष १३ तो अँगरेज़ी-काल की हैं। इसलिये डेढ़-दो सौ वर्ष पूर्व की घटनाओं का इतिहास बतलाते समय उनके हाथ से बहुत-सी ग़लतियाँ हुई होंगी, इसमें भी कुछ आश्चर्य की बात नहीं है।

गणित की कसौटी

श्रीयुत राजवाड़े ने यह बतलाया है कि तिथि-निर्णय के काम में कौन-सी कसौटी का उपयोग करना चाहिए। लोकमान्य ने उस कसौटी की उपयुक्तता भी स्वीकार कर ली है। काल-निर्णय के काम में शक, संवत्सर, महीना, तिथि, दिन और नक्षत्र आदिक अधिक-से-अधिक खुलासेवार हाल कोई दे और वह गणित की दृष्टि से ठीक निकले, तो वहाँ तिथि को सत्य और विश्वसनीय मानना अधिक न्याय-युक्त होगा।

इसी बात का खुलासा करने के लिये आक्षेपकों की १७ साक्षियों के कथन और उनके उत्तर यहाँ पर दे देना ठीक होगा। उससे उनके विधानों की असंगति सहज ही में ध्यान में आ जायगी। यह असंगति पहचानने के लिये यह जानना आवश्यक है कि शक १५४९ में 'प्रभव' संवत्सर था, और उस साल वैशाख शुद्ध द्वितीया को शनिवार था तथा उस दिन भरणी-नक्षत्र था। पंचमी को मंगलवार और आर्द्रा-नक्षत्र था।

बखरों के विधान	उत्तर
१. रायरी-बखर—(फ़ारेस्ट प्रति) राजवाड़े प्रति शक १५४८; १५४८ क्षय वैशाख शु० ५ चंद्रवार	१. शक, संवत्सर और दिन, तीनों ही ग़लत हैं।
२. इक्यानवे क़लमी-बखर, १५५९ क्षय वै० शु० ५ सोमवार.	२. शक, संवत्सर और दिन, तीनों ही ग़लत हैं।
३. तारीख़-ए-शिवाजी, शक १५४९ क्षय या जय वै० शु० ५.	३. संवत्सर ग़लत है, दिन दिया नहीं।
४. प्रभानवल्ली-शकावली, १५४९ विभव.	४. संवत्सर ग़लत है, महीना, तिथि और दिन दिया नहीं।
५. धड़फले यादी, १४४९ प्रभव वै० शु०	५. दिन और तिथि नहीं दी।
६. चिटनीस की बखर, १५४९ प्रभव वै० शु० २, गुरुवार.	६. तिथि का दिन से मेल नहीं।
७. रामदासी शकावली, १५४९ शक।	७. संवत्सर, तिथि और दिन कुछ भी नहीं दिया।
८. शिव-दिग्विजय, १५४९ प्रभव वै० शा, शु० २, गुरुवार, रोहिणी।	८. तिथि, दिन और नक्षत्र का मेल नहीं मिलता।
९. नागपूर के भोंसले की बखर, १५४९ प्रभव वै० शु० २, गुरुवार।	९. तिथि का दिन से मेल नहीं खाता।
१०. छत्रपति की वंशावली बद्ध यादी, १५४९ वै० शु० ५.	१०. संवत्सर और दिन नहीं दिया।
११. शिवप्रताप, १५४९ रक्ताक्षि।	११. संवत्सर ग़लत है, दूसरी बातें कुछ भी नहीं दी हैं।
१२. म० सा० छोटी बखर, १५४९ क्षय वै० शु० ५, सोमवार।	१२. संवत्सर और दिन ग़लत हैं।

१३. विजयदुर्ग की हक़ीक़त संभान अशरीन अलफ, १५४६ प्रभव वै० बहुल २। — १३. सुहूर सन् और पक्ष ग़लत हैं, दिन नहीं दिया।

१४. पंत प्रतिनिधि की बखर, १५४६ वै० शु० १५, सोमवार। — १४. तिथि और दिन ग़लत हैं।

१५. पंडितराव की बखर, १५४६ प्रभव। — १५. महीना, तिथि और दिन नहीं दिए।

१६. शेडगाँवकर-बखर, १५४६ प्रभव वै० शु० ३, शनिवार, रोहिणी, कर्कलग्न। — १६. तिथि और दिन का नक्षत्र से मेल नहीं मिलता।

१७. भिड़े का इतिहास, १५४६ वै० शु० ३, शनिवार। — १७. तिथि का दिन से मेल नहीं खाता।

इससे यह स्पष्ट रीति से मालूम होता है कि सत्रहों साक्षियों के कथन काल-निर्णय की कसौटी में ठीक नहीं उतरते। 'शक-संवत्सर-तिथि-दिन-नक्षत्र वग़ैरह विस्तार-पूर्वक देना चाहिए, और वे सब गणित की कसौटी में ठीक उतरने चाहिए।' इस प्रकार की कसौटी का हेतु यह है कि उस समय की घटनाओं से पूर्ण असली काग़ज़-पत्र देखने को मिले बिना यह बात ठीक-ठीक नहीं दी जा सकती। तत्कालीन काग़ज़-पत्र देखे बिना, अनुमान के अथवा सुनी हुई बातों के आधार पर, विस्तार-पूर्वक लिखनेवाले के लेख में असंगति अवश्य रहेगी। हमारे यहाँ की ऐसी परंपरा-गत पद्धति है कि शक तो संख्या में और उसके साथ संवत्सर अक्षरों में रहता ही है। इसी प्रकार तिथि भी संख्या में और उसके साथ दिन अक्षरों में लिखने की रीति है। इसलिये असली काग़ज़-पत्रों के आधार पर कौन और तर्क के आधार पर कौन लिखता है, इसकी परीक्षा तिथि-दिन के मेल से अथवा उनके न मिलने से ही हो सकती है। जिस प्रकार हुंडी में, संख्या में और अक्षरों में लिखी हुई रक़म बराबर एक ही होनी चाहिए, यदि उसमें कुछ भी फ़र्क़ पड़ा, तो हुंडी अग्राह्य हो जाती है, उसी प्रकार तिथि-दिन के संबंध में हम कह सकते हैं। यह बात ध्यान में रखकर यदि हम देखें, तो हमें मालूम होगा कि सब बखरकारों के लेख में आत्म-विरोध है, और इसलिये उनके लेख भी अविश्वसनीय हैं। इससे यह बात स्वयं सिद्ध हो जाती है कि जेधे-शकावली और शिवभारत असली काग़ज़-पत्रों के आधार पर लिखे गए हैं; क्योंकि उनमें शिव-जन्म-तिथि का उल्लेख विस्तार-पूर्वक है, और वह पूर्ण रीति से गणित की कसौटी में उतरती है।

ऊपर लिखी १७ साक्षियों के उल्लेख से तिथि-निर्णय न होकर घोटाला-मात्र उत्पन्न होता है; क्योंकि उनमें से पाँच साक्षी तो जन्म-तिथि पंचमी देती हैं, तीन द्वितीया, दो तृतीया, एक पूर्णिमा, एक दूसरी वद्य द्वितीया और बाक़ी पाँच तो तिथि देती ही नहीं। इन तिथियों में कौन-सी तिथि निश्चित की जाय, यह बहुत कठिन हो जाता है।

संवत्सर के बारे में छः बखरों में संवत्सर और शक का बिलकुल मेल नहीं मिलता, याने संवत्सर ठीक समझ लेने से शक की संख्या ग़लत निकलती है, और शक की संख्या ठीक मानने पर संवत्सर का नाम ठीक नहीं निकलता। यदि ऐसा कहें कि नक़लकारों से लेख-प्रमाद हुआ होगा, तो यह भी ठीक न होगा; क्योंकि १७ साक्षियों में से एक के भी उल्लेख में शुद्धता नहीं है।

बखरों में दी हुई और दूसरी घटनाओं का शककाल भी बहुत असंगत है। इससे हम कह सकते हैं कि तिथि-निर्णय के काम में ऊपर दी हुई साक्षियों के उल्लेख किसी काम के नहीं हैं।

शिवकालीन शकावली

नीचे दी हुई आठ शकावलियाँ उपलब्ध हुई हैं, और वे शिवकालीन मिति निर्णय करने के लिये उपयोगी हैं। ऐसा नहीं कि उन सभी में शिव-जन्म-तिथि दी हो। परंतु हस्तदोष देखने के लिये, पाठांतर की शुद्धाशुद्धता निश्चित करने और शिवकालीन तिथि का विचार करने के लिये जितनी अधिक शकावलियाँ मिलेंगी, उन सबको प्राप्त कर उनका मिलान एक दूसरे से करना ठीक होगा। यह बात सुप्रसिद्ध ही है कि कालिदास आदि कवियों के ग्रंथ छापते समय ऐसे अनेक पाठ-भेदों की जाँच कर, व्याकरण और प्रसंग की दृष्टि से, शुद्ध पाठ कौन-सा है, यह निर्णय किया जाता है। वही न्याय

प्रस्तुत शकावली के संबंध में लागू होता है। प्रसंग और गणित की सहायता से हस्त-दोष निकालकर शुद्ध पाठ स्थिर करना चाहिए। वह शुद्धता स्थिर करने की पद्धति बतलाने के पूर्व शकावलियों के नाम और उनके मूल-लेखन का काल बतलाना ठीक होगा।

(१) शाहाजीकालीन शकावली, (२) राज्याभिषेक-शकावली, (३) होनप देशपांडे की शकावली, (४) फ़्रोब्स या शिवापूरकर-शकावली, (५) शिवनिधन-शकावली, (६) दासपंचायतन-शकावली, (७) राजारामकालीन अथवा जेधे-शकावली, (८) संपूर्ण शिवकालीन शकावली।

प्रत्येक शकावली के अंत में शक की संख्या दी रहती है। उससे हम शकावली के रचना-काल की पूर्व मर्यादा निश्चित कर सकते हैं। परंतु अंत में दिए हुए शक के कितने वर्ष बाद शकावली लिखी गई, यह बतलाना याने उसके रचना-काल की उत्तर मर्यादा निश्चित करना बहुधा अशक्य रहता है। उस पर भी यह मानना ग़लत न होगा कि शकावली-रचयिता साधारण तौर पर अपने समय की बातें लिखकर रखते हैं।

नक़ल के बारे में हम ऐसा नहीं कह सकते हैं। मूल-शकावली में जिस शक तक की घटनाओं का उल्लेख रहता है, वहाँ तक लिखकर निकालने के लिये नक़ल करनेवाले को नक़ल करनी पड़ती है। इसलिये नक़ल का लेखन-काल और नक़ल की आख़िरी के शक में कई सालों का अंतर रह सकता है। नक़ल का काल अक्षरों के रूप से और आभ्यंतर-प्रमाण से निश्चित करना पड़ता है। उदाहरणार्थ, राज्याभिषेक-शकावली शक १५९६ के नज़दीक लिखी गई; क्योंकि उसमें वहाँ तक के शक दिए हुए हैं। परंतु उसकी आज तीन नक़लें उपलब्ध हैं, और हरएक नक़ल का काल निराला ही है। यह बात नक़ल के अक्षर के ऊपर से, और बारीक हेर-फेर से, हम निश्चित कर सकते हैं। श्रीयुत राजवाड़े की छपवाई देशपांडे की शकावली बहुत ही पुरानी है, परंतु फ़्रोब्स कलेक्शन की उसकी प्रति अँगरेज़ी-काल की है। यह बात हम अक्षरों के रूप से निश्चित कर सकते हैं। सारांश यह कि नक़लों का काल निश्चित करने की कसौटी रचना-काल की कसौटी से बिलकुल भिन्न है।

इस प्रश्न से निकट संबंध रखनेवाला पुरानी पद्धति का एक और आधार मिला है। पेशवाई और उसके पूर्व के काल में, अनेक घरानों में, बहियाँ लिखने की प्रथा थी। इनमें काव्य और शकावली का संग्रह रहता था। काव्य की बही में जिस प्रकार ज्ञानेश्वर से लेकर अनंत फंदी तक अनेक कवियों के पद्यों का संग्रह है, वैसा ही ऐतिहासिक बहियों का भी हाल है।

उदाहरणार्थ, फ़्रोब्स कलेक्शन में याने शिवापूरकर की 'बही' में अनेक शकावलियाँ और ऐतिहासिक टिप्पणियों का संग्रह है। अन्य शकावलियों और टिप्पणियों का नक़ल-काल अक्षरों के रूपों से निश्चित होता है। परंतु यह हम नहीं कह सकते कि उन सबका एक ही रचना-काल होगा। रचना-काल निश्चित करते समय एक शकावली का अंत कहाँ होता है और दूसरी शकावली का आरंभ कहाँ से होता है, यह बात आरंभ में निश्चित करके प्रत्येक शकावली पर स्वतंत्र रीति से विचार करना चाहिए; नहीं तो यह निर्णय ही नहीं हो सकता कि उसका विश्वसनीय भाग कौन-सा है और अविश्वसनीय कौन-सा। ऐसे समय 'सब धान बाईस पंसेरी' के न्याय से उस बही में १५४९ और १५५१ शक के उल्लेख देखकर, उसमें किस शक की ओर बहुमत है, सिर्फ़ इतने ही से निर्णय देना न्याययुक्त न होगा। फ़्रोब्स कलेक्शन की राज्याभिषेक-शकावली के संबंध में विचार करते समय यह बात ध्यान में रखना ठीक होगा कि उस शकावली की एक स्वतंत्र और पुरानी प्रति उपलब्ध है। इसलिये इस बही में शकावली का प्रारंभ और अंत कहाँ होता है, यह समझने में बिलकुल तकलीफ़ न होगी।

शकावलियों का रचना-काल

हमारे सामने आई हुई शकावलियों का रचना-काल निश्चित करने के लिये यह नियम ध्यान में रखना चाहिए कि शाहू के आगमन तक शिव-काल और अँगरेज़ी-सत्ता आरंभ होने तक पेशवाई-काल समझना चाहिए—

१. शिवकालीन शकावलियों के सब शक शाहू के आगमन-काल के पूर्व के होने चाहिए।

२. उसमें पेशवाई और अँगरेज़ी काल का उल्लेख न होना चाहिए।

३. तिथि-दिन-नक्षत्र तक के अधिक-से-अधिक सूक्ष्म वृत्तांतों का उल्लेख उसमें चाहिए, और गणित की दृष्टि से वह ठीक शुद्ध होना चाहिए।

४. उसमें मितियों की संख्या भरपूर होनी चाहिए; क्योंकि समकालीन लेखक को बहुत-सी मितियाँ देना सुलभ है।

५. असली काग़ज़-पत्र तथा समकालीन और विश्वसनीय तवारीख़ या वृत्तांतों से निश्चित की हुई मितियों का इन शकावली-मितियों से मेल मिलना चाहिए।

इन पाँच नियमों के आधार पर देखने से मालूम होता है कि विशिष्ट शकावली शिवकालीन है, या नहीं। उदाहरणार्थ, जेधे-शकावली के (१) सब शक १६१६ तक के हैं, (२) पेशवाई और अँगरेज़ी-काल का उसमें कहीं भी उल्लेख नहीं है, (३) तिथि-दिन-नक्षत्र का उसमें सूक्ष्म वर्णन दिया हुआ है, (४) उसमें दिए हुए उल्लेखों की याने घटनाओं की संख्या बहुत याने २२१ है, (५) आभ्यंतर-प्रमाणों से उसमें लिखी गई बातें सच्ची निकली हैं।

यही नियम राज्याभिषेक-शकावली तथा शिवनिधन-शकावली वग़ैरह में भी पूर्ण रीति से लागू होता है।

आक्षेपकारों का कथन है कि प्रभानवल्ली, रामदासी और धड़फले की शकावली, जेधे-शकावली की बराबरी की है, और उससे अधिक विश्वसनीय हैं। परंतु यह ठीक नहीं है; क्योंकि (१) उनमें अँगरेज़ी और पेशवाई-काल के शक मुख्यतः दिए हैं, (२) जन्म, राज्याभिषेक और मृत्यु, इन मामूली घटनाओं के सिवा शिव-चरित्र की घटनाएँ उनमें नहीं दी हैं, (३) सूक्ष्म घटनाएँ देनेवाली मितियाँ उनमें नहीं हैं, (४) मामूली घटनाओं को छोड़कर शिव-चरित्र की घटनाओं का उल्लेख नहीं है, (५) दूसरी घटनाओं का उल्लेख न होने के कारण परिपोषक प्रमाण देखने का काम ही नहीं है।

विश्वसनीय और अविश्वसनीय भाग का चुनाव

विशिष्ट शकावली शिवकालीन है, ऐसा स्थिर कर लेने पर भी उसमें प्राप्त हरएक उल्लेख विश्वसनीय है, ऐसा हम नहीं कह सकते। हमारा कहना यह नहीं है कि उसका हरएक वाक्य वेद-वाक्य के समान प्रमाण माना जाय, और उसके विरुद्ध बिलकुल ही शंका न की जाय। जेधे-शकावली जेधे-घराने के पुरुषों ने राजाराम के राजत्व-काल में और राज्याभिषेक-शकावली होनप देशपांडे के घराने के पुरुषों ने शक १६१६ के आसपास लिखी हैं। इस बात को यदि ध्यान में रक्खें, तो हम सरलता-पूर्वक समझ सकते हैं कि विश्वसनीयता की दृष्टि से अधिक और सबसे अधिक विश्वसनीय भागों की छानबीन किस प्रकार करनी चाहिए। उपर्युक्त शकावली लिखनेवालों का उद्देश्य स्पष्टतः यह जान पड़ता है कि शिवाजी-चरित्र की तथा उनके पूर्व-काल की भी महत्त्व-पूर्ण घटनाओं की टिप्पणी कालानुक्रम से तैयार कर उसमें अपने घराने का और दूसरे जान-पहचान के घरानों के पुरुषों का वृत्तांत लिखा जाय। शिव-चरित्र-संबंधी उल्लेख लेखकों ने सरकारी दफ़्तरों से और तत्कालीन अधिकारियों के संग्रह की टिप्पणियों से लिए हैं, तथा अपने घरानों के उल्लेख अपने घर के दफ़्तरों से। इसके सिवा शिव-पूर्व-कालीन मुसलमानी काल की कुछ विशेष घटनाओं का उल्लेख उन्होंने हिजरी और सुहर सन् देनेवाले फ़ारसी काग़ज़-पत्रों से, उनका शकों में रूपांतर करके, लिया है। इसलिये शिवकालीन शकावली के उल्लेख के मुख्य तीन भाग होते हैं—

१. शिव-पूर्व-कालीन मुसलमानी राजाओं के और उनके हलचल-संबंधी उल्लेख।

२. शिवाजी-चरित्र-विषयक उल्लेख।

३. विशिष्ट घराने-संबंधी उल्लेख।

इन तीनों वर्गों में से पहले वर्ग का उल्लेख हम पूर्णतः विश्वसनीय नहीं मान सकते; क्योंकि उसमें जिस समय का उल्लेख है, वह शिवकालीन नहीं है। इसलिये निश्चय-पूर्वक नहीं कह सकते कि उस विषय के काग़ज़-पत्र शिवकालीन सरकारी दफ़्तरों में थे। इसके सिवा हम यह भी निश्चय-पूर्वक नहीं कह सकते कि उन्होंने तत्कालीन असली काग़ज़-पत्रों से मुसलमानी सन् या तारीख़ों का शालिवाहन-शकों में ठीक-ठीक रूपांतर किया है। यदि हम यह कह सकते कि यह काम उस समय के जाननेवाले अधिकारियों ने किया है, तो बात दूसरी थी। हम निश्चय-पूर्वक यह कह सकते हैं कि उपर्युक्त शकावलियाँ विशिष्ट घरानों के पुरुषों ने तैयार की हैं, इसलिये ऐसा हम नहीं कह सकते कि उसमें निज़ामशाही राज्य के शिव-पूर्व-कालीन उल्लेख शुद्ध-रूप में हमारे सामने आए हैं।

२. शिवाजी-संबंधी उल्लेख समकालीन सरकारी काग़ज़-पत्रों के आधार पर तैयार किए गए हैं, इसलिये उन्हें विश्वसनीय मानना चाहिए।

३. घराने-संबंधी उल्लेख भी विश्वसनीय मानना चाहिए। परंतु यह संभव है कि कहीं-कहीं पर उन्होंने अपनी और अपने पूर्वजों की कार्यावली बढ़ाकर बतलाई हो।

शकावलियों में ग़लतियाँ

विश्वसनीयता की दृष्टि से कम या अधिक महत्त्व का भाग कौन-सा है, इसकी छानबीन कर लेने के पश्चात् उपलब्ध शकावलियों में जो कुछ ग़लतियाँ मिलती हैं, उनका संक्षेप में स्पष्टीकरण करना ठीक होगा। इनमें कुछ ग़लतियाँ तो नक़लकारों के हाथ से हुई हैं, और कुछ ग़लतियाँ उनमें हैं, ऐसा मालूम होता है; परंतु वास्तव में वे ग़लतियाँ न होकर भिन्न काल-गणना-पद्धति के परिणाम हैं। जेधे-शकावली में कुछ ग़लतियाँ यहाँ-वहाँ मालूम पड़ती हैं, परंतु वे सब असली लेखक की नहीं हैं। उसमें बहुत-सी तो नक़लकारों के लिपि-दोष के कारण हुई हैं। सिर्फ़ एक-दो ग़लतियाँ अपवाद हैं। इस शकावली में क़रीब १६८ घटनाएँ शिवाजी महाराज के जीवन-काल की हैं। उनमें पाँच-छः लिपि-दोष हैं, और उनमें से सिर्फ़ एक ही दो ग़लतियाँ हैं, जिनका स्पष्टीकरण अभी तक नहीं हुआ है। इससे इस शकावली की योग्यता स्पष्ट दिखाई देती है। इसका मिलान यदि आक्षेपकारों की आधारभूत बखरों के साथ किया जाय, तो मालूम होगा कि उनके आधार बिलकुल खोखले हैं। बखरों में सौ-सवा सौ घटनाओं का उल्लेख किया है। उनमें कालदर्शित घटनाएँ सिर्फ़ ४५ हैं, उनमें से १२ घटनाओं का काल ठीक है, ७ अनिर्णीत और २६ ग़लत हैं।

ऐसी हालत में बखरकारों की शिव-जन्म-तिथि सच्ची और जेधे-मिति अविश्वसनीय है—ऐसा कहनेवाले आक्षेपकारों का कथन मान्य नहीं हो सकता।

सच्ची मिति के आधार

जेधे-शकावली पर जो आक्षेप हुए हैं, उनका निराकरण करने के पश्चात् यहाँ यह बतलाना उपयुक्त होगा कि शिव-जन्म की वास्तविक तिथि अन्य किन-किन ग्रंथों और लेखों में किस रूप में मिलती है।

१. शिवभारत—शिवाजी के कहने पर नेवासकर परमानंद कवि ने शिवाजी-चरित्र का यह ग्रंथ संस्कृत में लिखा है। उसमें मालोजी से लेकर शाइस्ताख़ाँ के आक्रमण तक की याने शक १५८४ (सन् १६६२) तक की सूक्ष्मातिसूक्ष्म घटनाओं का उल्लेख है।

इसमें भोंसला-घराने का संबंध उदयपुर के राणा से नहीं बतलाया है। राजधानी का नाम रायगढ़ न देते हुए हरएक स्थान पर 'राजगढ़' उसमें दिया है। शिवकालीन ताम्रपट में 'भूशबल' शब्द का उपयोग किया गया है। यह शब्द भोंसले का पर्यायवाची है, ऐसा इसमें बतलाया है। कवि प्रारंभ ही में लिखते हैं कि मैंने यह ग्रंथ शिवाजी के कहने पर लिखा। उसने उसमें खलदबेलसरविजय का साद्यंत उल्लेख किया है। इन सब प्रमाणों से हम निश्चय-पूर्वक कह सकते हैं कि शिवभारत-ग्रंथ शाहजी की मृत्यु के पश्चात् और शिवाजी के राज्याभिषेक के पूर्व लिखा गया है। उसमें अनेक समय की घटनाओं का असली काग़ज़-पत्रों में मिलनेवाली घटनाओं के साथ अच्छा मेल मिलता है। ऐसे विश्वसनीय ग्रंथ में शिव-जन्म-तिथि "शक १५५१ (सन् १६३०) फाल्गुन-वदि ३, शुक्रवार रात्रौ" दी है।

२. राज्याभिषेक-शकावली—इसमें शक १५४६ से लेकर १५९६ तक की घटनाएँ हैं, और प्रारंभ से मिति-दिन-नक्षत्र-योग इत्यादि।

सूक्ष्म बातें विस्तार-पूर्वक बतलाकर वास्तविक जन्म-तिथि दो बार बतलाई है। होनप देशपांडे के घराने की शकावली का उपलब्ध भाग राज्याभिषेक-शकावली से बराबर मिलता-जुलता है। इसलिये यह निश्चित है कि फटे हुए भाग में वास्तविक शिव-जन्म-तिथि थी।

३. फ़ोर्ब्स कलेक्शन—यह राज्याभिषेक-शकावली के समान ही है।

४. जेधे-शकावली—यह राजाराम के समय में लिखी गई है। इसमें शिव-जन्म-तिथि शिवाजी की जन्म-पत्रिका से ही ली है, ऐसा स्पष्ट मालूम होता है।

५. दासपंचायतन-शकावली—इस ग्रंथ में भी ७०वें पन्ने में दी हुई शकावली में शिव-जन्म का शक १५५१ लिखा है।

६. थेव्हेना का प्रवासवृत्त—यह योरपियन प्रवासी ई० स० १६६६ के जनवरी में सूरत में आया, और १६६७ के नवंबर-महीने में मरा। उसकी डायरी छपी है। शिवाजी महाराज के सूरत लूटने के डेढ़ साल बाद वह सूरत में आया। उसने शिवाजी महाराज को देखनेवालों

के मुँह से सुनी हुई हक़ीक़त लिखी है। उसमें ऐसा लिखा है कि सूरत लूटने के समय अर्थात् ई० स० १६६४ में उसकी उमर ३५ साल की थी। ३५ वर्ष पूरे हुए थे या ३५वाँ चालू था, इस बात का उसमें खुलासा नहीं किया है। परंतु संभवतः उसको बतलानेवाले हिंदू लोगों ने ३५वाँ वर्ष चालू ही बतलाया होगा। इसलिये यदि ई० स० १६६४ में पूरे ३४ वर्ष घटा दिए जायँ, तो शिव-जन्म का अँगरेज़ी वर्ष १६३० ही निकलता है।

योरपियन पद्धति के अनुसार यदि पूरे ३५ वर्ष भी घटाते हैं, तो जन्म-काल ई० स० १६२९ निकलता है। महीना मालूम न होने से १५५१ शक का यदि अँगरेज़ी सन् में रूपांतर किया जाय, तो वह या तो १६२९ निकलता है या १६३०। ये दोनों ही प्रकार योरपियन लेखकों के ग्रंथों से मिलते हैं।

७. **आर्म का इतिहास**—Historical Fragments—नामक आर्म का ग्रंथ ई० स० १७८३ में प्रसिद्ध हुआ। उसमें शिवाजी का मृत्यु-वर्ष दो बार बतलाया है। पृष्ठ ११३ में यह लिखा है—He expired in the 52nd year of his age. फिर इसके ऊपर टिप्पणी देते हुए, पृष्ठ ९५ में in the fifty-second year of his age—ऐसा लिखा है। यहाँ स्पष्टरूप से ५२वाँ वर्ष लिखा गया है। अर्थात् शिव-जन्म का वर्ष सन् १६८० – ५१= १६२९ ई० आता है।

८. **स्पिजल का इतिहास**—यह जर्मन-ग्रंथ ई० स० १७९१ में प्रसिद्ध हुआ है। इसमें १७८२ तक की महाराष्ट्र-इतिहास की घटनाएँ आई हैं। इसमें हिंदी-नाम देने में बहुत-सी ग़लतियाँ हुई हैं। परंतु ग्रंथकार पाश्चात्य संशोधक था। उसके उल्लेख में चिकित्सक-पद्धति मालूम पड़ती है। उसने शिव-जन्म का वर्ष ई० स० १६२९ दिया है। अर्थात् १६२९ – ७८=१५५१ शक निकलता है।

९. **तंजावर का शिला-लेख**—यह ई० स० १८०३ में लिखा गया है। इसमें शिव-जन्म का शक १५५१ दिया हुआ है। परंतु संवत्सर का नाम और ई० स० की संख्या ग़लत लिखी है। यह भी ग़लत बात लिखी है कि जिजाबाई शहाजी की दूसरी स्त्री है। यह शिला-लेख व्यंकोजी ने नहीं लिखवाया, और न उसमें शिव-जन्म-तिथि बदलने के प्रयत्न का कोई प्रमाण ही है।

इसमें यह लिखा है कि व्यंकोजी की अपेक्षा शिवाजी महाराज बड़े हैं।

शिव-जन्म का वर्ष शक १५५१ है, इस बात के ९ आधार होकर उसमें चार स्थान पर महीना, तिथि, दिन, नक्षत्र तक सूक्ष्मातिसूक्ष्म बातें दी हैं। शिव-भारत में 'रात्रौ' का शब्द अधिक दिया है। इन साक्षियों के कथन में परस्पर विरोध कहीं भी नहीं है; उनका उल्लेख भी सुसंगत और गणित की कसौटी पर ठीक उतरता है।

जेधे-शकावली की विश्वसनीयता

जेधे-शकावली की घटनाएँ तत्कालीन असली काग़ज़-पत्रों और टिप्पणियों के आधार पर लिखी गई हैं, इसलिये वे पूर्णतः विश्वसनीय हैं। यही कारण है कि उसमें प्राप्त उल्लेखों का समकालीन आभ्यंतर प्रमाणों से मेल मिलना चाहिए। उसकी विश्वसनीयता की यही एक ज़बर्दस्त कसौटी है।

इसलिये इस संबंध के कुछ उदाहरण बतलाना ठीक होगा।

१. शक १५८३ वैशाख शु० ११ सोमवार को राजा ने शृंगारपुर लिया; वहाँ का राजा सूर्यराय भग गया, (जेधे श०)। शृंगारपुर की चढ़ाई का वर्ष निश्चित करते समय सब इतिहासकारों ने ग़लती की है, परंतु जेधे-शकावली में यह बिलकुल ठीक है; क्योंकि शिवाजी महाराज के भेजे हुए असली काग़ज़-पत्र आज उपलब्ध हैं, और उनमें दिया हुआ साल जेधे-शकावली के वर्ष से मिलता है।

२. शक १५८५ पौष-वदि ४ को सूरत लूटा गया (जेधे श०)। यह मिति ठीक है। इसका प्रमाण उस समय के सूरत के अँगरेज़-व्यापारियों की गुप्त सभा की लिखी हुई रिपोर्ट में उपलब्ध है।

३. शक १५८७ आषाढ़ शु० १० को जयसिंह से संधि हुई (जेधे श०)। संधि की तारीख़ स्थिर करने के लिये जयसिंह के पत्र उपलब्ध हैं। इसलिये शंका के लिये कुछ भी स्थान नहीं है।

आभ्यंतर-प्रमाणों के ऐसे कई उदाहरण दिए जा सकते हैं। जेधे-शकावलीकार को शिवकालीन असली काग़ज़-पत्र ही मिले होंगे, ऐसा कहने के लिये एक और अच्छा आधार है। इतिहास-प्रसिद्ध और महत्त्व की

घटनाओं का उल्लेख पीछे तो सभी कर सकते हैं, परंतु सूक्ष्मातिसूक्ष्म घटनाओं का वर्णन समकालीन लेखक के सिवा और किसी को करने की बुद्धि नहीं होती। उदाहरणार्थ, शिवाजी महाराज 'जावली से सवार हुए', 'रायगढ़ में आए', कल्याण की ओर 'गढ़ देखने गए', 'सिंहगढ़ देखने गए', 'प्रतापगढ़-क़िले पर बिजली गिरी', 'भूकंप हुआ' इत्यादि सूक्ष्म घटनाएँ हैं। वे लिखते समय ही महत्त्व की मालूम होती हैं, तथा पश्चात् महत्त्वहीन जान पड़ती हैं। घटनाएँ लिखते समय काग़ज़-पत्र जेधे-शकावलीकार के सामने अवश्य रहे होंगे। इस कारण हम निश्चय-पूर्वक कह सकते हैं कि इनको कुछ स्थानों में तो तत्कालीन सरकारी दफ़्तरों की टिप्पणियाँ अवश्य देखने को मिली हैं। सारांश यह है कि घटनाएँ जितनी साक्षीपूर्ण और सूक्ष्म रहेंगी, उतनी ही वह थोड़े लोगों को मालूम रहेंगी; यदि उस समय वह लिखकर न रक्खी गईं, तो उनके विस्मरण होने की अधिक संभावना है; और यदि उसका निराकरण भी हुआ, तो उसका हर्ष-विमर्ष किसी को भी नहीं होता। ऐसी घटनाएँ जिस शकावली में समाविष्ट हुई हैं, वह तत्कालीन ही होनी चाहिए। और, वह उस समय के लिखे रक्खे हुए असली काग़ज़-पत्रों से तैयार की हुई होनी चाहिए। इसलिये नक़लकार और लेखक के दोषों को छोड़कर वह शकावली प्रमाणभूत मानने में किंचित् भी शंका का स्थान नहीं है।

शकावली स्वतंत्र है या नक़ल

इसमें दी हुई शकावलियों का बारीकी से अध्ययन करने से मालूम होगा कि वे एक दूसरे की नक़ल न होकर स्वतंत्र हैं; परंतु इतना श्रम न उठाकर जेधे और फ़ोर्ब्स कलेक्शन की शकावलियों को सिर्फ़ देखकर ही आक्षेपकारों ने यह टीका की है कि वे एक दूसरे की नक़ल हैं। इसलिये इस बात का भी संक्षेप में विचार करना उचित होगा।

१. राज्याभिषेक-शकावली शक १५४६-१५९६ तक की है, शिवकालीन शकावली शक १५७०-१६०२ तक की है और जेधे-शकावली १५४०-१६१९ तक की है। इसलिये ये सब एक मूल प्रति की नक़ल नहीं हैं।

२. जेधे और राज्याभिषेक-शकावलियों में जो काल-विभाग समान हैं, उसमें भी अनेक स्थान पर भेद हैं। कहीं-कहीं एक में मिलनेवाला वृत्तांत दूसरे में नहीं है। उदाहरणार्थ—

(१) 'शक १५६१ में राजश्री बापूजी पंत ने क़िला सिंहगढ़ लिया' ऐसा राज्याभिषेक-शकावली में है; पर यह बात जेधे-शकावली में बिलकुल नहीं है। (२) संभाजी का जन्म-काल देते समय दिन, घटिका, पल इत्यादि विस्तार-पूर्वक बातें जेधे-शकावली में नहीं हैं, परंतु ये बातें राज्याभिषेक-शकावली में दी हैं। (३) जेधे-शकावली में बाजी नाइक जेधे की जन्म-तिथि दी है, और दूसरी शकावली में वह नहीं दी है; परंतु उसमें 'मोरोबांकी मुंज और गंगाबाई की मृत्यु' आदि-संबंधी घरू बातों की मिति दी है। इससे हम स्पष्टतः कह सकते हैं कि सब शकावलियाँ एक मूल शकावली की नक़ल नहीं हैं। उस समय शकावली तैयार करने का प्रयत्न अनेक घरानों में होता रहा। हरएक घराने की आवश्यकतानुसार सरकारी दफ़्तरों से मिलनेवाली घटनाओं का उल्लेख अपनी-अपनी शकावली में किया गया। दूसरे स्थानों पर जो-जो काग़ज़-पत्र मिले, उनका भी उपयोग हरएक शकावली में किया गया, और अपने-अपने घराने के काग़ज़-पत्रों का भी उपयोग उसमें किया गया। असली काग़ज़-पत्रों में जितनी सूक्ष्म बातें मिलीं, उतनी बातों का उल्लेख प्रत्येक शकावली में किया गया है। हरएक स्थान पर अंदाज़ से सूक्ष्म बातें देने का काम उन्होंने नहीं किया। भिन्न-भिन्न शकावलियों में कुछ बातों के उल्लेख बिलकुल समान हैं, कुछ मतभेद-निदर्शक हैं और कुछ प्रत्येक शकावली में बिलकुल स्वतंत्र और भिन्न हैं। यह बात यदि शकावलियों का बारीकी से अध्ययन किया जाय, तो सरलता-पूर्वक समझ में आ जायगी। इसलिये सब शकावलियों को एक मूल शकावली की नक़ल कहना बिलकुल ग़लत है।

झूठी मिति की उपपत्ति

शिवाजी के जन्म के १५४८, १५४९ और १५५१ शक, रक्ताक्षि, प्रभव, विभव और क्षय संवत्सर और वैशाख-महीने की शुद्ध द्वितीया, तृतीया, पंचमी या पूर्णिमा और वदि द्वितीया मितियाँ बखरों में दी हैं। अब प्रश्न यह है कि इन सबकी उपपत्ति कैसे लगाई जाय। बखरकारों के कथनों में बहुत अंतर है। उन सबकी ग़लतियों की उपपत्ति

एक ही नहीं हो सकती । उसमें कुछ ग़लतियाँ होने की संभावना बखरकारों के हस्त-दोष के कारण हो सकती हैं । उदाहरणार्थ, १५४६ के स्थान में १५५६, शुद्ध के स्थान में वद्य । परंतु संवत्सरों की विविधता को इस प्रकार नहीं समझा सकते । हम कभी नहीं कह सकते कि प्रभव के स्थान में चय और रक्ताक्षि ये शब्द हस्त-दोष के कारण आए । वैशाख शुद्ध द्वितीया और पंचमी मितियाँ बहुत-से बखरकारों ने दी हैं, साथ-ही-साथ उन्होंने दिन भी दिए हैं; परंतु तिथि और दिन का मेल बिलकुल नहीं खाता । इसलिये हम निश्चय-पूर्वक कह सकते हैं कि उनको असली जन्म-पत्रिका देखने को नहीं मिली । बखरकारों के समय शिवाजी महाराज के नाम की एक जन्मकुंडली रूढ़ि थी । उसको देखकर रवि-चंद्र के स्थान के आधार पर कोई भी यह कह सकेगा कि उनका जन्म वैशाख शुद्ध २ से ५ के अंदर हुआ है। इसके शिवा भोंसला-घराने की कोई जन्म-कुंडली शिवकालीन बखरकारों को मिली होगी । उस पर लड़के का नाम लिखने की प्रथा उस समय कदाचित् नहीं थी । इसलिये संभव है, बखरकारों ने उसी जन्म-कुंडली को शिवाजी की कुंडली समझ लिया हो । इसके सिवा कुछ बखरकारों ने दादाजी-कोंड़देव का मृत्यु-काल शक १५५६ दिया है। उस समय शिवाजी महाराज १७ साल के थे । ऐसी परंपरा-गत बात उन्होंने दी है । अस्तु, यह संभव है कि उन बखरकारों ने १५६६–१७=१५४६ शक उनका जन्म-काल लिया हो। सारांश, जब तक झूठी मिति एक ही शिवकालीन काग़ज़-पत्र में प्रत्यक्ष और परोक्ष रीति से नहीं मिलती, तब तक ऊपर बतलाई हुई उपपत्ति के विचार करने का कारण है ही नहीं । दूसरे, यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि वास्तविक मिति निश्चित करना और झूठी मिति की उपपत्ति चलना एक दूसरे से बिलकुल भिन्न है । उनमें से एक के निश्चित होने पर दूसरा प्रश्न हल होगा ही, ऐसा हम नहीं कह सकते; क्योंकि यदि हमें शाहाजी के असली काग़ज़-पत्र मिल जायँ (ऐसी हम कल्पना करें), और यदि उसमें शिवाजी महाराज की जन्म-तिथि शक १५५१ फाल्गुन-कृष्ण ३ लिखी हो, तो उससे जेधे-मिति को अच्छी पुष्टि मिलेगी । परंतु उससे हम यह प्रश्न नहीं हल कर सकते कि चिटनीस की मिति कैसे रूढ़ि हुई ।

उपसंहार

सबका निष्कर्ष थोड़े में यह है—शिवभारत और जेधे आदि शकावलियाँ शिवकालीन हैं । शिव-जन्म-मिति उनके अत्यंत विश्वसनीय भागों में से है, और वह गणित की दृष्टि से बिलकुल ठीक उतरती है, इसलिये उसमें दी हुई शिवजन्म-तिथि शक १५५१ फाल्गुन-वदि तृतीया (सन् १६३०*) बिलकुल ही ठीक है। उपर्युक्त तिथि का समर्थन एक और स्थल से हो चुका है । ब्यावर राज्य में श्रीयुत पंडित मीठालाल व्यास के यहाँ कई शिवकालीन कुंडलियों का संग्रह प्राप्त हुआ है । उनमें शिवाजी की भी कुंडली मिली है । वह कुंडली शिवराम ज्योतिषी के हाथ की लिखी है । शिवरामजी का जन्म शक १५५६ (सन् १६३७) में हुआ था, और मृत्यु शक १६४२ (सन् १७२०) में । अर्थात् यह पुरुष शिवाजी का समकालीन था । उसने कुंडली में शिवाजी के जन्म की तिथि 'संवत् १६८६ फाल्गुन-वदि ३' दी है। यह शिवभारत और जेधे-शकावली से ठीक मिलती है । ब्यावर-जैसे सुदूर स्थान में, जो कुंडली शिवाजी के समकालीन पुरुष ने लिख रक्खी होगी, वह सूक्ष्म कुंडली की नक़ल ही होनी चाहिए । इसमें जन्म का समय सूर्यास्त के कुछ बाद का बताया है। इस प्रकार तंजोर में दिए शिवभारत, महाराष्ट्र में मिली जेधे-शकावली और ब्यावर की कुंडली की जन्म-तिथि बिलकुल मिलती है । ऊपर बता ही चुके हैं कि यह गणित से भी ठीक है, इसलिये यही अब सर्वमान्य होनी चाहिए ।

गोपाल-दामोदर तामस्कर

---

* शिवाजी महाराज की त्रिशतवार्षिक जन्म-तिथि १७ मार्च, १६३० को पड़ती है । इसी दिन महाराष्ट्र में शिवाजी महाराज का जन्मोत्सव मनाया जायगा ।

मीरा

१

संतन को संग भो, प्रसंग भो न दूजो और
संतत ही अंग तैं सुकृत ही सुकृत भो;
तेरी भक्ति पावन हुतासन मैं नावन को,
लाल मनभावन को नेह ही को घृत भो।
सुकवि "उमेश" तेरी अकह कहानी रही,
तेरे सत्यव्रत मैं न रंचक अनृत भो;
तेरी रसना मैं स्यामहूँ की रसना को देखि,
बिख को पियालो सोऊ लाजन अमृत भो।

२

तू तो रनछोरजू की प्रेम-पूतरी है, तातैं
साँचिलो सनेह मोहिं करिबो सिखाइ दे;
तन-मन वारिबो बिसारिबो जगत-जाल,
मैया वह मंत्र नेक मोहूँ को बताइ दे।
रोग-सोग-मोकन सों संकट के झोंकन सों,
उरझी "उमेश" मेरी नाव सुरझाइ दे;
एरी मातु मीरे! मेरी आँगुरी पकरि नेकु,
लाल गिरिधारन सों मित्रई कराइ दे।

"उमेश"

विज्ञान-संसार का जादूगर

(चित्रों द्वारा जीवन की कथा का वर्णन)

लान-ग्राम के इस छोटे-से झोपड़े में ११ फ़रवरी, सन् १८४७ में ग़रीब माता-पिता के यहाँ एडीसन का जन्म हुआ था। लोग इसे निकम्मा कहते थे, परंतु माता ने प्रतिज्ञा की कि मैं इसे संसार-प्रसिद्ध व्यक्ति बना दूँगी। देवी के आगे विश्व की शक्तियों ने सिर झुकाया।

१. साधारण बालकों से इसका सिर बड़ा था। आठ वर्ष की अवस्था से ही जीवन-संग्राम में वह जुट पड़ा। अख़बार बेचकर पैसा पैदा करने लगा, और फ़ुरसत के समय को रसायन-शास्त्र की परीक्षाओं में लगाने लगा। उसे विश्वविद्यालयों की शिक्षा नहीं मिली, और न बड़े-बड़े विद्वानों के चरण-चुंबन कर ज्ञान प्राप्त करने की ही सुविधा उसे प्राप्त हो सकी।

२. जीवन को संकट में डालकर उसने स्टेशनमास्टर के अबोध बालक को कट मरने से बचाया। स्टेशनमास्टर से मैत्री हो गई। उसने तार की इसे कुछ शिक्षा दी। परंतु अद्वितीय चेले ने एक के बाद एक अनेक तार-संबंधी आविष्कार कर डाले। उधर चित्र में देखिए, आप तारसमस्या हल करने में लगे हैं। इसी की सफलता ने एडीसन को लखपती बना दिया।

३. सन् १८७७ में आपने फ़ोनोग्राफ़ ढूँढ़कर निकाला था। यह चित्र सन् १६०२ का है, जब आप पियानो-नामक बाजे की आवाज़ को रिकार्ड के द्वारा पुनः ध्वनित करने के प्रयत्न में लगे हुए थे। सच है, एक सफलता दूसरी सफलता का द्वार खोल देती है; पूर्ण आशाओं की

चित्र १
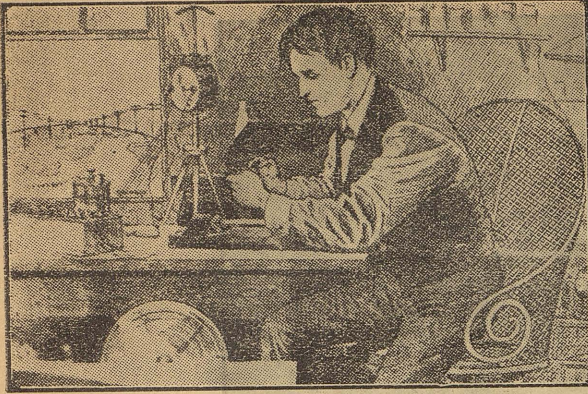
चित्र २

सीढ़ियों के द्वारा वीर, नवीन और उच्च आकांक्षाओं के मंदिर में प्रवेश करता है ।

४. इस फ़ोनोग्राफ़ ने संसार में धूम मचा दी । सभी सुनने के लिये उत्सुक रहते थे । दूर-दूर से दौड़े आते थे । भला निर्जीव वस्तु को मानव-कलकंठ की सुरीली तान में गाना सुनाते देख, वे एडीसन को जादूगर क्यों न समझने लगें । देखिए, कैसे ध्यान से बाजे को सब सुन रहे हैं ।

५. मिट्टी के तेल की धीमी, कमज़ोर धुएँ से भरी रोशनी पर तरस खाकर आपने विद्युत् के द्वारा प्रकाश करने की बात सोची । बड़े परिश्रम से पहला लैंप तैयार हो गया ।

चित्र ३

चित्र ४
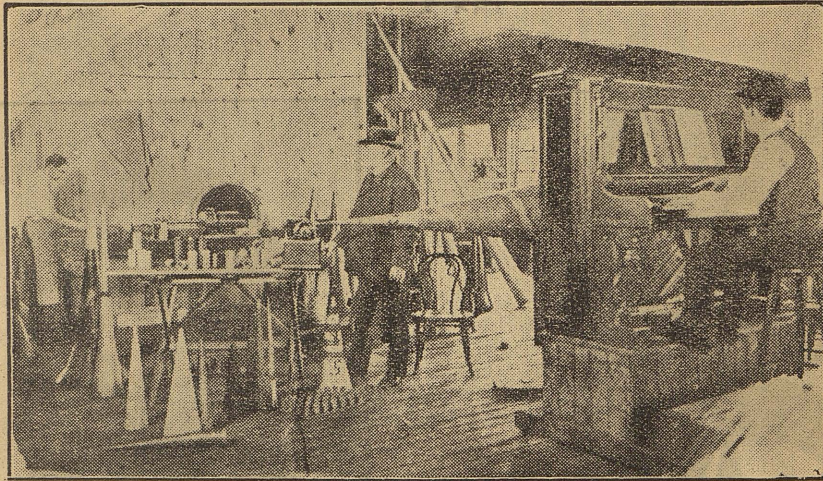
देखिए, उसी लैंप की परीक्षा अपनी विज्ञानशाला में कर रहे हैं ।

६. परंतु लैंप के अंदर कौन-सा फ़िलामेंट लगाया जाय, जो शीघ्र जलकर राख न हो? इस समस्या को हल करने के लिये आपने भारत, जावा, जापान, योरप आदि देशों में अपने एजेंटों को भेजा । अंत में एमेज़ान का बाँस उपयुक्त निकला । इस अनुसंधान में लाखों रुपए ख़र्च हो गए। इससे क्या? आविष्कार-प्रेमी ज्ञान की वेदी पर, प्रकृति के एक रहस्य को जानने के लिये धन ही क्या, जीवन का भी बलिदान करने को तैयार रहता है। आपने ख़ुद ही ६ हज़ार पदार्थों की परीक्षा की। देखिए, भट्टी के सामने आप परीक्षा कर रहे हैं । नौकर दूर खड़ा है ।
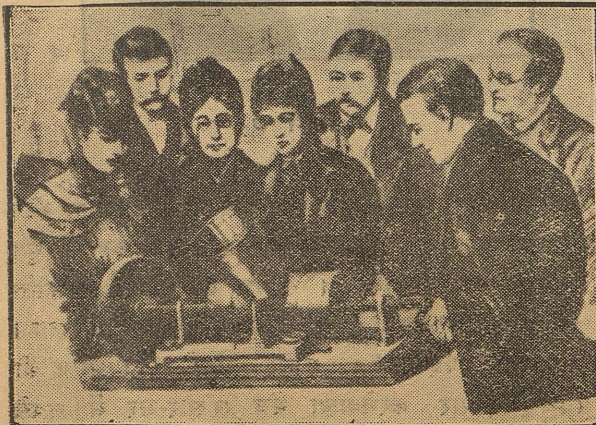
चित्र ५
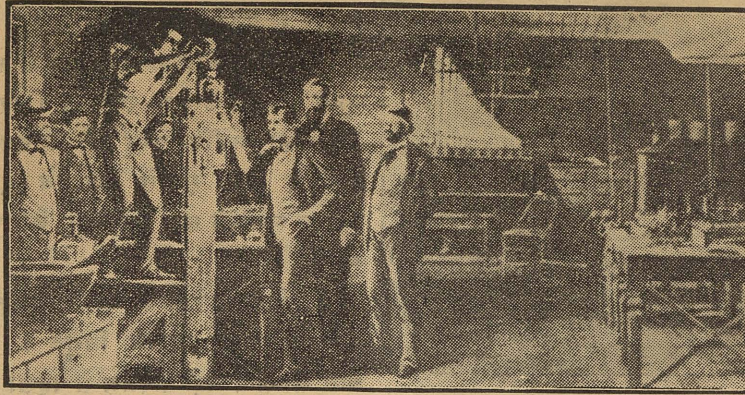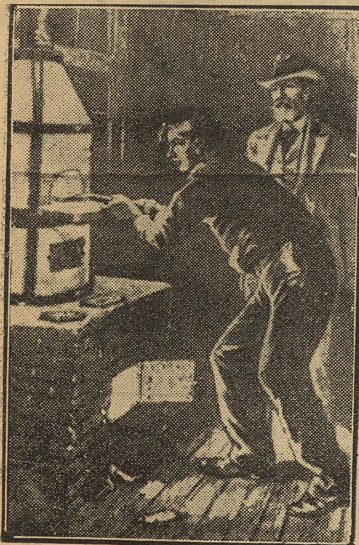
चित्र ६

चित्र ७

७. संसार के महान् आविष्कारक की आयु लैंप के आविष्कार के समय केवल ३२ वर्ष की थी। इसके पहले तार, टेलीफ़ोन आदि कई आविष्कारों में आप नाम और धन पैदा कर चुके थे। गली-गली में मारा-मारा फिरनेवाला अपने अविरल परिश्रम से सरस्वती और लक्ष्मी का स्वामी हो गया था।

८. लोग हँसते थे, और कहते थे कि यह "शैतान का काम है", परंतु एडीसन ने ज़रा भी परवा नहीं की। उसने एक सुंदर डायनामो का आविष्कार करके विद्युत् तैयार करना शुरू किया। संसार के व्यापार में क्रांति मच गई। घर-घर में सस्ते में विद्युत्-प्रकाश होने लगा। १८ वर्ष पहले ३० हज़ार घोड़े की शक्ति की विद्युत् तैयार करनेवाला यंत्र संसार-भर में सबसे बड़ा था।
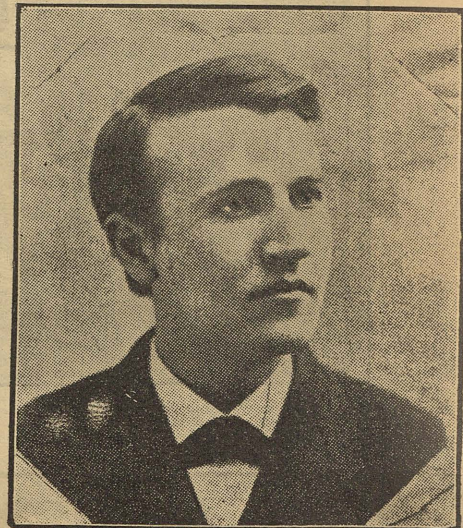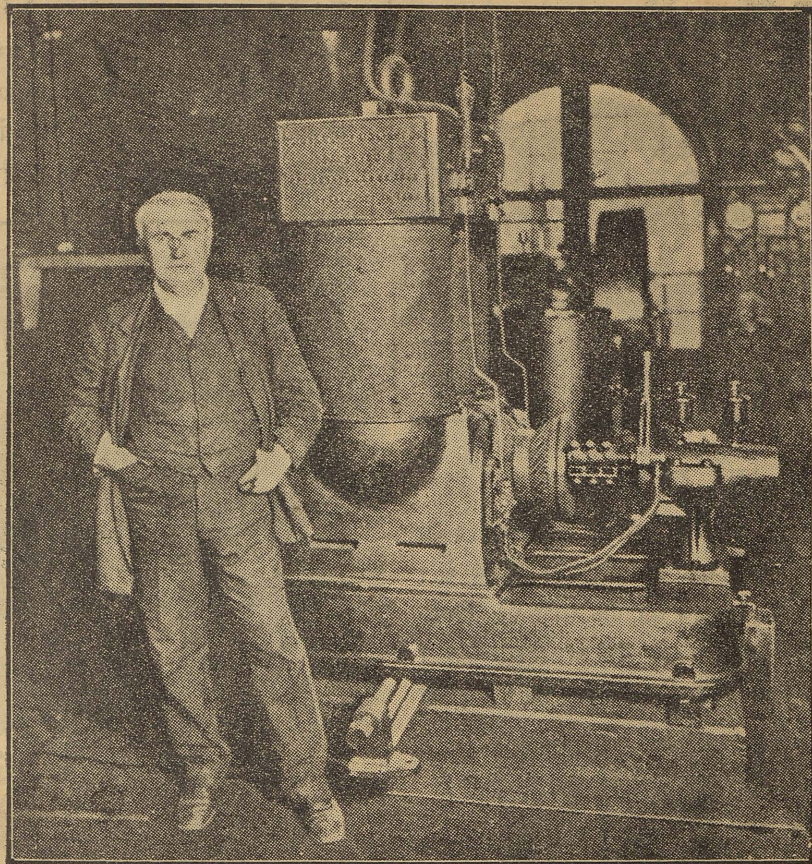
चित्र ८

९. सन् १८८० में मेनलो-पार्क में आपने लैंप बनाने का कारख़ाना खोला था। यहीं से लैंप तैयार होकर देश-भर में जाते थे। लोग उसे तंग करते थे। व्यापारी लोग उससे दुश्मनी करने लगे थे, परंतु इसके बदले में उसने उन्हें प्रकाश के समुद्र में डुबो दिया। सच है—महान् पुरुष काँटों के बदले अपने विरोधी के मार्ग में फूल बिछाया करते हैं।

१०. सबसे पहली विद्युत् के द्वारा चलनेवाली मेनलो-पार्क की रेलगाड़ी, ४० मील प्रति घंटे की चाल से चलकर एक खाईं में धँस गई। एडीसन ने अपनी सफलता पर प्रसन्न होकर कहा—"क्या ही सुंदर परीक्षा है!"
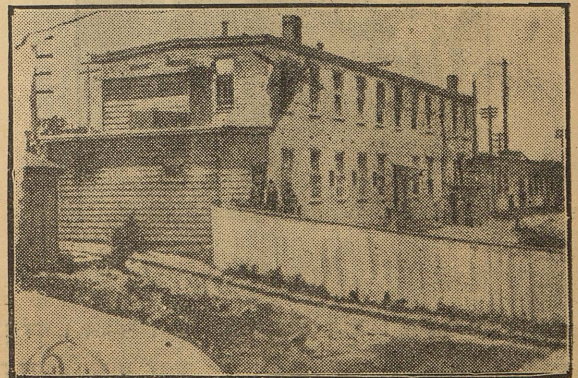
चित्र ९
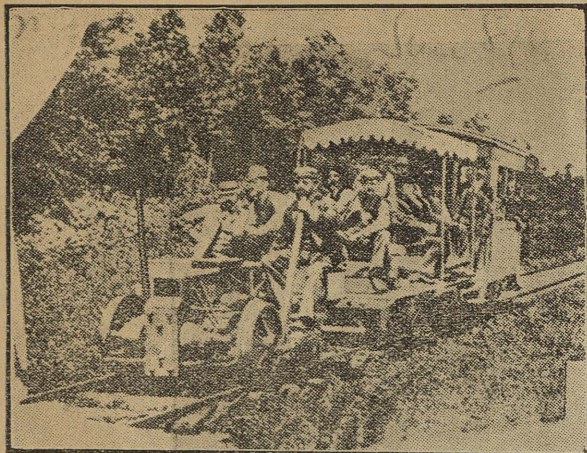
चित्र १०

११. एडीसन ग़ज़ब की शक्ति रखता है। सन् १९०४ तक उसने एक हज़ार से अधिक आविष्कार कर लिए थे। एक दिन ऐसा भी था कि जब वह एक साथ ४५ भिन्न-भिन्न आविष्कारों के संबंध में परीक्षा करता था। बड़े-बड़े वैज्ञानिक एक ही आविष्कार के समय दूसरों

चित्र ११

की ओर अपना ध्यान भी नहीं लगा सकते। परंतु एडीसन एक ईश्वर-दत्त शक्तिवाले चतुर वाद्य-विशारद की तरह है, जो एक ही समय अनेक तंत्रियों में से, हृदय को हिला देनेवाले स्वर को निकाल सकता है।

१२. एडीसन बेले विद्युत्-गाड़ी के पास खड़े हुए हैं। सन् १९१२ में आपने एक ऐसी बैटरी का आविष्कार किया था, जो बिना किसी अड़चन के एक हज़ार मील की यात्रा की परीक्षा में सफल हुई। आजकल आपकी बैटरियाँ मोटरों, गाड़ियों, रेलों आदि में बहुतायत से काम में लाई जाती हैं।
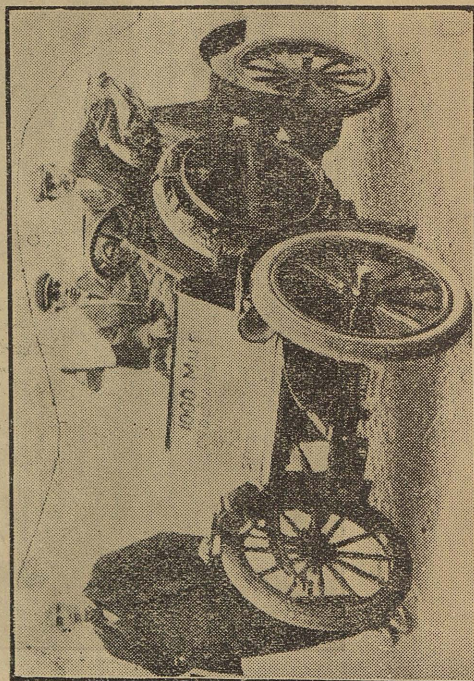
चित्र १२

१३. संसार सफल मनुष्य की प्रशंसा करता है; गड्ढे में गिर जानेवाले को ठोकर लगाकर हँस देता है। एडीसन जब ग़रीब था, अज्ञान था, तब कोई आँख उठाकर भी उसकी ओर न देखता था। समय ने पलटा खाया और उसकी सफलता ने अपने चारों ओर मधुमक्खियों को बुला लिया। बड़ी-बड़ी सरकारों ने उसे तमगे दिए, विश्वविद्यालयों ने पदवियाँ दीं। देखिए, आप प्रिंसटन-विश्वविद्यालय के डीन के साथ जा रहे हैं। इस विश्वविद्यालय ने आपको एल्० एल्-डी० की आनरेरी उपाधि प्रदान कर अपने को धन्य माना है।

१४. फोनोग्राफ के बाद एडीसन ने एक ऐसी मशीन का आविष्कार किया, जो मुँह से निकलनेवाले हरएक शब्द को लिख लेती है। अपने पुस्तकालय में एडीसन 'एडीफोन' के द्वारा विचारों को लिपिबद्ध कर रहे हैं।

चित्र १३
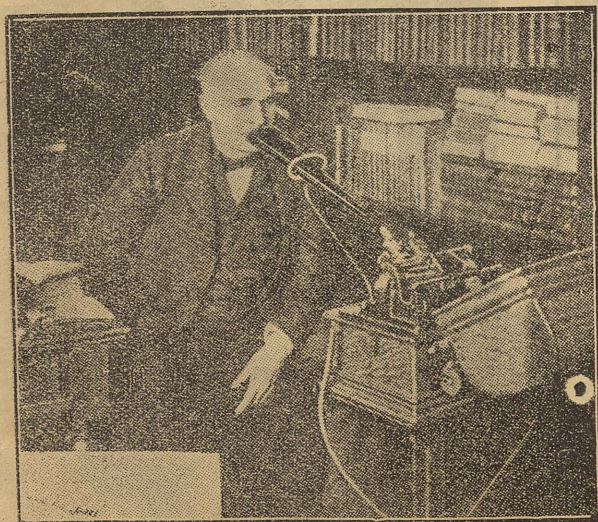
१५. वर्तमान समय में एडीसन की बैटरी का उपयोग खदानों में, रेल-संचालन करने और प्रकाश करने के काम में होता है। आप खदानों में काम आनेवाले अपने एक लैंप की परीक्षा कर रहे हैं। यह चित्र सन् १९२८ में लिया गया था। आज भी एडीसन नवयुवकों की-सी शक्ति रखता है, और अपनी आराध्यदेवी प्रकृति के समान ही प्रसन्नमुख रहता है।
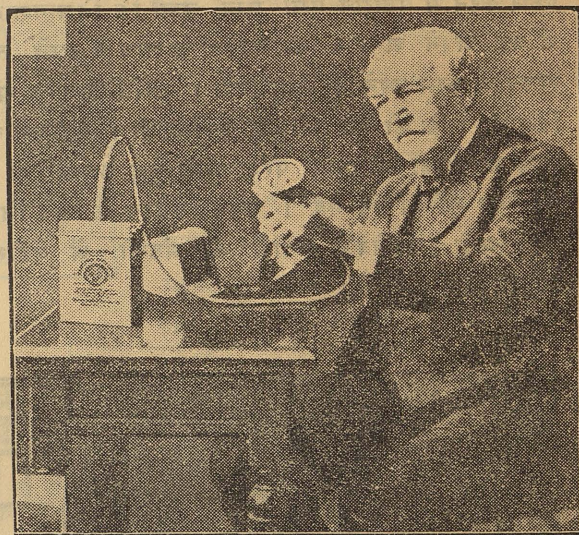
चित्र १५

१६. अनेकों आविष्कार यों ही नहीं हो गए। एडीसन ने घोर तपस्या की है। जीवन में वह कभी

चित्र १४
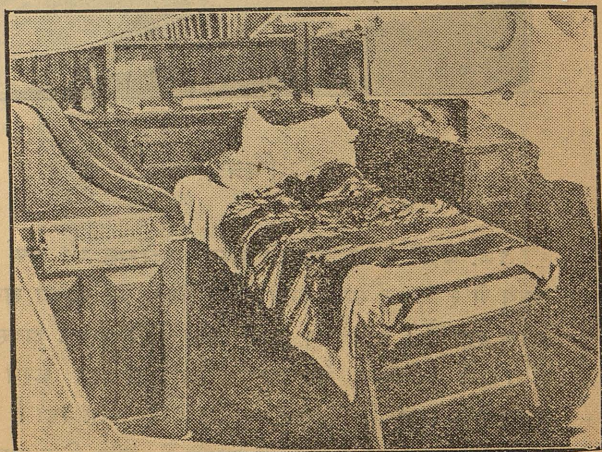
चित्र १६

किसी दिन ३ या ४ घंटे से अधिक नहीं सोया। करोड़-पति, विज्ञान के संसार-प्रसिद्ध तपस्वी का यह साधारण कठोर बिस्तर है। इसी पर उसने अपने गत २५ वर्ष बिताए हैं। उसकी सफलता की प्रधान कुंजी हैं--विकट शारीरिक स्वास्थ्य, नियमित जीवन, घोर दिमाग़ी परिश्रम और अल्प निद्रा।

१७. सन् १९१० में डायमंड डिस्क फोनोग्राफ के आविष्कार करने में एडीसन ऐसा मग्न हुआ कि विज्ञानशाला में वह अपने अन्य ६ कर्मचारियों के साथ ६ हफ़्ते तक रात-दिन काम करने में लगा रहा। शारीरिक शक्ति और दिमाग़ी शक्ति की यह भीषण परीक्षा थी। एडीसन का बाल भी बाँका न हुआ, परंतु उसके कुछ कर्मचारियों के चेहरे पर झुर्रियाँ पड़ गईं। अपने उद्देश्य के लिये निद्रा से दुश्मनी करनेवाले वीरों की मंडली में एडीसन दाहनी ओर बैठा है।
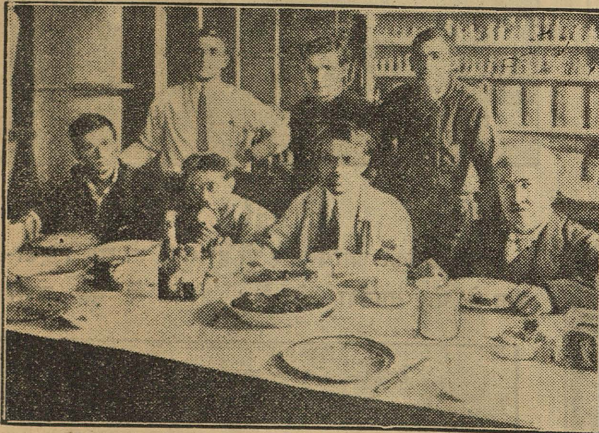
चित्र १७

१८. बुढ़ापे ने आ घेरा तो क्या? एडीसन ८१ वर्ष की आयु में रबड़ तैयार करने की क्रिया का पहला सबक़ सीख रहा है। ज्ञान का एक सच्चा प्रेमी प्रत्येक अवस्था में किसी शिक्षक से नम्रता-पूर्वक ज्ञान प्राप्त करने में प्रयत्नशील रहता है। एक व्यक्ति उन्हें बता रहा है कि रबड़ के झाड़ को इस तरह से काटते हैं, और फिर उससे गाढ़ा पदार्थ निकलने लगता है। क्या कोई कह सकता है कि एडीसन वृद्ध है?

चित्र १८

१९. समय और आविष्कार ही जिसके जीवन की पहेलियाँ हैं, जिसने असफल होकर शोक के आँसू कभी नहीं बहाए, जिसने निराशा को अपने पास नहीं फटकने दिया, परिश्रम करने में जिसने तिल-

चित्र १९

मात्र भी कसर नहीं रक्खी, जिसने सूर्य और चंद्रकी गति को अपनी जीवनचर्या से ठुकरा दिया, ऐसा वीर एडीसन है--प्रकृति माता ने अपने प्यारे बालक का मुँह चूम लिया, और अपने मंदिर के रहस्यों को प्रसन्नता से बता दिया।

२०. इस वर्ष संसार की सभ्यता में महान् उन्नति करनेवाले एडीसन को यूनाइटेड स्टेट्स की कांग्रेस ने एक मेडल दिया है। मेडल के मुख पर एडीसन का चित्र बना हुआ
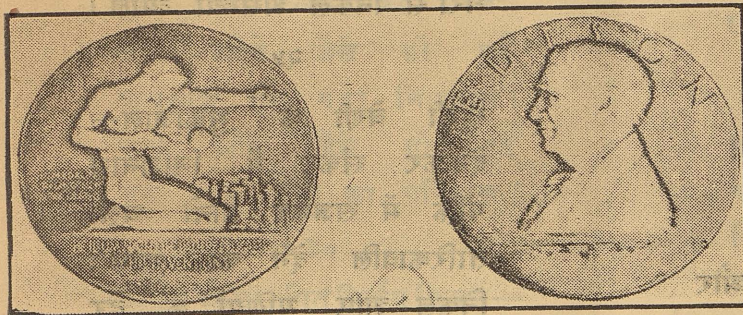
चित्र २०

है, और पीछे भी एक चित्र है। उसके नीचे लिखा हुआ है--"उसने (एडीसन ने) उन्नति के पथ को अपने आविष्कारों से प्रकाशित कर दिया।"

२१. एडीसन की जीवनी भला संसार के किस युवक को उन्नति के मार्ग पर ले जाने के लिये उत्साहित नहीं करेगी।
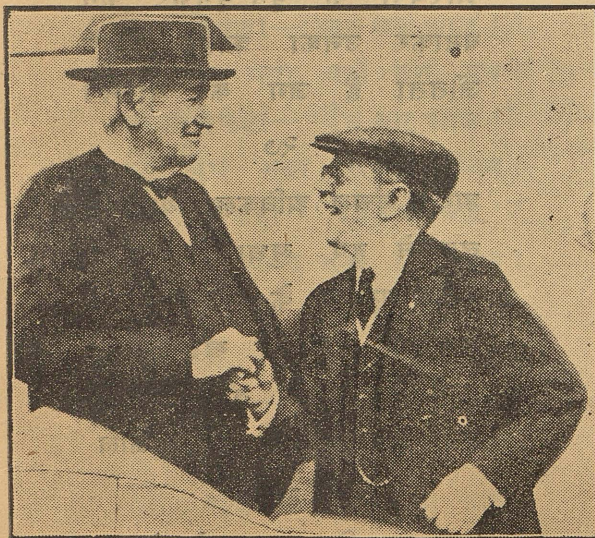
चित्र २१

सारा अमेरिका आज हर्ष से बधाइयाँ बजा रहा है। भला कौन उस महान् व्यक्ति से हाथ मिलाकर खुश न होगा। मानव-जाति उसकी ऋणी है। ४८ वर्ष से एडीसन के कार्यों में भाग लेनेवाला एक व्यक्ति उन्हें बधाई दे रहा है।

२२. अहा! इन पिता-पुत्रों को देखकर किसका हृदय आनंद से न उछल पड़ेगा। यह चित्र २५ वर्ष पहले का है। अब चार्ल्स एडीसन अपने पिता की संचालित की हुई बड़ी-बड़ी कंपनियों का प्रेसीडेंट है। उनमें एडीसन फोनोग्राफ डिस्ट्रीब्यूटिंग कंपनी, एडीसन बैटरी कंपनी, एडीसन पोर्टलैंड सीमेंट कंपनी आदि भी शामिल हैं। देखें, भारत के एडीसन कब अपना प्रकाश फैलाते हैं। हम इस विज्ञान के प्रेमी, प्रकृति के रहस्यों का उद्घाटन करनेवाले, घोर परिश्रम की गोद में पल-

चित्र २२
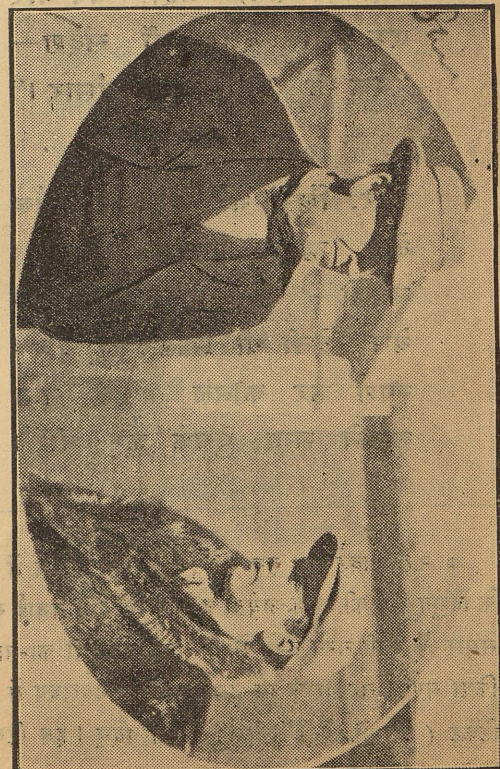
कर वैज्ञानिक सभ्यता को चरम सीमा की ओर ले जानेवाले, मानव-जाति के सुख-आराम और विलास की सामग्रियों के तैयार करनेवाले प्यारे एडीसन को हृदय से बधाई देते हैं। *

नाथूराम शुक्ल

क़ैदी

[प्रथम सर्ग—उत्तरार्द्ध]

२२

रुकी वेणी पर नौका, और
युवक सब करने लगे विहार,
कुदककर जल में हम सब साथ
नहाने लगे, जहाँ त्रय-धार
एक हो देती थीं संदेश—
"एक है यह सारा संसार।"

२३

और, खिंच गई अचानक आँख
देख शृंगार स्वयम् सशरीर।
नवेली की नव-यौवन प्रभा
वेध देती थी झिल-मिल चीर।
स्पर्श कर कोमल मंजुल गात
नाचने लगा पुलक कर नीर।

२४

तरंगों में लहराते हुए
खुले घुँघराले काले बाल—
गरल से मानो होकर त्रस्त
सुधा पीने आए उस काल
लपटकर शशि से मंडल बाँध
धरा से निकल असंख्यों व्याल।

२५

खुली वेणी के मुक्ताजाल—
देखकर संकट में निशिनाथ
पंक्ति में सजकर मानो चलीं
तारिकावलि देने को साथ;
निकल आए मणियों के ढेर
मथित होकर व्यालों के साथ।

२६

हृदय में अंकित है अब तक
भृकुटियों का वह बाँकापन!
जल गया था जब अजित मदन।
अस्थियों के चुन-चुनकर कन
बनाकर उनका काला धनुष
जीतता है जग को यौवन।

२७

अरे वे चंचल अविकल नयन!—
छलकते हुए सुधा के ताल,
सलज सुषमा के सुंदर अयन,
हँस रहे थे दो खंजन-बाल;
छुपे थे उनमें तीव्र कटाक्ष,
मदन के कुसुमों का शर-जाल

२८

"जला था विकल सुरा के हेतु।"
ब्रह्म ने सुनकर रति का रुदन;

---

* २१ आक्टोबर, सन् १९२९ को सारे संसार में एडीसन के विद्युत्-लैंप की स्वर्ण-जयंती बड़ी धूमधाम से मनाई गई थी। संसार के सभी सभ्य देशों में उस दिन दीवाली का-सा प्रकाश किया गया। सरकार ने भी उस ख़ुशी के उपलक्ष्य में सरकारी टिकट (Postal Ticket) चला दिए। इन टिकटों पर एडीसन का चित्र है।—सं० मा०

नहीं क्रोधित होंगे त्रिपुरारि
देखकर हरि का पावन सदन!
विश्व में निर्मित किए अनेक
क्षीरसागर के साथ मदन।

२९

चार आँखें जैसे ही हुईं
हुआ मेरी संज्ञा का ह्रास,
चार आँखें जैसे ही हुईं
अचानक छूट पड़ा निःश्वास।
चार आँखें जैसे ही हुईं
उठ पड़ा मित्रों का परिहास!

३०

अशुभ अभिशापित निर्दय दिवस—
उसी दिन हुआ प्रेम का ज्ञान!
उसी दिन कंटक बना समाज
उसी दिन लोप हो गया ज्ञान!
उसी दिन पल में मैंने किया
पतन-रूपी मदिरा का पान।

३१

किसी ने कहा—"लुट गए आज!"
अरे लुट गया वहाँ तन, मन।
किसी ने कहा—"बँध गए आज!"
अरे बँध गया सकल जीवन।
किसी ने कहा—"पतन को चले!"
यहाँ है आदि-अंत ही पतन।

३२

मूर्ति-सी, मंत्र-मुग्ध-सी, और
हिमावृत-सा जल में जल-जात,
हुए पल-भर में अरुण कपोल
और क्षण में ही पीला गात;
अरी बाले! संध्या के चिह्न,
अभी आशा का अरुण प्रभात।

३३

साथ सुंदरता, गुरुजन साथ,
साथ यौवन का मधुर पराग।
साथ लोभी भ्रमरों का झुंड।
साथ था मलय, साथ थी आग।
यहाँ ऊँचे-नीचे का साथ
साधना ही है यहाँ विराग।

३४

साथ है कसक; साथ उल्लास।
साथ ही है पतझड़, मधुमास;
निराशा निर्दय, निर्मम साथ।
साथ ही आशा पर विश्वास;
साथ है पाप; साथ है पुण्य;
साथ ही राका साथ विकास।

३५

साथ है भ्रांति; साथ विश्वास;
साथ हैं यहाँ अनाथ-सनाथ;
साथ है पतन, साथ उत्थान,
साधना साथ, साथ रतिनाथ;
एक मेला है यह संसार,
देवि, मैं भी था तेरे साथ!

३६

चला अंधा-सा तेरे साथ
जहाँ है अंधकार का राज,
जहाँ मरते-मिटते हैं नित्य
जहाँ निशि-दिन गिरती है गाज;
जहाँ पर पग रखते ही देवि!
शत्रु बन जाता सकल समाज।

भगवतीचरण वर्मा

वर्णाश्रम-धर्म की वर्तमान स्थिति
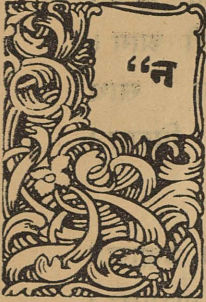
"न निवसेत् म्लेच्छराज्ये"—इस अनुशासन-वाक्य से साफ़ ज़ाहिर हो रहा है कि दुराचरणों से पतित म्लेच्छों का विस्तार उसके अनुशासन-काल में भी काफ़ी हो चुका था, चाहे वह भारतवर्ष की आधुनिक सीमा से बाहर ही हुआ हो। सृष्टि के दार्शनिक सिद्धांत के माननेवाले निस्संदेह कहेंगे—दैव और आसुर भावों की सृष्टि एक साथ ही हुई थी। सृष्टि कभी बिलकुल पवित्र नहीं होती। सृष्टि के चित्र-काव्य के दिखलानेवाले यहाँ के लोगों ने दिति और अदिति को एक ही कश्यप की पत्नी बनाकर अपनी सूक्ष्मदर्शिता में कमाल कर दिखाया है; इस तरह प्रत्येक सृष्टि के अंदर आसुर भाव का कुछ-न-कुछ अंश रहना सिद्ध होता है। इधर रामायण के रचयिता ने भी इसी सत्य की रक्षा के लिये सीता-जैसी "हरिहरब्रह्मादि-भिर्वन्दिता" नारीकुल-शिरोमणि के चरित्र-चित्रण में ज़रा-सा दाग़ दिखलाया है, लक्ष्मण के प्रति उनसे कटु प्रयोग कराकर। ऐसा न कराते, तो सूक्ष्मदर्शी महापुरुषों के विवेचन में सीता का चरित्र अधूरा समझा जाता। बात यह कि कोई सृष्टि निष्कलुष नहीं हो सकती।

परंतु मुक्ति के विवेचन में ज़रा-सा भी कलुष पहाड़ के समान बाधक है—"अवधू, अमल करै सो पावै।" असत् या कलुष ही पुनर्जन्म का कारण है—संस्कार और शरीर-धारण असत् के ही आश्रय से संभव हैं। शुद्ध सत्ता निर्बीज है। सृष्टि, स्थिति और प्रलय के नियम उसमें नहीं।

समाज जब तक गतिशील है, सृष्टि के नियमों में बँधा हुआ है, तब तक वह निष्कलुष नहीं; कारण वही, सृष्टि सदोष है। परंतु चूँकि समाज निर्मलत्व की ओर गतिशील है, इसीलिये उसके अंगों से हर तरह के कलुष के निकालने की चेष्टाएँ की गई हैं। इसीलिये समाज-शासकों ने अनेकानेक विधानों द्वारा उसे बचाने का प्रयत्न किया है।

दोषों में संस्पर्श-दोष भी एक माना गया है। इसका प्रभाव प्रत्यक्ष है। विषय के संस्पर्श से ही मनुष्य में विषय की वृत्ति पैदा होती है। इसी तरह म्लेच्छों के राज्य में रहने से उनके संस्पर्श से द्विजातीयत्व भी नष्ट होता है, दुराचरण फैलते हैं, समाज की अधोगति होती है, वर्णाश्रम-धर्म नहीं रह जाता। इसी विचार से द्विजातियों को म्लेच्छों के राज्य में रहने से निषेध किया गया।

यहाँ तक तो यह म्लेच्छों के राज्य में न रहने के अनुशासन की एक ज़रा-सी व्याख्या हुई। प्रश्न असल यह है कि हज़ार वर्षों से म्लेच्छों के राज्य में बसकर जीवित रहनेवाली, अनेक कुसंस्कारों की खान यह अपने लिये परमपावन द्विज-जाति अब तक द्विजाति ही बनी हुई है या नहीं।

जो लोग सृष्टि के 'जन्म और मृत्यु', इन दोनों रहस्यों को भली भाँति जानते हैं, वे यह भी जानते हैं कि दिन और रात के जोड़े की तरह उत्थान और पतन का भी विवर्तन एक चिरंतन सत्य है। इस सत्य के बंधन से मुक्त होकर उन्नतिशील द्विज-जाति कभी पतन की अवस्था को प्राप्त होगी ही नहीं, कभी शूद्रत्व की भूमि में अवतीर्ण होगी ही नहीं, यह कहना या किसी अन्य युक्ति से चिरंतन द्विजत्व की पुष्टि करना एक प्रकार की कठहुज्जती करना ही है।

इधर "माधुरी" में वर्ण-व्यवस्था पर जितने लेख निकले हैं, उनमें से कोई भी लेख ऐसा नहीं, जो विवर्तित समय की मौलिकता या नवीन युग का यथार्थ तत्व समझाता हुआ वर्ण-व्यवस्था की एक विचार-पुष्ट व्याख्या कर रहा हो। सब-के-सब अपनी ही धुन में लीन, अपने ही अधिकार के प्रतिपादन में नियोजित हो रहे हैं। शूद्रों के प्रति केवल सहानुभूति-प्रदर्शन कर देने से ब्राह्मण-धर्म की कर्तव्यपरता समाप्त नहीं हो जाती, न "जाति-पाँति-तोड़क मंडल" के मंत्री संतरामजी के करार देने से इधर दो हज़ार वर्ष के अंदर का संसार का सर्वश्रेष्ठ विद्वान् महामेधावी त्यागीश्वर शंकर शूद्रों के यथार्थ शत्रु सिद्ध हो सकते हैं। शूद्रों के प्रति उनके अनुशासन, कठोर-से-कठोर होने पर

भी, अपने समय की मर्यादा से दृढ़ संबद्ध है। ख़ैर, वर्ण-व्यवस्था की रक्षा के लिये जिस "जायते वर्णसंकरः" की तरह के अनेकानेक प्रमाण उद्धृत किए गए हैं, उनकी सार्थकता इस समय मुझे तो कुछ भी नहीं देख पड़ती, न "जाति-पाँति-तोड़क मंडल" की ही विशेष कोई आवश्यकता प्रतीत होती है। "जाति-पाँति-तोड़क मंडल" को मैं किसी हद तक सार्थक समझता, यदि वह "जाति-पाँति-योजक मंडल" होता। "तोड़" ही हिंदुस्थान को तोड़ रहा है। देश या जाति में आवश्यकता उस समय उठती है, जब किसी भाव, संगठन या कृति का अभाव होता है। जाति-पाँति तोड़ने का अभाव एक समय इस देश में हुआ था ज़रूर, पर वह ब्राह्म-समाज द्वारा बड़ी अच्छी तरह पूरा किया जा चुका है। ब्राह्मसमाज के रहते हुए संतरामजी आदिकों ने "मंडल" की स्थापना क्यों की, ब्राह्मसमाज की ही एक शाखा वहाँ क़ायम क्यों नहीं कर ली, इस प्रश्न का उत्तर क्या होगा, यह अनुमान से बहुत कुछ समझ में आ रहा है। यहाँ खड़ा होता है व्यक्तित्व और कुछ भेद। भाईजी के व्यक्तित्व को देश में ऐसा मनुष्य कौन होगा, जो आदर-पूर्वक न देखता हो, और उनके व्यक्तित्व से जिस कार्य का संगठन होगा, उसे पृष्ठभूमि न मानता हो। परंतु यह बात और है। इस लेख का उद्देश्य है वर्णाश्रम-धर्म की वर्तमान सार्थकता, जिसमें एक ओर जाति-पाँति-तोड़क मंडल के व्यक्तित्व तक आया गया है; दूसरी ओर है प्राचीन हिंदू-समाज, जिसकी संकीर्णता तथा अनुदारता की तरफ़ इशारा करके ही अनेकानेक समाज उसके अंग से छूटकर अलग हो गए हैं।

जब विचार की पहुँच किसी तरह सत्य तक हो जाती है, उस समय मस्तिष्क की तमाम विश्रृंखलाएँ दूर हो जाती हैं। ज़रा देर के लिये एक प्रकार की शांति मिलती है। भारतवर्ष को मुक्ति की ओर ले जाने वाले आज तक जितने भी विचार देखने में आए हैं, वे राजनीतिक, धार्मिक, साहित्यिक, सामाजिक किसी भी दिशा में झुकाए गए हों, वैदांतिक विचार की समता नहीं कर सकते। कोई भी "मंडल" ऐसा नहीं, जिसमें कोई-न-कोई दोष न हो। कोई वाद ऐसा नहीं, जो जाति, देश या समाज को पूर्ण स्वतंत्रता तक पहुँचा सके—जहाँ किसी प्रकार का विरोध न हो। भारतवर्ष की समाज-श्रृंखला उसी वैदांतिक धातु से मज़बूत की गई है। कोई वर्णाश्रम-धर्म को माने या न माने, पर अपनी प्रगति की व्याख्या में यदि वह वेदांत को भी नहीं मानता, जैसा कि आजकल अधिकांश शिक्षितों की शिरश्चरण-विहीन युक्तियों में देखा जाता है, तो वह भारतीय कहलाने का दावा नहीं कर सकता। पहले भाईजी के संबंध में व्यक्तित्व का ज़िक्र आ चुका है। यहाँ यह कहना पड़ता है कि वैदांतिक सत्यदर्शन की ओर जो जितना ही बढ़ा हुआ है, उसका व्यक्तित्व उतना ही महत्त्व-पूर्ण और अक्षय है। दूसरे, वैदांतिक विचार भारतीय होने के अलावा एक दूसरे से संयोग करनेवाले होते हैं, तोड़क नहीं। केवल भारत के लिये ही नहीं, तमाम संसार के मनुष्यों के लिये एक दूसरे से संयोग ही आवश्यक है, वियोग नहीं। यदि हर मनुष्य से वियोग या "तोड़न" जारी रहा, तो यह जाति, देश या समाज के लिये कल्याणकर कब हो सकता है? योरप से भारतवर्ष की महत्ता में इतना ही फ़र्क़ है। योरप में प्रजा-विप्लव से लेकर आज तक जितने भी परिवर्तन हुए हैं, सब-के-सब तोड़क ही रहे हैं, यानी "इसे नष्ट करो, तो यह दुरुस्त होगा"—इस विचार के आधार पर हुए हैं। इस तोड़क भाव का प्राधान्य वहाँ इसलिये है कि वहाँ के लोग भोगवादी हैं। उनके भोग में जहाँ कहीं कोई ठेस लगी कि उनका धैर्य जाता रहा—विद्रोह खड़ा हो गया, और उसी के बल पर जो सुधार होना था, हुआ। वहाँ की बाह्य प्रकृति के साथ संबद्ध मनुष्यों के मन की विचार-धारा भी यहाँवालों की विचार-धारा के अननुकूल है। यह देश त्यागवादी है। पिता-पुत्र, पति-पत्नी से लेकर गुरु-शिष्य और संन्यासियों में त्याग का ही आदर्श फैला हुआ है। यहाँ जीवन है अमृतत्व, जो त्याग ही से प्राप्त होता है। इस अमृत का जो जितना ही बड़ा अधिकारी है, उसका व्यक्तित्व भी उतना ही महान् होगा और यह व्यक्तित्व घातक या तोड़क नहीं होता, किंतु संयोजक हुआ करता है। इसे ही वैदांतिक साम्यदर्शन कहते हैं।

जिस तरह किसी मनुष्य-विशेष का व्यक्तित्व होता है, उसी तरह समाज का भी एक व्यापक व्यक्तित्व हुआ करता है। समाज के इस व्यापक व्यक्तित्व को, युक्ति के

अनुसार, अनार्य भावों द्वारा धक्का पहुँचता है, जिस तरह एक विशिष्ट व्यक्तित्व को भीतरी इतर वृत्तियों द्वारा। यहाँ के समाज-शासकों ने जो कठोर-से-कठोर नियम शूद्रों के लिये बनाए हैं, उसका कारण यह नहीं कि वे निर्दय थे, और अपने अधिकारों को बढ़ाते रहना ही उनका ध्येय था। यदि हिंदू-नामधारी किसी मनुष्य के मुख से उन पर इस तरह के अपराध का लांछन लगाया जाता है, तो चाहे वे महात्माजी हों या भाईजी या संतरामजी या कोई भी प्रतिष्ठित पुरुष, मैं निस्संदेह कहूँगा, आपने हिंदू-धर्म की केवल कुछ पुस्तकें ही देखी हैं, किंतु उसकी व्याख्या करने की शक्ति आपमें नहीं है, आप उसके रहस्यों को नहीं समझते। एक बालक को राह पर लाने के लिये कभी तिरस्कार की भी ज़रूरत होती है, पर समझदार के लिये सिर्फ़ इशारा काफ़ी कहा गया है। बालक फिर भूल जाता है, फिर प्रवृत्ति के वशीभूत होकर असत्पथ की ओर जाता है; पर समझदार से बार-बार ग़लती नहीं होती। तत्कालीन एक ब्राह्मण का उत्कर्ष और एक शूद्र का बराबर नहीं हो सकता। अतएव दोनों के दंड भी बराबर नहीं हो सकते। लघु दंड से शूद्रों की बुद्धि भी ठिकाने न आती। दूसरे, शूद्रों से ज़रा-से उपकार पर सहस्र-सहस्र अपकार होते थे। उनके दूषित बीजाणु तत्कालीन समाज के मंगलमय शरीर को अस्वस्थ करते थे—उनकी इतर वृत्तियों के प्रतिघात प्रतिदिन और प्रतिमुहूर्त समाज को सहना पड़ता था। निष्कलुष होकर मुक्तिपथ की ओर अग्रसर होनेवाले शुद्ध-परमाणु-काय समाज को शूद्रों से कितना बड़ा नुकसान पहुँचता था, यह "मंडल" के सदस्य समझते, यदि वे भोगवादी—अधिकारवादी—मानवादी—इस तरह जड़वादी न होकर त्यागवादी या अध्यात्मवादी होते। इन इतने पीड़नों को सहते हुए अपने ज़रा-से बचाव के लिये—आदर्श की रक्षा के लिये—समाज को पतन से बचाने के लिये अगर द्विज-समाज ने शूद्रों के प्रति कुछ कठोर अनुशासन कर भी दिए, तो हिसाब में शूद्रों द्वारा किए गए अत्याचार द्विज-समाज को अधिक सहन करने पड़े थे, या द्विज-समाज द्वारा किए गए शूद्रों को? उस समय भारतवर्ष का ध्यान अधिकार की ओर नहीं था। यह कहा जा चुका है कि समाज की प्रत्येक आज्ञा सत्य से संबंध रखकर दी जाती थी। यहाँ के समाज-पतियों के चरित्र की छानबीन करके उन पर लांछन लगाना उचित होता। शंकर को क्या पड़ी थी, जो शूद्रों को हीन और ब्राह्मणों को श्रेष्ठ बतलाते? उन्हें न तो ब्राह्मणों से कुछ लाभ ही था, न शूद्रों से कोई नुक़सान। एक विरक्त और इतने बड़े त्यागी पर लांछन लगाना क्या शूद्रत्व के समर्थकों की मानसिक दुर्बलता का ही परिचय नहीं?—अपितु, इस तरह, यह सिद्ध करना है कि शंकर को ईश्वर की प्राप्ति नहीं हुई थी—ब्रह्म के दर्शन नहीं हुए थे; ब्रह्म के दर्शन करनेवाला महापुरुष भी किसी का शत्रु और किसी का मित्र होता है—द्वैतभाव रखता है, यह संतरामजी ही कह सकते हैं। और, जो पीपल-ताज़िया आदि के पूजकों का मख़ौल उड़ाया गया है, यह भी सिद्ध करता है कि लेखक को अध्यात्मवाद का कुछ भी ज्ञान नहीं। यदि प्रह्लाद को खंभे में भी श्रीभगवान् की मूर्ति दिखलाई पड़ती है, तो पीपल-पूजकों ने ही कौन-सा बड़ा क़ुसूर कर डाला?—भक्ति में पात्र और सुपात्र का निर्णय क्या?—ईश्वर किस केंद्र में नहीं है?—ताज़िया पूजना भी हिंदुओं की उदार पूजा की भावना का ही परिचय देता है, जहाँ हिंदू-मुसलमान का भेद नहीं—ईश्वर की अभेदता ज़ाहिर है। शंकर ने जो अनुशासन दिए हैं, वे अधिकारियों के विचार से ही दिए गए हैं। न शूद्रों ने अपने इतर कर्मों को छोड़ा, न वे उठ सके। जो उदाहरण शूद्रों के मिलाने के मिलते हैं, उनमें यही ज़ाहिर है क उनके हृदय में श्रद्धा आई थी, वे अनार्य से आर्य हुए थे, और आर्यों ने उन्हें अपनाया था। फिर कहना न होगा, जब सत्कार्यों का भार उनसे उठाया न उठा, तब रामदास और वशिष्ठ के नाम पर खड़े किए गए उस समाज ने अपनी पूर्व-मूषिकत्व की संज्ञा फिर से प्राप्त कर ली। उनके लिये ऐसा कहना उचित नहीं कि वे गिरा दिए गए, बल्कि यों कहिए कि वे आप गिर गए। इस गिरने में हिंदू-समाज के द्विजत्व का क्या क़ुसूर? यहाँ के समाज का तो मूलमंत्र ही रहा है—

"उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत"

पारसी-जैसी दूसरी जाति को जिस जाति ने शरण दी, उस जाति के गौरव ब्राह्मणों ने अंत्यजों को गिरा दिया, यह संतरामजी ही कह सकते हैं, पर मेरे पास

मौन के सिवा उनके प्रति इसके उत्तर में और कोई शब्द नहीं। क्या तमाम राजनीतिक अधिकार, मुसलमानों की तरह, हिंदुस्थान की छाती पर रहकर भोग करना पारसियों के भी डंडे का ही फल है ? जहाँ शूद्रों के प्रति स्मृतिकारों ने कठोर दंड की योजना की है, वहाँ उन्होंने यह भी लिखा है—"श्रद्धा-पूर्वक शुभ विद्या, श्रेष्ठ धर्म और सुलक्षणा स्त्री अंत्यजों के निकट से भी ग्रहण करो।" इसका पुरस्कार उन्हें क्या दिया जा रहा है ? क्या इन पंक्तियों में अंत्यजों के बहिष्कार या विरोध की कोई ध्वनि निकलती है ?

सृष्टि की साम्यावस्था कभी नहीं रहती, तब अंत्यजों या शूद्रों की ही क्यों रहने लगी ? ज्यों-ज्यों परिवर्तन का चक्र घूमता गया, त्यों-त्यों असीरियन सभ्यता के साथ एक नवीन शक्ति एक नवीन वेदांतिक साम्य-स्फूर्ति लेकर पैदा हुई, जिसके आश्रय में देखते-देखते आधा संसार आ गया। भारतवर्ष पर गत हज़ार वर्षों से उसी सभ्यता का प्रवाह बह रहा है। यहाँ की दिव्य शक्ति के भार से झुके हुए निम्न-श्रेणियों के लोगों को उसकी सहायता से सिर उठाने का मौक़ा मिला—वे लोग मुसलमान हो गए। यहाँ की दिव्य सभ्यता आसुर सभ्यता से लड़ते-लड़ते क्रमशः दुर्बल हो गई थी, अंत तक उसने विकारग्रस्त रोगी की तरह विकलांग, विकृत-मस्तिष्क होकर अपने ही घरवालों से तर्क-वितर्क और लड़ाई-झगड़ों पर कमर कस ली। क्रोध अपनी ही दुर्बलता का परिचायक है, और अंत तक आत्मनाश का कारण बन बैठता है, उधर दुर्बल का जीवन भी क्रोध करना ही है, उसकी और कोई व्याख्या भी नहीं। फलतः ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य-शक्ति पराभूत होकर मृत्यु की प्रतीक्षा करने लगी। जब ग्रीक सभ्यता का दानवी प्रवाह गत दो शताब्दियों से आने लगा, दानवी माया अपने पूर्ण यौवन पर आ गई, हिंदुस्थान पर अँगरेज़ों का शासन सुदृढ़ हो गया, विज्ञान ने भौतिक करामात दिखाने आरंभ कर दिए, उस समय ब्राह्मण-शक्ति तो पराभूत हो ही चुकी थी, किंतु क्षत्रिय और वैश्य-शक्ति भी पूर्णतः विजित हो गई। शिक्षा जो थी अँगरेज़ों के हाथ में गई, अस्त्र-विद्या अँगरेज़ों के अधिकार में रही (अस्त्र ही छीन लिए गए, तब वह विद्या कहाँ रह गई ? और वह क्षत्रियत्व भी विलीन हो गया), व्यवसाय-कौशल भी अँगरेज़ों के हाथ में। भारतवासियों के भाग्य में पड़ा शूद्रत्व। यहाँ की ब्राह्मण-वृत्ति में शूद्रत्व, क्षत्रिय-कर्म में शूद्रत्व, और व्यवसायी जो विदेशों का माल बेचनेवाले हैं कुछ और बढ़कर शूद्रत्व इख़्तियार कर रहे हैं। अदालत में ब्राह्मण और चांडाल की एक ही हैसियत, एक ही स्थान, एक ही निर्णय। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य अपने घर में ऐंठने के लिये ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य रह गए। बाहरी प्रतिघातों ने भारतवर्ष के उस समाज-शरीर को, उसके उस व्यक्तित्व को, समूल नष्ट कर दिया; बाह्य दृष्टि से उसका अस्तित्व ही न रह गया। अँगरेज़-सरकार ने मुसलमान और नान-मुसलमान के दो हिस्से करके हिंदू-समाज की क़द्र में एक क़दम और बढ़कर अपनी गुणग्राहिता प्रकट की। यहाँ साफ़ ज़ाहिर हो रहा है कि

"न निवसेत् म्लेच्छराज्ये"

का फल क्या होता है, संस्पर्श-दोष का परिणाम कितना भयंकर हुआ करता है।

भारतवर्ष की तमाम सामाजिक शक्तियों का यह एकीकरण-काल शूद्रों और अंत्यजों के उठने का प्रभात-काल है। प्रकृति की यह कैसी विचित्र क्रिया है, जिसने युगों तक शूद्रों से अपर तीन वर्णों की सेवा कराई और इस तरह उनमें एक अदम्य शक्ति का प्रवाह भरा, और अब अनेकानेक विवर्तनों के भीतर से गुज़रती हुई, उठने के लिये उन्हें एक विचित्र ढंग से मौक़ा दिया है, भारतवर्ष का यह युग शूद्र-शक्ति के उत्थान का युग है। और देश का पुनरुद्धार उन्हीं के जागरण की प्रतीक्षा कर रहा है।

अगर शूद्र गालियों के बल पर, ब्राह्मणों से ईर्षा करके उठना चाहते हों, तो यह उनकी समझ की कमज़ोरी है। इस तरह भारत की किसी भी जाति का संगठन सुदृढ़ नहीं रह सकता। कारण, कमज़ोर हुए ब्राह्मणों को गालियाँ देने से उठती हुई जाति तमाम ब्राह्मण-समाज पर विजय नहीं प्राप्त कर सकती। कायस्थों के समाज ने ब्राह्मणों के बहिष्कार के प्रस्ताव पास किए। पर इससे फल क्या हुआ ? "महाराज"-जैसी उपाधि का भोक्ता इस समय भी पाचक ब्राह्मण ही हुआ करता है। पर लालाजी को समाज में कोई भी पंडितजी नहीं कहता। दूसरे, ब्राह्मणों को गालियाँ

तो सभी देते हैं, पर ब्राह्मण बनने का इरादा कोई भी नवीन संगठित जाति नहीं छोड़ती। इस तरह ब्राह्मणों की प्रतिष्ठा बढ़ती ही जाती है। लोगों में जैसे ब्राह्मणत्व का लालच बढ़ गया हो।

कुछ समय बीता, जब डलमऊ (रायबरेली) में अखिल भारतवर्षीय अहीरों की सभा थी। सौभाग्य से मैं भी वहाँ मौजूद था। भारत के सभी प्रांतों से अहीर भाई आए थे। कुछ अहीर क़स्बे में दूध बेचने गए। मैंने एक से पूछा—क्यों जी, अब तो तुम चाहे अहीर से कुछ और हो जाओ। उसने कहा—"हाँ कहते हैं कि तुम छत्री हौ। यह चाहै जौन कहैं, मुलो दूध बेचै का मना करिहैं तो हम तो भाई साफ कहि देब कि हम तो दूध बेचब बंद न करब चहै अपन जनेऊ उतरवाय लेव—कौ हमरे घास कै रारि म्वाल लेई!" बात यह कि उसे वह क्षत्रिय होना मंज़ूर नहीं, जिससे उसका दूध बेचना बंद हो जाय और परंपरा से वह सुनता आया है—उसका विश्वास भी दृढ़ है कि दूध बेचनेवाला कभी क्षत्रिय नहीं होता—वह अहीर ही है, चाहे जनेऊ के तीन ताग नहीं और बारह ताग उसके गले में डाल दिए जायँ। अब संतरामजी सोचें, जहाँ अहीर, बढ़ई, कलवार और प्रायः सभी जातियाँ (जिनके सिर पर समाज ने निम्न जातीय भावना का भूत सवार कर रक्खा है) यदि ब्राह्मण और क्षत्रिय बन सकती हैं, तो पानी भरनेवाला या रोटी पकानेवाला ब्राह्मण फिर क्यों नहीं ब्राह्मण रह सकेगा—इस तरह तो उसे एक और बल मिल रहा है। जिसे वह कल बढ़ई कहता था, उसे ही अगर आज वह ब्राह्मण बनता हुआ देखे, तो क्या वह इतना कमज़ोर हो जायगा कि दूसरों के मिस्त्री और बवर्ची कहने से वह अपने को मिस्त्री या बवर्ची ही समझे?

और, ज़रा एक और मज़ेदार बात सुनिए। ब्राह्मण देवताओं का अपमान भी कम नहीं हो रहा। पहले के लिखे हुए अनुसार, पूरे चालीस वर्ष के बाद जनेऊ धारण कर अहीर-महासभा के यज्ञकुंड से निकले हुए हाल-क़ौम-क्षत्रिय प्राचीन अहीर महाशय मेरी ससुराल से मेरे लड़के को ले जाने के लिये आए। मैंने सोचा, पुरानी प्रथा के अनुसार यह मेरे यहाँ की पकाई रोटियाँ अवश्य ही खायँगे। अस्तु, उनके लिये मैंने वैसा ही इंतिज़ाम करवाया।

उस समय मेरा लड़का घर में न था। वह आया, तो कहने लगा, रोटियों का इंतिज़ाम आपने व्यर्थ ही करवाया, नानी के यहाँ तो इसने पूड़ियाँ भी नहीं खाईं। मैंने पूछा—क्यों? उसने कहा, यह कहता है, अब मेरा जनेऊ हो गया है, अब मैं थोड़ा ही कुछ खा सकता हूँ? मैंने उस संस्कृत क्षत्रिय भाई से पूछा, तो बात सच निकली। मैंने उसके लिये मिठाई मँगवा दी।

"आहारशुद्धौ सत्वशुद्धिः सत्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः"

इस बला को जब तक संतरामजी हिंदूजाति की जड़ से निकाल नहीं सकेंगे, तब तक जाति-पाँति के तोड़ने में उन्हें सफलता शायद ही हो। महात्माजी का जो उदाहरण दिया कि उनकी राय से एक ब्राह्मण-बालिका का विवाह एक शूद्र कर सकता है, मेरे विचार से एक ब्राह्मण-बालिका के मानी यहाँ एक शूद्र-बालिका ही है। अगर ब्राह्मण-बालिका का अर्थ महात्माजी ब्राह्मण-बालिका ही करते हों, तो मैं सविनय कहूँगा, इतनी तपस्या करके भी महात्माजी "ब्राह्मण" का अर्थ नहीं समझ सके। मैं "ब्राह्मण" का तपस्या-जन्म अर्थ ही लेता हूँ, जो उसका उचित निर्णय है। मुझे इसका भय नहीं कि दूसरों की तरह मुझ पर संतरामजी ब्राह्मणत्व के पक्षपात का दोष लगाएँगे। इस दोष के प्रक्षालन के लिये इस पत्रिका के संपादक कृष्णविहारीजी और प्रेमचंदजी जब तक मौजूद हैं, और यों तो, मैं ब्राह्मणेतर क़रीब-क़रीब सभी जातियों से अपना समर्थक चुन दूँगा।

मैं यहाँ तक दिखला चुका हूँ कि समाज का वह व्यक्तित्व अब नहीं रहा। जड़वाद के इंद्रजाल से भारत का अध्यात्मवाद समाच्छन्न-सा हो रहा है। प्रत्येक गृह से विकार-गुण रोगियों की अर्थहीन प्रलाप-वाणी सुनाई पड़ रही है। कोई भी चेला नहीं बनना चाहता, गुरु बनकर शिक्षा देने के लिये सब तैयार हैं। भावों के सहस्र-सहस्र प्रतिघात प्रतिदिन टक्करें ले रहे हैं। एक दूसरे से लड़ते और मुरझाकर फिर शून्य में विलीन हो जाते हैं।

ऐसी हालत में सहस्र आवर्जनाओं के भीतर दबी हुई भारत की यथार्थ जातीय शक्ति को उभाड़कर प्रतिमा की प्राण-प्रतिष्ठा की तरह उसे जीवन देना एक अत्यंत कष्ट-साध्य उपाय हो रहा है। परंतु साथ ही यह विश्वास भी है, जब कि यह भारत है कि जीवन स्वयं ही अपना

आलोक-पथ खोज लेगा। पौदों की बाढ़ कभी अंधकार या छाया की ओर नहीं हो सकती। समाज के व्यक्तित्व को क़ायम रखने के लिये पहले जो स्मृतियाँ—जो क़ानून प्रचलित थे, आज के लिये वे अनुकूल नहीं रहे। मुसलमान-शासन-काल में तो भारत में संकीर्णता की हद हो गई थी। इस समय भी देहातों में इसी संकीर्णता का शासन है। परंतु है यह अज्ञान-जन्य, और समाज में यह अज्ञान का राज्य शिक्षा के अभाव से ही फैला हुआ है। जब से वेद-वेदांत योरप में छपने लगे, तब से भारत के ज्ञान-वर्द्धन के लिये यह आवश्यक हो गया कि उसके जातीय जीवन को रूढ़ियों और प्राचीन आचारों से मुक्त कर दिया जाय, उसमें प्रसार के लिये ज्ञान के बृहत्-से-बृहत् संस्कार छोड़े जायँ, अन्यथा अपर जातियों के पदार्थ-विज्ञान की उच्चता से लड़कर वह स्थायी न हो सकेगा। पृथ्वी और सूर्य के आकर्षण की तरह बृहत् और उदार ज्ञान का आकर्षण जिस तरफ़ होगा, अधिक शक्ति वहीं पर निहित रहेगी; दूसरे ज्ञान जो तुलना में उससे छोटे होंगे, उसी के चारों ओर चक्कर काटते रहेंगे। भारत की जातीयता को योरप के इस विज्ञान-युग की जातीयता से लड़ना है। परंतु इस समय उसके पास आचार-विचारात्मक ज्ञान के जो महास्त्र हैं, वे योरप के वर्द्धनशील विज्ञान के सामने पराजित तथा अवनत हो रहे हैं। और, चूँकि पहले के कथन के अनुसार इस समय भारत में ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य नहीं रहे—न इस अवस्था में रह सकते हैं, अतएव दास्यवृत्तिवाले भारत के लिये भौतिक विज्ञान से मुग्ध हो जाना—उसे आत्मसमर्पण कर देना निहायत स्वाभाविक है। योरप में यथार्थ वैश्य और यथार्थ क्षत्रिय तक हो गए हैं, और अवश्य कुछ ब्राह्मण भी हैं। यही कारण है कि इस शक्ति का सिक्का भारत-वासियों पर जमा हुआ है।

वहाँ के ज्ञानास्त्र को काटकर अपनी निर्मल जातीयता के पुनरुत्थान के लिये आवश्यक है वेदांत-ज्ञान। वेदांत-ज्ञान के प्रभाव से मनुष्य की मनुष्य से यह इतनी बड़ी घृणा न रह जायगी, और संगठन भी ज्ञान-मूलक होगा। योरप का संगठन स्वार्थ-मूलक है। जिस मज़दूर-पार्टी का अभी कल ही पूँजीपतियों के दल से संघर्ष हो रहा था, आज दूसरे देश को पराजित करने के लिये उस पार्टी का निजी स्वार्थ व्यापक रूप से जहाँ समझाया गया कि सब-के-सब मज़दूर बदल गए—पूँजीपति-पार्टी के साथ मिल गए। यह है वहाँ की जातीयता। यहाँ इस तरह के भाव कामयाब नहीं हो सकते। हिंदू-मुसलमानों का झगड़ा भी इस तरह तय नहीं हो सकता। और, तरह-तरह के विचार जो लड़ाए जाते हैं, वे संसार के विवर्तन से उधार लिए हुए विचार ही होते हैं। इससे अधिक पुष्ट विचार मेल के लिए और क्या होगा कि हरएक को अपनी आत्मा समझे, अपने सुख और अपने दुःख का अनुभव दूसरे में करे। संतरामजी जो वैवाहिक व्यवस्था पेश करते हैं वह भी इस तरह मन के मेल से संभव हो सकेगी, जैसा कि पहले था। अन्यथा यदि महात्माजी की तरह विवाह का एक सूत्र निकाल दिया जायगा कि एक अछूत एक ब्राह्मण-कन्या से विवाह कर सकता है, तो उत्तर में यह कहनेवाले बहुत हैं कि एक ब्राह्मण-कन्या का किसी मुसलमान के साथ योरप जाना महात्माजी ने ही रोका था, और उसका विवाह एक दूसरे (शायद) ब्राह्मण से ही करवाया था। यदि हिंदुओं की व्यापक जातीयता के लिये इस तरह के क़ानून निकाल देना न्यायानुकूल है, तो इसी भारत-वर्ष की छाती के पीपल मुसलमानों से सप्रेम रोटी-बेटी का संबंध जोड़ लेने से कौन राष्ट्रीयता की नाक कटी जा रही है? इस तरह तो स्वराज्य के हासिल करने में और शीघ्रता होगी। फिर मुसलमानों के प्रिय बनने की चेष्टा करते हुए भी महात्माजी ने क्या एक मुसलमान के निर्दोष सप्रेम विचरण में बाधा नहीं दी? क्या उसका हक़ महात्माजी ने नहीं छीन लिया? इसी तरह शूद्रों और अछूतों के प्रति भी महात्माजी की सहानुभूति मौखिक ही न होगी, इसका क्या प्रमाण, जब उनके यहाँ के विवाह अंत्यजों से न होकर, जहाँ तक मुझे ज्ञान है, आज तक उन्हीं की श्रेणी में हुए हैं? महात्माजी का विकास जिस तरफ़ से हुआ है, उसी तरफ़ के लिये उनके शब्द महान् और सप्राण हैं। परंतु वह एक धर्माचार्य भी हैं, स्मृतिकार भी हैं और अप्रतिद्वंद्वी शास्त्र-व्याख्याता भी हैं—यह उनके अनुयायी ही सिद्ध कर सकते हैं, मुझे कुछ संकोच हो रहा है। राम के बाण तो सह्य भी हैं, पर बंदरों की विकृत मुख-मुद्रा असह्य हो जाती है। विवाह के प्रसंग पर मैंने जो कुछ

लिखा है, मैं जानता हूँ, महात्माजी की महत्ता से मुझे क्षमा मिल जायगी। मुझे केवल उनके भक्तों से ही भय है। कारण, भक्तों का परिचय मुझे कई बार प्रत्यक्ष हो चुका है।

अछूतों के साथ रोटी-बेटी का संबंध स्थापित कर उन्हें समाज में मिला लिया जाय या इसके न होने के कारण ही एक विशाल संख्या हिंदू-राष्ट्रीयता से अलग है, यह एक कल्पना के सिवा और कुछ नहीं। दो मनों की जो साम्य-स्थिति विवाह की बुनियाद है और प्रेम का कारण, इस तरह के विवाह में उसका सर्वथा अभाव ही रहेगा। और, जिस योरप की वैवाहिक प्रथा की अनुकूलता संतरामजी ने की है, वहाँ भी यहीं की तरह वैषम्य का साम्राज्य है। किसी लार्ड-घराने की लड़की के साथ किसी निर्धन और निर्गुण मज़दूर का विवाह नहीं हुआ। मुसलमानों में भी विवाह का कुछ ऐसा प्रतिबंध नहीं, पर मोग़ल-बादशाहज़ादियाँ क्वाँरी ही रहती थीं। कहीं यह साम्य अर्थ से लिया गया है, कहीं जाति से। यदि इस विवाह से ही हिंदुओं का उद्धार होना निश्चित है, तो यहाँ के मुसलमानों के उद्धार के लिये तो कोई शंका ही न करनी थी; पर दुःख है कि इस वैवाहिक एकता को अंशतः क़ायम रखने पर भी यहाँ उनके भाग्य किसी तरह भी हिंदुओं के भाग्य से चमकीले नहीं नज़र आते।

और, जो बुलबुलशाह की ऐतिहासिक दुर्घटना का संतरामजी ने उल्लेख किया है, इससे हमारे महाराज जयचंद ही क्या कम थे? एक बार एक बंगाली विद्वान् ने एक दूसरे बंगाली से मेरी तारीफ़ करते हुए कहा—यह महाशय उस देश में रहते हैं, जहाँ के महाराज जयचंद थे, जिनकी कृपा से देश हज़ार वर्ष से ग़ुलाम है। आप समझ सकते हैं, ऐसे चुभते हुए परिचय से उस समय मेरी क्या दशा हो गई होगी। पर मुझे भी इसका करारा उत्तर सूझ गया, और वही संतरामजी के लिये भी है। मैंने कहा, लाखों वर्ष तक देश को स्वाधीन तथा संपन्न रखने का श्रेय आपने हमें नहीं दिया, पर हज़ार वर्ष के लिये गिरा देने का उलाहना दे डाला! जिन्होंने इसे स्वाधीन रक्खा था, उन्हीं ने गिराया भी। गिराने के लिये दूसरे थोड़े ही आते। उसी तरह, एक ब्राह्मण की ग़लती से बुलबुलशाह के भी लाखों भाई मुसलमान हो गए। पर बुलबुलशाह के भाई जब हिंदुस्थान में "सितच्छत्रितकीर्तिमण्डलाः" हो रहे थे, उस समय "स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः" की उस उलटी व्याख्या ने ही हिंदू-धर्म को मुसलमान-धर्म में विलीन होने से बचाया था। यदि उस समय मुसलमानों की धार्मिक उदारता के साथ ब्राह्मणों की वेदांतिक उदारता ने अभेदत्व का प्रचार किया होता, तो निस्संदेह इस समय हिंदू-धर्म के सुधार के लिये आवाज़ उठाने के कष्ट से संतरामजी बाल-बाल बच गए होते, और शायद हम लोग इस समय अपनी-अपनी दाढ़ियों में ख़ुदा का नूर देखकर प्रसन्न हो रहे होते।

ब्राह्मणों में भी भंगी, चरसी, शराबी और कबाबी हैं। पर इसलिये अंत्यजों से उसकी तुलना नहीं हो सकती। एक तो संख्या में कम ऐसे ब्राह्मण हैं और अंत्यज अधिक। दूसरे, तुलना यह इस तरह की है जैसे करोड़पति के ऐयाश-दिल लड़के से किसी मज़दूर के ऐयाश-दिल लड़के की। लेख बढ़ रहा है, मुझे इन सब बातों के उत्तर देने का स्थान नहीं।

इस व्यापक शूद्रत्व के भीतर भी इस जाति के प्रदीप में जो कुछ ज्योति है, वह आचार, शील और ईश्वर-परायण लोगों में ही है। दूसरे-दूसरे देशों से धार्मिक कट्टरता भले ही राष्ट्र की जागृति से दूर कर दी गई हो, पर वहाँ धर्म से कट्टरता ही प्रधान थी, जिसके कारण यह फल हुआ है। यहाँ धर्म ही जीवन है और उसकी व्याख्या भी बड़ी विशद है। यहाँ उसके व्यक्तित्व के बढ़ाने का उपाय है—शिक्षा का सार्वभौमिक प्रसार। अँगरेज़ी स्कूलों और कालेजों में जो शिक्षा मिलती है, उससे दैन्य ही बढ़ता है और अपना अस्तित्व भी खो जाता है। बी० ए० पास करके झींगुर लोध अगर ब्राह्मणों को शिक्षा देने के लिये अग्रसर होंगे, तो संतरामजी की ही तरह उन्हें हास्यास्पद होना पड़ेगा। पर महात्माजी की तरह त्याग के मार्ग पर अग्रसर होनेवाले के सामने आप ही ब्राह्मणों के मस्तक श्रद्धा से झुक जाया करेंगे। भारतीय शिक्षा के प्रसार के साथ ही शूद्रों तथा अंत्यजों में शुभाचरण के कुछ संस्कार जागृत किए जायँ। दूसरी-दूसरी जातियाँ जिस तरह ब्राह्मण और क्षत्रिय बन रही हैं, उसी तरह उन्हें भी एक कोठे में डाल दिया जाय। यह तो हुआ एक प्रकार का संगठन। रही बात

पूर्ण वैदांतिक व्यक्तित्व की, सो वह विशाल व्यक्तित्व एक दिन में नहीं प्राप्त हो सकता। वह तो भारत के सत्य-युग के लिये ही संभव है। परंतु उन्नति का लक्ष्य वही होना चाहिए। ब्राह्मण और क्षत्रिय-जातियाँ देश की रक्षा के लिये बहुत लड़ चुकी हैं। अब कुछ शुभ संस्कारों के सिवा उनके पास और कुछ नहीं रह गया। उठनेवाली जातियों को विरासत में उन्हीं गुणों, उन्हीं महास्त्रों का ग्रहण करना होगा। वृद्ध भारत की वृद्ध जातियों की जगह धीरे-धीरे नवीन भारत की नवीन जातियों का शुभागमन हो, इसके लिये प्रकृति ने वायुमंडल तैयार कर दिया है। यदि प्राचीन ब्राह्मण और क्षत्रिय-जातियाँ उनके उठने में सहायक न होंगी, तो जातीय समर में अवश्य ही उन्हें नीचा देखना होगा। क्रमशः यही अंत्यज और शूद्र, यज्ञकुंड से निकले हुए अदम्य क्षत्रियों की तरह, अपनी चिरकाल की प्रसुप्त प्रतिभा की नवीन स्फूर्ति से देश में एक अलौकिक जीवन का संचार करेंगे। इन्हीं की अजेय शक्ति भविष्य में भारत को स्वतंत्र करेगी। अभी देश में वैश्य-शक्ति का ही उत्थान नहीं हुआ, महात्माजी जिसके अग्रदूत हैं; फिर क्षत्रिय और ब्राह्मण-शक्ति की बात ही क्या? पर देश की स्वतंत्रता के लिये इन चारों शक्तियों की नवीन स्फूर्ति, इनका नवीन सम्मेलन अनिवार्य है, और तब कहीं उस संगठित नवीन राष्ट्र में वैदांतिक साम्य की यथार्थ प्रतिष्ठा हो सकेगी, जिसका विकास व्याध में भी ब्रह्म देखता है—अपने ही प्रतिबिंब का निरीक्षण करता है।*

सूर्यकांत त्रिपाठी "निराला"

---

* लेख बढ़ गया है, परंतु मेरे मनोभाव नहीं बढ़ पाए। अतः फिर कभी वैदांतिक साम्य संगठन पर विचार करूँगा।

—लेखक
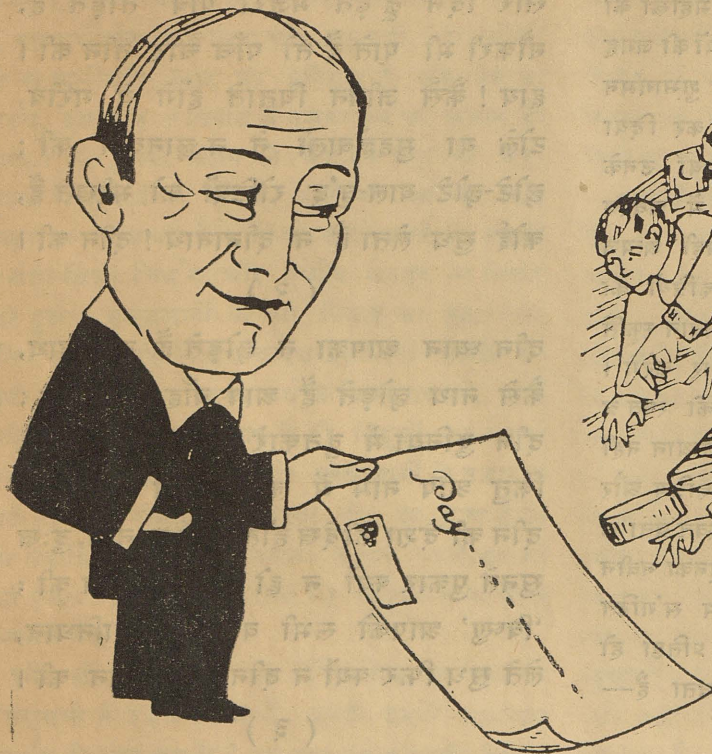
दीन और दीनानाथ

(१)

खाने को न अन्न है उधार भी न पाते कहीं,
कंधे पै फटी हुई पिछौरी मारकीन की;
सारे दिन ढूँढ़ते मजूरी पाँव तोड़ते हैं,
नौकरी भी पाते हैं तो पाँच चार तीन की।
हाय! कैसे जीवन बिताते होंगे ये गरीब,
टोले या मुहल्लेवालों ने न छानबीन की;
छोटे-छोटे बाल-वृंद रोटियों को भीखते हैं,
कोई सुध लेता है न दीनानाथ! दीन की।

(२)

दीन ध्यान आपका न छोड़ते हैं दीनानाथ,
कैसे नाथ छोड़ते हैं आप बाँह दीन की;
दीन दुनिया में दुतकारे जाते हों भले ही,
किंतु आप नाम में लगाए छाप दीन की।
दीन की दशा को देख होता क्यों न, नाथ, दुःख
सुनते पुकार क्यों न हो दयालु दीन की;
'विष्णु' आपको सभी बताते हैं दयानिधान,
लेते सुध फिर क्यों न दीनानाथ! दीन की।

(३)

आठों याम ध्यान में लगी रही है चित्त-वृत्ति,
छोड़ के तुम्हें कभी न जाती अंत दीन की;
आपके लिये शरीर भी सहर्ष दे चुका है,
देख भी चुके हैं कई बार प्रीति दीन की।
पूछते हैं आपसे, ज़रा बताइए तो 'विष्णु',
कौन-सी खता तुम्हें दिखाई दी है दीन की;
जो विना कसूर के उन्हें न त्राण देंगे आप,
जान लीजिए बड़ी बुरी है हाय दीन की।

गंगाविष्णु पांडेय "विष्णु"

सादा चेक

लाट साहब—इस चेक को कौन सकारेगा ?

घासवाली

(१)

मुलिया हरी-हरी घास का गट्ठा लेकर आई, तो उसका गेहुआँ रंग कुछ तमतमाया हुआ था और बड़ी-बड़ी मद-भरी आँखों में शंका समाई हुई थी। महाबीर ने उसका तमतमाया हुआ चेहरा देखकर पूछा--क्या है, मुलिया, आज कैसा जी है?

मुलिया ने कुछ जवाब न दिया--उसकी आँखें डबडबा गईं।

महाबीर ने समीप आकर पूछा--क्या हुआ है, बताती क्यों नहीं? किसी ने कुछ कहा है, अम्मा ने डाँटा है, क्यों इतनी उदास है?

मुलिया ने सिसककर कहा--कुछ नहीं, हुआ क्या है, अच्छी तो हूँ।

महाबीर ने मुलिया को सिर से पाँव तक देखकर कहा--चुपचाप रोएगी, बताएगी नहीं?

मुलिया ने बात टालकर कहा--कोई बात भी हो, क्या बताऊँ।

मुलिया इस ऊसर में गुलाब का फूल थी। गेहुआँ रंग था, हिरन की सी आँखें, नीचे खिचा हुआ चिबुक, कपोलों पर हलकी लालिमा, बड़ी-बड़ी नुकीली पलकें, आँखों में एक विचित्र आर्द्रता जिसमें एक स्पष्ट वेदना, एक मूक व्यथा झलकती रहती थी। मालूम नहीं चमारों के इस घर में यह अप्सरा कहाँ से आ गई थी। क्या उसका कोमल फूल-सा गात इस योग्य था कि सिर पर घास की टोकरी रखकर बेचने जाती? उस गाँव में भी ऐसे लोग मौजूद थे, जो उसके तलवों के नीचे आँखें बिछाते थे, उसकी एक चितवन के लिये तरसते थे, जिनसे अगर वह एक शब्द भी बोलती, तो निहाल हो जाते, लेकिन उसे आए साल-भर से अधिक हो गया, किसी ने उसे युवकों की तरफ़ ताकते या बातें करते नहीं देखा। वह घास लिए निकलती, तो ऐसा मालूम होता, मानो ऊषा का प्रकाश, सुनहरे आवरण से रंजित, अपनी छटा बिखेरता जाता हो। कोई ग़ज़लें गाता, कोई छाती पर हाथ रखता; पर मुलिया नीची आँखें किए अपनी राह चली जाती। लोग हैरान होकर कहते--इतना अभिमान! महाबीर में ऐसे क्या सुरख़ाब के पर लगे हैं, ऐसा अच्छा जवान भी तो नहीं, न-जाने यह कैसे उसके साथ रहती है।

मगर आज एक ऐसी बात हो गई, जो इस जाति की और युवतियों के लिये चाहे गुप्त संदेश होती, मुलिया के लिये हृदय का शूल थी। प्रभात का समय था, पवन आम की बौर की सुगंध से मतवाला हो रहा था, आकाश पृथ्वी पर सोने की वर्षा कर रहा था। मुलिया सिर पर झौआ रक्खे घास छीलने चली, तो उसका गेहुआँ रंग प्रभात की सुनहरी किरणों से कुंदन की तरह दमक उठा। एकाएक युवक चैनसिंह सामने से आता हुआ दिखाई दिया। मुलिया ने चाहा कि कतरा कर निकल जाय, मगर चैनसिंह ने उसका हाथ पकड़ लिया, और बोला--मुलिया, तुझे क्या मुझ पर ज़रा भी दया नहीं आती?

मुलिया का वह फूल-सा खिला हुआ चेहरा ज्वाला की तरह दहक उठा। वह ज़रा भी नहीं डरी, ज़रा भी न झिझकी, झौआ ज़मीन पर गिरा दिया, और बोली, मुझे छोड़ दो नहीं मैं चिल्लाती हूँ।

चैनसिंह को आज जीवन में एक नया अनुभव हुआ। नीची ज़ातों में रूप-माधुर्य का इसके सिवा और काम ही क्या है कि वह ऊँची जातिवालों का खिलौना बने। ऐसे कितने ही मार्के उसने जीते थे। पर आज मुलिया के चेहरे का वह रंग, उसका वह क्रोध, वह अभिमान देख कर उसके छक्के छूट गए। उसने लज्जित होकर उसका हाथ छोड़ दिया। मुलिया वेग से आगे बढ़ गई। संघर्ष की गरमी में चोट की व्यथा नहीं होती, पीछे से टीस होने लगती है। मुलिया जब कुछ दूर निकल गई, तो क्रोध और भय तथा अपनी बेकसी का अनुभव करके उसकी आँखों में आँसू भर आए। उसने कुछ देर ज़ब्त किया, मगर फिर सिसक-सिसककर रोने लगी। अगर वह इतनी ग़रीब न होती, तो किसी की मजाल थी कि इस तरह उसका अपमान करता। वह रोती जाती थी और घास छीलती जाती थी। महाबीर का क्रोध वह जानती थी। अगर उससे कह दे, तो वह इस ठाकुर के ख़ून का प्यासा हो जायगा। फिर न-जाने क्या हो! इस ख़्याल

से उसके रोएँ खड़े हो गए। इसीलिये उसने महावीर के प्रश्नों का कोई उत्तर न दिया।

(२)

दूसरे दिन मुलिया घास के लिये न गई। सास ने पूछा—तू क्यों नहीं जाती, और सब तो चली गईं?

मुलिया ने सिर झुकाकर कहा—मैं अकेली न जाऊँगी।
सास ने बिगड़कर कहा—अकेले क्या तुझे बाघ उठा ले जायगा?

मुलिया ने और भी सिर झुका लिया, और दबी हुई आवाज़ से बोली—सब मुझे छेड़ती हैं।

सास ने डाटा, न तू औरों के साथ जायगी न अकेली जायगी तो फिर जायगी कैसे? यह साफ़-साफ़ क्यों नहीं कहती कि मैं न जाऊँगी। तो यहाँ मेरे घर में रानी बनके निबाह न होगा। किसी को चाम नहीं प्यारा होता, काम प्यारा होता है। तू बड़ी सुंदर है, तो तेरी सुंदरता लेकर चाटूँ? उठा झाबा और घास ला।

द्वार पर नीम के दरख़्त के साए में महावीर खड़ा घोड़े को मल रहा था। उसने मुलिया को रोनी सूरत बनाए जाते देखा, पर कुछ बोल न सका। उसका बस चलता, तो मुलिया को कलेजे में बिठा लेता, आँखों में छिपा लेता। लेकिन घोड़े का पेट भरना, तो ज़रूरी था। घास मोल लेकर खिलाए, तो बारह आने रोज़ से कम न पड़ें। ऐसी मज़दूरी ही कौन होती है। मुश्किल से डेढ़-दो रुपए मिलते हैं, वह कभी मिले, कभी न मिले। जब से यह सत्यानाशी लारियाँ चलने लगी हैं, इक्केवालों की बधिया बैठ गई है। कोई सेंत भी नहीं पूछता। महाजन से डेढ़ सौ रुपए उधार लेकर इक्का और घोड़ा ख़रीदा था, मगर लारियों के आगे इक्के को कौन पूछता है। महाजन का सूद भी तो न पहुँच सकता था। मूल का कहना ही क्या। ऊपरी मन से बोला—न मन हो, तो रहने दे देखी जायगी।

इस दिलजोई से मुलिया निहाल हो गई। बोली—घोड़ा खाएगा क्या?

आज उसने कल का रास्ता छोड़ दिया और खेतों की मेड़ों से होती हुई चली। बार-बार सतर्क आँखों से इधर-उधर ताकती जाती थी। दोनों तरफ़ ऊख के खेत खड़े थे। ज़रा भी खड़खड़ाहट होती, तो उसका जी सन्न से हो जाता। कहीं कोई ऊख में छिपा न बैठा हो। मगर कोई नई बात न हुई। ऊख के खेत निकल गए, आमों का बाग़ निकल गया, सिंचे हुए खेत नज़र आने लगे। दूर के कुएँ पर पुर चल रहा था। खेतों की मेड़ों पर हरी-हरी घास जमी हुई थी। मुलिया का जी ललचाया। यहाँ आध घंटे में जितनी घास छिल सकती है, उतनी सूखे मैदान में दोपहर तक न छिल सकेगी। यहाँ देखता ही कौन है। कोई चिल्लाएगा, तो चली जाऊँगी। वह बैठकर घास छीलने लगी, और एक घंटे में उसका झाबा आधे से ज़्यादा भर गया। वह अपने काम में इतनी तन्मय थी कि उसे चैनसिंह के आने की ख़बर ही न हुई। एकाएक उसने आहट पाकर सिर उठाया, तो चैनसिंह को खड़ा देखा।

मुलिया की छाती धक से हो गई। जी में आया भाग जाय, झाबा उलट दे और ख़ाली झाबा लेकर चली जाय। पर चैनसिंह ने कई गज़ के फ़ासले से ही रुककर कहा—डर मत, डर मत, भगवान् जानता है, मैं तुझसे कुछ न बोलूँगा। जितनी घास चाहे छील ले मेरा ही खेत है।

मुलिया के हाथ सुन्न हो गए, खुरपी हाथ में जम-सी गई। घास नज़र ही न आती थी। जी चाहता था ज़मीन फट जाय और मैं समा जाऊँ। ज़मीन आँखों के सामने तैरने लगी।

चैनसिंह ने आश्वासन दिया—छीलती क्यों नहीं? मैं तुझसे कुछ कहता थोड़े ही हूँ। यहीं रोज़ चली आया कर, मैं छील दिया करूँगा।

मुलिया चित्र-लिखित सी बैठी रही।

चैनसिंह ने एक क़दम और आगे बढ़ाया, और बोला—तू मुझसे इतना डरती क्यों है? क्या तू समझती है, मैं आज भी तुझे सताने आया हूँ? ईश्वर जानता है, कल भी तुझे सताने के लिये मैंने तेरा हाथ नहीं पकड़ा था। तुझे देखकर आप-ही-आप हाथ बढ़ गए। मुझे कुछ सुध ही न रही। तू चली गई, तो मैं वहीं बैठकर घंटों रोता रहा। जी में आता था हाथ काट डालूँ, कभी जी चाहता था ज़हर खा लूँ। तभी से तुझे ढूँढ़ रहा हूँ। आज तू इस रास्ते से चली आई। मैं सारा हार छानता हुआ यहाँ आया हूँ। अब जो सज़ा तेरे जी आवे दे दे। अगर तू मेरा सिर भी काट ले, तो गर्दन न हिलाऊँगा।

मैं सुहदा था, लुचा था, लेकिन जब से तुझे देखा है मेरे मन की सारी खोट मिट गई है। अब तो यही जी में आता है कि तेरा कुत्ता होता और तेरे पीछे-पीछे चलता, तेरा घोड़ा होता, तब तो तू अपने हाथों से मेरे सामने घास डालती। किसी तरह यह चोला तेरे काम आवे, मेरे मन की यही सबसे बड़ी लालसा है। मेरी जवानी काम न आवे, अगर मैं किसी खोट से ये बातें कर रहा हूँ। बड़ा भागवान् था महाबीर, जो ऐसी देवी उसे मिली।

मुलिया चुपचाप सुनती रही, फिर सिर नीचा करके भोलेपन से बोली—तो तुम मुझे क्या करने कहते हो?

चैनसिंह और समीप आकर बोला—बस, तेरी दया चाहता हूँ।

मुलिया ने सिर उठाकर उसकी ओर देखा। उसकी लज्जा न-जाने कहाँ ग़ायब हो गई। चुभते हुए शब्दों में बोली—तुमसे एक बात कहूँ, बुरा तो न मानोगे? तुम्हारा विवाह हो गया है या नहीं?

चैनसिंह ने दबी ज़बान से कहा—ब्याह तो हो गया है, लेकिन ब्याह क्या है खिलवाड़ है।

मुलिया के होंठों पर अवहेलना की मुसकिराहट झलक पड़ी, बोली—फिर भी अगर महाबीर इसी तरह तुम्हारी औरत से बातें करता, तो तुम्हें कैसा लगता? तुम उसकी गर्दन काटने पर तैयार हो जाते कि नहीं? बोलो! क्या समझते हो कि महाबीर चमार है, तो उसकी देह में लोहू नहीं है, उसे लज्जा नहीं है, अपनी मर्याद का विचार नहीं है? मेरा रूप-रंग तुम्हें भाता है। क्या घाट के किनारे मुझसे कहीं सुंदर औरतें नहीं घूमा करतीं? मैं उनके तलवों की बराबरी भी नहीं कर सकती? तुम उनमें से किसी से क्यों नहीं दया माँगते? क्या उनके पास दया नहीं है? मगर वहाँ तुम न जाओगे, क्योंकि वहाँ जाते तुम्हारी छाती दहलती है। मुझसे दया माँगते हो, इसीलिये न कि मैं चमारिन हूँ, नीच जाति हूँ और नीच जाति की औरत ज़रा-सी घुड़की-धमकी, या ज़रा-से लालच से तुम्हारी मुट्ठी में आ जायगी। कितना सस्ता सौदा है। ठाकुर हो न, ऐसा सस्ता सौदा क्यों छोड़ने लगे!

चैनसिंह लज्जित होकर बोला—मूला, यह बात नहीं है। मैं सच कहता हूँ, इसमें ऊँच-नीच की बात नहीं है। सब आदमी बराबर हैं। मैं तो तेरे चरणों पर सिर रखने को तैयार हूँ।

मुलिया—इसीलिये न कि जानते हो मैं कुछ कर नहीं सकती। जाकर किसी खतरानी के चरणों पर सिर रक्खो, तो मालूम हो कि चरणों पर सिर रखने का क्या फल मिलता है। फिर यह सिर तुम्हारी गर्दन पर न रहेगा।

चैनसिंह मारे शर्म के ज़मीन में गड़ा जाता था। उसका मुँह ऐसा सूख गया था, मानो महीनों की बीमारी से उठा हो। मुँह से बात न निकलती थी। मुलिया इतनी वाक्पटु है, इसका उसे गुमान भी न था।

मुलिया फिर बोली—मैं भी रोज़ बाज़ार जाती हूँ। बड़े-बड़े घरों का हाल जानती हूँ। मुझे किसी बड़े घर का नाम बता दो जिसमें कोई साईस, कोई कोचवान, कोई कहार, कोई पंडा, कोई महराज न घुसा बैठा हो? यह सब बड़े घरों की लीला है। और वह औरतें जो कुछ करती हैं ठीक करती हैं। उनके घरवाले भी तो चमारिनों और कहारिनों पर जान देते फिरते हैं। लेना-देना बराबर हो जाता है। बेचारे ग़रीब आदमियों के लिये यह बातें कहाँ। महाबीर के लिये संसार में जो कुछ हूँ मैं हूँ। वह किसी दूसरी मिहरिया की ओर आँख उठाकर भी नहीं देखता। संयोग की बात है कि मैं तनिक सुंदर हूँ, लेकिन मैं काली-कलूटी भी होती, तब भी महाबीर मुझे इसी तरह रखता। इसका मुझे विश्वास है। मैं चमारिन होकर भी इतनी नीच नहीं हूँ कि विश्वास का बदला खोट से दूँ। हाँ, महाबीर अपने मन की करने लगे, मेरी छाती पर मूँग दलने लगे, तो मैं भी उसकी छाती पर मूँग दलूँगी। तुम मेरे रूप ही के दीवाने हो न? आज मुझे माता निकल आएँ, काली हो जाऊँ, तो मेरी ओर ताकोगे भी नहीं। बोलो झूठ कहती हूँ?

चैनसिंह इनकार न कर सका।

मुलिया ने उसी गर्व से भरे हुए स्वर में कहा—लेकिन मेरी एक नहीं दोनों आँखें फूट जायँ, तब भी महाबीर मुझे इसी तरह रक्खेगा। मुझे उठावेगा, बैठावेगा, खिलावेगा। तुम चाहते हो, मैं ऐसे आदमी के साथ कपट करूँ? जाओ, अब मुझे कभी न छेड़ना, नहीं अच्छा न होगा!

(३)

जवानी जोश है, बल है, साहस है, दया है, आत्म-विश्वास है, गौरव है और वह सब कुछ जो जीवन को

पवित्र, उज्ज्वल और पूर्ण बना देता है। जवानी का नशा घमंड है, निर्दयता है, स्वार्थ है, शेख़ी है, विषय-वासना है, कटुता है और वह सब कुछ जो जीवन को पशुता, विकार और पतन की ओर ले जाता है। चैनसिंह पर जवानी का नशा था। मुलिया ने शीतल छींटों से नशा उतार दिया। फेन मिट गया, और नीचे से निर्मल, शांत जल निकल आया, चाशनी में दूध की तरह पड़कर उसका सार निकाल दिया। जवानी का नशा जाता रहा, केवल जवानी रह गई। कामिनी के शब्द जितनी आसानी से दीन और ईमान को ग़ारत कर सकते हैं; उतनी ही आसानी से उनका उद्धार भी कर सकते हैं।

चैनसिंह उस दिन से दूसरा ही आदमी हो गया। गुस्सा उसकी नाक पर रहता था। बात-बात पर मज़दूरों को गालियाँ देना, डाँटना और पीटना उसकी आदत थी। असामी उससे थर-थर काँपते थे। मज़दूर उसे आते देखकर अपने काम में चुस्त हो जाते थे, पर जब से उसने इधर पीठ फेरी और उन्होंने चिलम पीना शुरू किया। सब दिल में उससे जलते थे, उसे गालियाँ देते थे। मगर उस दिन से चैनसिंह इतना दयालु, इतना गंभीर, इतना सहनशील हो गया कि लोगों को आश्चर्य होता था।

कई दिन गुज़र गए थे। एक दिन संध्या समय चैनसिंह खेत देखने गया। पुर चल रहा था। उसने देखा कि एक जगह नाली टूट गई है, और सारा पानी बहा चला जाता है। क्यारियों में पानी बिलकुल नहीं पहुँचता, मगर क्यारी बरानेवाली बुढ़िया चुपचाप बैठी है। उसे इसकी ज़रा भी फ़िक्र नहीं है कि पानी क्यों नहीं आता। पहले यह दशा देखकर चैनसिंह आपे से बाहर हो जाता। उस औरत की उस दिन की पूरी मजूरी काट लेता, और पुर चलानेवालों को घुड़कियाँ जमाता। पर आज उसे क्रोध नहीं आया। उसने मिट्टी लेकर नाली बाँध दी, और खेत में जाकर बुढ़िया से बोला—तू यहाँ बैठी है और पानी सब बहा जा रहा है!

बुढ़िया घबड़ाकर बोली—अभी खुल गई होगी राजा। मैं अभी जाकर बंद किए देती हूँ।

यह कहती हुई वह थर-थर काँपने लगी। चैनसिंह ने उसकी दिलजोई करते हुए कहा—भाग मत, भाग मत, मैंने नाली बंद कर दी है। बुढ़ऊ कई दिन से नहीं दिखाई दिए, कहीं काम पर जाते हैं कि नहीं?

बुढ़िया गद्गद होकर बोली—आजकल तो खाली ही बैठे हैं भैया, कहीं काम नहीं लगता।

चैनसिंह ने नम्र भाव से कहा—तो हमारे यहाँ लगा दे। थोड़ा-सा सन रक्खा है, उसे कात दें।

यह कहता हुआ वह कुएँ की ओर चला गया। वहाँ चार पुर चल रहे थे। पर इस वक़्त दो हँकवे बेर खाने गए हुए थे। चैनसिंह को देखते ही मजूरों के होश उड़ गए। ठाकुर ने पूछा, दो आदमी कहाँ गए, तो क्या जवाब देंगे। सब-के-सब डाँटे जायँगे। बेचारे दिल में सहमे जा रहे थे। चैनसिंह ने पूछा—वह दोनों कहाँ चले गए?

किसी के मुँह से आवाज़ न निकली। सहसा सामने से दोनों मजूर धोती के एक कोने में बेर भरे आते दिखाई दिए। ख़ुश-ख़ुश बातें करते चले आ रहे थे। चैनसिंह पर निगाह पड़ी, तो दोनों के प्राण सूख गए। पाँव मन-मन भर के हो गए। अब न आते बनता है, न जाते। दोनों समझ गए कि आज डाँट पड़ी, शायद मजूरी भी कट जाय। चाल धीमी पड़ गई। इतने में चैनसिंह ने पुकारा—बढ़ आओ, बढ़ आवो, कैसे बेर हैं, लाओ ज़रा मुझे भी दो। मेरे ही पेड़ के हैं न?

दोनों और भी सहम उठे। आज ठाकुर जीता न छोड़ेगा। कैसा मिठा-मिठाकर बोल रहा है! उतनी ही भिगो-भिगोकर लगाएगा। बेचारे और भी सिकुड़ गए।

चैनसिंह ने फिर कहा—जल्दी से आओ जी, पक्की-पक्की सब मैं ले लूँगा। ज़रा एक आदमी लपककर घर से थोड़ा-सा नमक तो ले लो। (बाक़ी दोनों मजूरों से) तुम भी दोनों आ जाओ, उस पेड़ के बेर मीठे होते हैं। बेर खा लें, काम तो करना ही है।

अब दोनों भगोड़ों को कुछ ढारस हुआ। सभों ने आकर सब बेर चैनसिंह के आगे डाल दिए, और पक्के-पक्के छाँटकर उसे देने लगे। एक आदमी नमक लाने दौड़ा। आध घंटे तक चारों पुर बंद रहे। जब सब बेर उड़ गए, और ठाकुर चलने लगे, तो दोनों अपराधियों ने हाथ जोड़कर कहा—भैयाजी, आज जान बकसी हो जाय, बड़ी भूख लगी थी, नहीं तो कभी न जाते।

चैनसिंह ने नम्रता से कहा—तो इसमें बुराई क्या हुई। मैंने भी तो बेर खाए। एक-आध घंटे का हरज हुआ यही न। तुम चाहोगे, तो घंटे-भर का काम आध घंटे में

कर दोगे। न चाहोगे, तो दिन-भर में घंटे-भर का भी काम न होगा।

चैनसिंह चला गया, तो चारों बातें करने लगे।

एक ने कहा—मालिक इस तरह रहे, तो काम करने में जी लगता है। यह नहीं कि हरदम छाती पर सवार।

दूसरा—मैंने तो समझा, आज कच्चा ही खा जायँगे।

तीसरा—कई दिन से देखता हूँ, मिजाज बहुत नरम हो गया है।

चौथा—साँझ को पूरी मजूरी मिले तो कहना।

पहला—तुम तो हो गोबर गनेस। आदमी का रुख नहीं पहचानते।

दूसरा—अब खूब दिल लगाकर काम करेंगे।

तीसरा—और क्या। जब उन्होंने हमारे ऊपर छोड़ दिया, तो हमारा भी धरम है कि कोई कसर न छोड़ें।

चौथा—मुझे तो भैया ठाकुर पर अब भी विश्वास नहीं आता।

(४)

एक दिन चैनसिंह को किसी काम से कचहरी जाना था। पाँच मील का सफ़र था। यों तो वह बराबर अपने घोड़े पर जाया करता था, पर आज धूप बड़ी तेज़ हो रही थी, सोचा एक्के पर चला चलूँ। महाबीर को कहला भेजा, मुझे लेते जाना। कोई नौ बजे महाबीर ने पुकारा। चैनसिंह तैयार बैठा था। चटपट एक्के पर बैठ गया। मगर घोड़ा इतना दुबला हो रहा था, एक्के की गद्दी इतनी मैली और फटी हुई, सारा सामान इतना रद्दी कि चैनसिंह को उस पर बैठते शर्म आई। पूछा—यह सामान क्यों बिगड़ा हुआ है महाबीर? तुम्हारा घोड़ा तो इतना दुबला कभी न था, क्या आजकल सवारियाँ कम हैं क्या? महाबीर ने कहा—नहीं मालिक, सवारियाँ काहे नहीं हैं, मगर लारियों के सामने एक्के को कौन पूछता है। कहाँ दो, ढाई, तीन की मजूरी करके घर लौटता था, कहाँ अब बीस आने पैसे भी नहीं मिलते। क्या जानवर को खिलाऊँ, क्या आप खाऊँ। बड़ी बिपत्ति में पड़ा हूँ। सोचता हूँ एक्का-घोड़ा बेंच-बाचकर आप लोगों की मजूरी कर लूँ, पर कोई गाहक नहीं लगता। ज्यादा नहीं, तो बारह आने तो घोड़े ही को चाहिए, घास ऊपर से। जब अपना ही पेट नहीं चलता, तो जानवर को कौन पूछे। चैनसिंह ने उसके फटे हुए कुरते की ओर देखकर कहा—दो-चार बीघे की खेती क्यों नहीं कर लेते?

महाबीर सिर झुकाकर बोला—खेती के लिये बड़ा पौरुख चाहिए मालिक। मैंने तो यही सोचा है कि कोई गाहक लग जाय, तो एक्के को औने-पौने निकाल दूँ, फिर घास छीलकर बजार ले जाया करूँ। आजकल सास-पतोहू दोनों घास छीलती हैं। तब जाकर दस-बारह आने पैसे नसीब होते हैं।

चैनसिंह ने पूछा—तो बुढ़िया बाज़ार जाती होगी?

महाबीर लजाता हुआ बोला—नहीं भैया, वह इतनी दूर कहाँ चल सकती है। घरवाली चली जाती है। दोपहर तक घास छीलती है, तीसरे पहर बजार जाती है। वहाँ से घड़ी रात गए लौटती है। हलकान हो जाती है भैया, मगर क्या करूँ, तकदीर से क्या जोर!

चैनसिंह कचहरी पहुँच गए, महाबीर सवारियों की टोह में इधर-उधर एक्के को घुमाता हुआ शहर की तरफ़ चला गया। चैनसिंह ने उसे पाँच बजे आने को कह दिया—

कोई चार बजे चैनसिंह कचहरी से फ़ुरसत पाकर बाहर निकले। हाते में पान की दूकान थी, ज़रा और आगे बढ़कर एक घना बरगद का पेड़ था। उसकी छाँह में बीसों ही ताँगे, एक्के, फिटनें खड़ी थीं। घोड़े खोल दिए गए थे। वकीलों, मुख़्तारों और अफ़सरों की सवारियाँ यहीं खड़ी रहती थीं। चैनसिंह ने पानी पिया, पान खाया और सोचने लगा कोई लारी मिल जाय, तो ज़रा शहर चला जाऊँ कि उसकी निगाह एक घासवाली पर पड़ गई। सिर पर घास का झाबा रक्खे साईसों से मोल-भाव कर रही थी। चैनसिंह का हृदय उछल पड़ा—यह तो मुलिया है। बनी-ठनी, एक गुलाबी साड़ी पहने कोचवानों से मोल-तोल कर रही थी। कई कोचवान जमा हो गए थे। कोई उससे दिल-लगी करता था, कोई घूरता था, कोई हँसता था।

एक काले-कलूटे कोचवान ने कहा—मूला, घास तो उड़के ६ आने की है।

मुलिया ने उन्माद पैदा करनेवाली आँखों से देखकर कहा—६ आने पर लेना है, तो वह सामने घसियारिनें बैठी हैं, चले जाओ, दो-चार पैसे कम में पा जाओगे, मेरी घास तो बारह आने में ही जायगी।

एक अधेड़ कोचवान ने फिटन के ऊपर से कहा—तेरा जमाना है, बारह आने नहीं एक रुपया माँग। लेने

वाले झख मारेंगे और लेंगे । निकलने दे वकीलों को । अब देर नहीं है ।

एक ताँगेवाले ने जो गुलाबी पगड़ी बाँधे हुए था बोला—बुढ़ऊ के मुँह में भी पानी भर आया, अब मुलिया काहे को किसी की ओर देखेगी ।

चैनसिंह को ऐसा क्रोध आ रहा था कि इन दुष्टों को जूतों से पीटे । सब-के-सब कैसे उसकी ओर टकटकी लगाए ताक रहे हैं, मानों आँखों से पी जायँगे । और मुलिया भी यहाँ कितनी ख़ुश है ! न लजाती है, न झिझकती है, न दबती है । कैसा मुसकिरा-मुसकिराकर, रसीली आँखों से देख-देखकर, सिर का अंचल खिसका-खिसका कर, मुँह मोड़-मोड़कर बातें कर रही है । वही मुलिया, जो शेरनी की तरह तड़प उठी थी ।

इतने में चार बजे । अमले और वकील मुख़्तारों का एक मेला सा निकल पड़ा । अमले लारियों पर दौड़े, वकील, मुख़्तार इन सवारियों की ओर चले । कोचवानों ने भी चटपट घोड़े जोते । कई महाशयों ने मुलिया को रसिक नेत्रों से देखा और अपनी अपनी गाड़ियों पर जा बैठे ।

यकायक मुलिया घास का झाबा लिए उस फीटन के पीछे दौड़ी । फ़ीटन में एक अँगरेज़ी फ़ेशन के जवान वकील साहब बैठे थे । उन्होंने पायदान के पास घास रखवा ली, जेब से कुछ निकालकर मुलिया को दिया । मुलिया मुसकिराई । दोनों में कुछ बातें भी हुईं जो चैन-सिंह न सुन सके ।

एक क्षण में मुलिया प्रसन्न मुख घर की ओर चली । चैनसिंह पानवाले की दूकान पर विस्मृति की दशा में खड़ा रहा । पानवाले ने दूकान बढ़ाई, कपड़े पहने और अपने कैबिन का द्वार बंद करके नीचे उतरा तो चैनसिंह की समाधि टूटी । पूछा—क्या दूकान बंद कर दी ?

पानवाले ने सहानुभूति दिखाकर कहा—इसकी दवा करो ठाकुर साहब, यह बीमारी अच्छी नहीं है ।

चैनसिंह ने चकित होकर पूछा—कैसी बीमारी ?

पानवाला बोला—कैसी बीमारी ! आध घंटे से यहाँ खड़े हो, जैसे कोई मुरदा खड़ा हो । सारी कचहरी ख़ाली हो गई, सब दूकानें बंद हो गईं, मेहतर तक झाड़ू लगाकर चल दिए, तुम्हें कुछ ख़बर हुई ? यह बुरी बीमारी है, जल्दी दवा करा डालो ।

चैनसिंह ने छड़ी सँभाली, और फाटक की ओर चला कि महाबीर का एक्का सामने से आता दिखाई दिया ।

(४)

कुछ दूर एक्का निकल गया, तो चैनसिंह ने पूछा—आज कितने पैसे कमाए महाबीर ?

महाबीर ने हँसकर कहा—आज तो मालिक दिन भर खड़ा ही रह गया । किसी ने बेगार में भी न पकड़ा । ऊपर से चार पैसे की बीड़ियाँ पी गया ।

चैनसिंह ने ज़रा देर के बाद कहा—मेरी एक सलाह है । तुम मुझसे १) रोज़ ले लिया करो । बस, जब मैं बुलाऊँ, तो एक्का लेकर चले आया करो । तब तो तुम्हारी घरवाली को घास लेकर बाज़ार न आना पड़ेगा । बोलो मंज़ूर है ?

महाबीर ने सजल आँखों से देखकर कहा—मालिक आप ही का तो खाता हूँ । आपका परजा हूँ । जब मरजी हो पकड़वा मँगवाइए । आपसे रुपए.........

चैनसिंह ने बात काटकर कहा—नहीं, मैं तुमसे बेगार नहीं लेना चाहता । तुम मुझसे १) रोज़ ले जाया करो । घास लेकर घरवाली को बाज़ार मत भेजा करो । तुम्हारी आबरू मेरी आबरू है । और भी रुपए-पैसे का जब काम लगे, बेखटके चले आया करो । हाँ देखो, मुलिया से इस बात की भूल कर भी चर्चा न करना । क्या फ़ायदा !

कई दिनों के बाद संध्या समय मुलिया चैनसिंह से मिली । चैनसिंह असामियों से मालगुज़ारी वसूल करके घर की ओर लपका जा रहा था कि उसी जगह जहाँ उसने मुलिया की बाँह पकड़ी थी मुलिया की आवाज़ कानों में आई । उसने ठिठककर पीछे देखा, तो मुलिया दौड़ी चली आ रही थी । बोला—क्या है, मूला, क्यों दौड़ती हो, मैं तो खड़ा हूँ ?

मुलिया ने हाँफते हुए कहा—कई दिन से तुमसे मिलना चाहती थी । आज तुम्हें आते देखा, तो दौड़ी । अब मैं घास बेचने नहीं जाती ।

चैनसिंह ने कहा—बहुत अच्छी बात है ।

"क्या तुमने मुझे कभी घास बेचते देखा है ?"

"हाँ, एक दिन देखा था । क्या महाबीर ने तुझसे सब कह डाला ? मैंने तो मना कर दिया था ।"

"वह मुझसे कोई बात नहीं छिपाता ।"

दोनों एक क्षण चुपचाप खड़े रहे। किसी को कोई बात न सूझती थी। एकाएक मुलिया ने मुसकिराकर कहा—यहीं तुमने मेरी बाँह पकड़ी थी।

चैनसिंह ने लज्जित होकर कहा—उसको भूल जाओ मूला। मुझ पर न-जाने कौन भूत सवार था।

मुलिया गद्गद कंठ से बोली—उसे क्यों भूल जाऊँ? उसी बाँह गहे की लाज तो निभा रहे हो! गरीबी आदमी से जो चाहे करावे। तुमने मुझे बचा लिया! फिर दोनों चुप हो गए।

ज़रा देर के बाद मुलिया ने फिर कहा—तुमने समझा होगा, मैं हँसने-बोलने में मगन हो रही थी?

चैनसिंह ने बल-पूर्वक कहा—नहीं मुलिया। मैंने एक क्षण के लिये भी यह नहीं समझा।

मुलिया मुसकिराकर बोली—मुझे तुमसे यही आशा थी, और है।

पवन सिंचे हुए खेतों में विश्राम करने जा रहा था, सूर्य निशा की गोद में विश्राम करने जा रहा था, और उस मलिन प्रकाश में खड़ा चैनसिंह मुलिया की विलीन होती हुई रेखा को खड़ा देख रहा था।

प्रेमचंद

सेवा और उपकार

(१)

'शुद्ध-सेवा' जिनका बना है मूल-मंत्र, वह—
सत्यव्रत पै तो अड़ते ही चले जाते हैं;
स्वप्न में भी बीड़ा जो उठालें किसी काम का तो,
उम्र-भर पीछे पड़ते ही चले जाते हैं।
शंका नहीं करते त्रिलोकी में किसी की वह,
छाती खोल, आगे बढ़ते ही चले जाते हैं,
बार-बार तपने-तपाने से अधिक और—
कंचन से स्वच्छ कढ़ते ही चले जाते हैं।

(२)

'पर-उपकार' में लगे जो रहते, वे नित्य—
रंक रहके भी, स्वर्ग-का-सा सुख पाते हैं;
इच्छा नहीं करते, करें तो, एक क्षण में ही—
तड़क के तारे आसमाँ से तोड़ लाते हैं।
नाचते हैं उनके इशारे पै खशी से देव,
दुष्ट देख उनको हमेशा भय खाते हैं;
मरके भी अमर बनाते कीर्ति-कौमुदी को,
दुनियाँ में नाम के पताके फहराते हैं।

रामसेवक त्रिपाठी

कलेजे के टुकड़े

१

आशाओं के अंधकार में प्रबल पवन न चलाया कर;
और कामनाओं के चंचल दीपक को न जलाया कर!
विस्मृति की उन्मत्त घड़ी में मधुर! न तू मुस्काया कर;
मदिर मूर्च्छना के प्रवाह में जीवन को न बहाया कर!
इतना मत उन्माद आह! सूने जीवन में भर प्यारे!
मेरे इस अल्हड़ यौवन का विसुध न इतना कर प्यारे!

२

मादक है वसंत का सौरभ, मादक फूलों की मुस्कान;
मादक है जीवन के नभ में प्रथम प्रेम का मधुर विहान!
मादक है सावन की उठती हुई उमंगों की क्रीड़ा!
मादक है प्यारी के उस अलसाए यौवन की व्रीड़ा!
मादक सुरा-पात्र, मादक वह सुहागिनी वनमाला है!
किंतु, कौन जाने कितनी मादक यह अंतर्ज्वाला है!

३

ज्वालाओं में मुझे फेक तू जाँच कर रहा कैसी!
हाय हरे! दारुण नियंत्रणा देखी कहीं न ऐसी!
कितनी तीव्र आँच है शोणित-शोषक इन लपटों की!
जलकर भी न समझ पाई माया तेरे कपटों की!
माँगा त्राण, कहा तूने—"पापी! पाषाण मिलेगा!"
किन राखों में, कहाँ तलाशूँ, कब निर्वाण मिलेगा?

४

हृदय थाम रखना भय है, तू करुणा से न पिघल जाए!
इन पीड़ित प्राणों की ज्वाला में न कहीं तू जल जाए!
तीखी है मदिरा मेरे जीवन के घायल भावों की!
भय है, कहीं न तू पी ले, पीकर फिर आह! मचल जाए!
ना; मैं खोलूँगा न द्वार आहों के बंदी-घर का!
तेरा-मेरा परिचय है हे अतिथि! यहाँ पल-भर का!

५

मेरे मन का भार प्यार से कैसे तोल सकोगे?
आज मौन का पट प्यारे! तुम कैसे खोल सकोगे?
हिय-हारक मृदु हीर-हार पर लुटते लाख-हज़ार!
किस क़ीमत पर इन 'टुकड़ों' को, पर ले मोल सकोगे?
टुक रो देना, अरे निर्दयी! टुक रो देना उर को थाम!
हाय! यही होगा इस छोटे-से सौदे का सच्चा दाम!

केदारनाथ मिश्र "प्रभात"

प्रयाग की हिंदी-नाट्यसमिति

गत वर्ष 'माधुरी' के पाठकों को हिंदी की एक सुसंपन्न नाटक-मंडली—काशी की 'नागरी-नाटक-मंडली'—का सचित्र परिचय दिया था। इस समय हिंदी की एक प्राचीन नाटक-मंडली का परिचय दे रहा हूँ। आशा है, पाठक इस विषय में पूरी दिलचस्पी लेंगे।

मेरा विचार है कि क्रमशः सभी हिंदी-प्रधान साहित्यिक नाटक-मंडलियों का सचित्र परिचय हिंदी-संसार के सामने पेश करूँ ; पर खेद है, नाटक-मंडलियों के संचालक मेरी प्रार्थनाओं पर कुछ ध्यान ही नहीं देते। फिर भी मैं अपने प्रयत्न से विरत नहीं हुआ हूँ।

अभी तक मुझे हिंदी की जितनी नाटक-मंडलियों का पता लगा है, उनमें प्रयाग की 'हिंदी-नाट्य-समिति' ही सबसे पुरानी मिली है। इसके बाद की स्थापित कई हिंदी-नाटक-मंडलियों की छपी हुई रिपोर्टें मेरे पास मौजूद हैं, पर इस समिति की कोई छपी रिपोर्ट मेरे पास नहीं है—बहुत खोज-ढूँढ़ करने पर भी कहीं इसकी एक भी छपी रिपोर्ट नहीं मिली। संभव है, इसकी कोई रिपोर्ट छपी हो और किसी सज्जन के पास सुरक्षित भी हो, पर मुझे उसका पता न लग सका। अतएव इस समिति के कुछ पुराने सदस्यों से पूछताँछ करने पर जो बातें मालूम हुई हैं, उन्हीं को मैं पाठकों की सेवा में उपस्थित करता हूँ।

बात बहुत पुरानी है—लगभग सन् १८९८ ई० के ज़माने की। वह इंदर-सभा, गुलबकावली और लैला-मजनू का युग था। प्रयाग के तीन हिंदी-प्रेमी उत्साही बालकों ने विचार किया कि शुद्ध हिंदी में नाटक खेलना चाहिए। वे तीन बालक कौन थे? एक तो थे पं० माधव शुक्ल, जो अब हिंदी के स्वनामधन्य राष्ट्रीय कवि हैं। दूसरे थे स्वर्गीय पं० बालकृष्ण भट्ट के द्वितीय सुपुत्र (स्व०) पं० महादेव भट्ट, जो अभिनय-कला में बड़े ही कुशल थे। और, तीसरे थे अलमोड़ा-निवासी कोई गोपालदत्त त्रिपाठी, जिनके विषय में मुझे विशेष कुछ जानकारी हासिल नहीं है।

ख़ैर, निश्चित हुआ कि रामलीला के अवसर पर नाटक अवश्य ही खेला जाय। अभिनय के प्रबंध का कुल भार पं० माधव शुक्ल को सौंपा गया। उन्हीं को एक नया नाटक भी लिखकर तैयार करना पड़ा। उन्होंने तुलसी-कृत रामायण के आधार पर "सीता-स्वयंवर"-नामक नाटक लिख डाला।

इसके बाद कई हमजोली मित्रों की एक मंडली संगठित हुई। उसमें श्रद्धेय पं० बालकृष्ण भट्ट के सुपुत्र पं० लक्ष्मीकांत भट्ट, महामना मालवीयजी के सुपुत्र पं० रमाकांत मालवीय, वर्तमान 'अभ्युदय'-संपादक पं० कृष्णकांत मालवीय, (स्वर्गीय) बाबू वेणीप्रसाद गुप्त, बाबू देवेंद्रनाथ बनर्जी आदि मित्र सम्मिलित हुए। पं० माधव शुक्ल और पं० महादेव भट्ट तो इस मंडली के प्राण ही थे।

संगठित मित्र-मंडली का नामकरण हुआ—"श्री-रामलीला-नाटक-मंडली"। किंतु रामलीला के साथ-साथ, आरंभ ही से, शुक्लजी और भट्टजी का यह भी उद्देश्य था कि प्रसंग-वश लीला में वर्तमान राजनीति की भी आलोचना की जाय। उन लोगों ने प्रथम अभिनय के एक प्रसंग में ही तत्कालीन राजनीति का थोड़ा पुट रख दिया। यद्यपि आरंभिक अभिनय बड़े उत्साह से संपन्न हुआ, तथापि थोड़ा-सा विघ्न पड़ ही गया। उस विघ्न की कथा विचित्र है—

'सीता-स्वयंवर' पहला खेल था। पात्रों की उमंग-तरंग अगाध थी। दर्शकों का ठट्ट दर्शनीय था। माननीय मालवीयजी, पूज्य भट्टजी, पं० श्रीकृष्ण जोशी आदि महानुभाव दर्शकों में विराजमान थे। धनुष-भंग का प्रकरण था। राजा लोग शिवजी का धनुष उठाने में असमर्थ होकर हताश हो बैठे। इसी प्रसंग पर शुक्लजी की बनाई हुई एक जोशीली कविता राजा जनकजी के मुख से निकल पड़ी, जिसका आशय कुछ इस तरह का था—

"ब्रिटिश-कूटनीति के समान कठोर इस शिव-धनुष को तोड़ना तो दूर रहा, वीर भारतीय युवक इसे टस-से-मस भी न कर सके, यह अत्यंत दुःख का विषय है। हाय!"

फिर क्या, आफ़त मच गई! मालवीयजी महाराज

उन दिनों पूरे माडरेट थे--उठ खड़े हुए ! ड्राप गिरवा दिया ! भट्टजी आदि ने उन्हें बहुत समझाया, किंतु वह शांत न हुए ! आख़िर उस दृश्य को बंद ही कर देना पड़ा ! फिर भी अभिनेताओं और मंडली-संचालकों का उत्साह कम न हुआ ।

यह रामलीला-नाटक-मंडली लगभग सन् १९०७ ई० तक क़ायम रही । यद्यपि मंडली के तीनों संस्थापकों पर ही सारे कार्य का भार रहता था, तथापि पं० माधव शुक्ल ही मुख्य संचालक थे और हरएक काम में अथ से इति तक वह प्रधान भाग लेते थे । पं० महादेव भट्ट के ज़िम्मे चिट्ठी-पत्री आदि लिखने का काम था और पं० गोपालदत्त रिहर्सल के लिये पात्रों को एकत्र कर पार्ट वग़ैरह बाँटने का काम करते थे । शुक्लजी को तो मंडली की हरएक बात में नवीनता लाने की धुन सवार रहती थी । उन्होंने भाषा, भेष, भूषा, भाव आदि में सामयिकता एवं नवीनता का समावेश करके मंडली की ओर जनता को भली भाँति आकृष्ट कर लिया । थोड़े ही दिनों में मंडली की यथेष्ट प्रसिद्धि हो गई ।

जनता में यथेष्ट प्रसिद्धि होने पर भी, आख़िर मंडली तो बालकों ही की थी, बातों-ही-बातों में एक बार कुछ खटपट हो गई, मालवीयजी के घराने के लड़के अलग हो गए ! तब शुक्लजी, भट्टजी आदि ने फिर से नवीन संगठन किया । यह संगठन सन् १९०८ ई० में हुआ और इस संगठित समुदाय का नाम पड़ा--"हिंदी-नाट्य-समिति", इस प्रकार, इस समिति का जन्म आज से बीस-बाईस वर्ष पहले हुआ था--यद्यपि इसका बीज उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम वर्षों में ही पड़ चुका था । जिन दिनों इसका बीज-वपन हुआ था, उन

नागरी-प्रवर्द्धिनी सभा के सदस्य और हिंदी-नाट्यसमिति के पात्र

स्व० पं० बालकृष्ण भट्ट (बीच में), पं० मुरलीधर मिश्र (बाईं ओर), बाबू भोलानाथ सिनहा (दाहनी ओर), पं० माधवप्रसाद शुक्ल (बाईं ओर किनारे)बैठे हुए । खड़े हुए लोगों में तीसरी पंक्ति में बाईं ओर से पं० लक्ष्मी-नारायण नागर, भूतपूर्व कोष-मंत्री हि० सा० सं०, (नागरजी के बाद) पं० लक्ष्मीकांत भट्ट (भट्टजी के पुत्र) ।

दिनों हिंदी की किसी साहित्यिक नाटक-मंडली का अस्तित्व सुनने में भी नहीं आया था, बल्कि रामलीला-नाटक-मंडली के जन्म के बहुत दिनों बाद जौनपुर और लखनऊ में जाकर पं० माधव शुक्ल ने ही हिंदी-नाट्य-संस्थाओं की स्थापना की थी। उस समय शुद्ध हिंदी के नाटकों के प्रचार में विशेष रूप से प्रोत्साहन देनेवाले एक-मात्र श्रद्धेय पं० बालकृष्ण भट्टजी ही थे। उन्हीं के उत्साहित करते रहने से प्रयाग के होनहार बालकों ने हिंदी में नाटक खेलने का आयोजन किया था, यहाँ तक कि प्रत्येक नाटक में वह स्वयं सूत्रधार का पार्ट करते थे, और कई दफ़े पं० श्रीकृष्ण जोशी ने भी किया था। किंतु इस समिति के प्राण-स्वरूप श्रद्धेय भट्टजी का स्मरण करते समय उन उत्साही नाटकानुरागियों को कदापि नहीं भुलाया जा सकता, जिनके सहयोग से हिंदी-नाटकों के प्रचार में बड़ा सहारा मिला था। उनमें (स्वर्गीय) प्रधानचंद्रप्रसाद, बाबू भोलानाथजी, बाबू मुद्रिकाप्रसाद, पं० लक्ष्मीनारायण नागर, मैत्रेय बाबू आदि का नाम विशेष उल्लेखनीय है। इनमें प्रायः कालेज के छात्र ही अधिक थे, जो अपनी शिक्षा समाप्त कर अब जहाँ-तहाँ जीविकोपार्जन में लगे हुए हैं।

अस्तु, नव-संगठित 'हिंदी-नाट्य-समिति' में पहले की अपेक्षा कहीं अधिक उत्साह था। बाबू पुरुषोत्तमदास टंडन, पं० सत्यानंद जोशी, पं० मुरलीधर मिश्र और स्वर्गीय कविवर "प्रेमघन" जी के ज्येष्ठ पुत्र (नाम याद नहीं!) आदि अपूर्व उत्साही युवक सम्मिलित थे। चूँकि रामलीला-नाटक-मंडली में भारतेंदु हरिश्चंद्र का "सत्य-हरिश्चंद्र"-नाटक खेला जा चुका था, इसलिये समिति ने भारतेंदुजी के फुफेरे भाई बाबू राधाकृष्णदास का "महाराणा प्रताप" नाटक खेलना तय किया। सौभाग्यवश उस समय बाबू राधाकृष्णदास भी जीवित थे। यद्यपि क्षय-रोग-ग्रस्त होने के कारण वह नितांत अस्वस्थ थे, तथापि अभिनय देखने के लिये, समिति के साग्रह निमंत्रण पर, काशी से प्रयाग आए थे। उनके साथ और भी कई हिंदी-प्रेमी सज्जन थे। "हिंदू-पंच"-प्रवर्तक (स्वर्गीय) बाबू रामलाल बर्मन भी उन्हीं के साथ पधारे थे। अपूर्व समारोह था।

पं० माधव शुक्ल ने "महाराणा प्रताप"-नाटक में, जहाँगीर के पार्ट में, अपनी बनाई हुई कुछ नई कविता जोड़ दी थी। उसे बाबू राधाकृष्णदास ने बहुत पसंद किया और यहाँ तक कहने की उदारता दिखाई कि "पुस्तक यदि छप न गई होती, तो शुक्लजी के इस नवीन परिवर्द्धित अंश को मैं अवश्य ही उसमें सधन्यवाद जोड़ देता!"

ख़ैर, "महाराणा प्रताप" बड़ी सफलता से अभिनीत हुआ। "प्रताप" का पार्ट शुक्लजी ने किया था। "भामाशाह" का पार्ट किया था मिर्ज़ापुर-निवासी श्रीप्रमथनाथ बी० ए० ने। "मालती" थे बाबू देवेंद्रनाथ बनर्जी और "गुलाब" पं० लक्ष्मीकांत भट्ट तथा "कविराज" पं० महादेव भट्ट। यों तो इन सभी पात्रों का नाट्य-कौशल देखकर दर्शक बड़े प्रसन्न हुए, पर शुक्लजी और पं० महादेव भट्ट के अभिनय से सहृदय दर्शक विशेष प्रभावित हुए।

"महाराणा प्रताप" के अभिनय के साथ एक प्रहसन भी खेला गया था। उसमें एक मुशायरा हुआ था। मिसरा था—"नहूसत का कौवा उड़ा चाहता है।" उसमें भट्ट-भ्राताओं का अभिनय-कौशल देखने ही योग्य था! पं० महादेव भट्ट ने तो सचमुच अपनी बग़ल से 'नहूसत का कौवा' उड़ाकर कमाल कर दिया था! चारों ओर 'समिति' की सफलता की धूम मच गई। तत्कालीन पत्रों में भी ख़ासी चर्चा रही।

क्रमशः इस 'समिति' ने कई अच्छे नाटक खेले और इसमें उत्तरोत्तर अच्छे-अच्छे लोग शामिल होते गए। अखिल भारतवर्षीय हिंदी-साहित्य-सम्मेलन के छठे अधिवेशन के समय, इस 'समिति' ने शुक्लजी का बनाया हुआ "महाभारत"-नाटक (पूर्वार्द्ध) खेला था। उक्त अधिवेशन के सभापति थे सौम्यमूर्ति बाबू श्यामसुंदरदास बी० ए०। इन पंक्तियों का लेखक भी 'आरा'-नागरी-प्रचारिणी-सभा का प्रतिनिधि होकर उक्त अधिवेशन में सम्मिलित हुआ था। अतएव प्रत्यक्षदर्शी के नाते, मैं ज़ोर देकर इतना कह सकता हूँ कि आज तक मैंने किसी हिंदी-रंगमंच पर वैसा सफल एवं प्रभावशाली अभिनय नहीं देखा है।

उस अभिनय में शुक्लजी ने 'भीम' का पार्ट करने में अद्भुत कौशल प्रदर्शित किया था। शुक्लजी की अभिनय-कुशलता देखकर दर्शकों के सामने महाभारतीय

द्रौपदी-चीरहरण के समय क्रुद्ध भीम के प्रति दुर्योधन

कौरव-सभा का वास्तविक चित्र अंकित हो गया था। फिर पं० महादेव भट्ट ने तो 'धृतराष्ट्र' के पार्ट में इतनी स्वाभाविकता दिखाई कि जिन सहृदय साहित्यिकों ने उस सफल अभिनय को देखा है, वे उस अतीत घटना की कल्पना करके आज भी मुक्तकंठ से धन्य-धन्य कह उठेंगे। अत्यंत दुःख का विषय है कि हिंदी-संसार में पं० महादेव भट्ट-जैसे कुशल अभिनेता का कुछ भी सम्मान न हुआ! और, अब उनके सम्मान की चर्चा ही क्या, जब कि वह स्वर्गवासी हो चुके; पर आवेगा कोई समय अवश्य, जब हिंदी की किसी भावी नाट्य-शाला में उनका चित्रोद्घाटन बड़े समारोह से किया जायगा!

हाँ, उसी अभिनय में पं० रासविहारी शुक्ल का 'दुर्योधन' का पार्ट भी बड़े कमाल का हुआ था। यदि मैं बल-पूर्वक इतना कह सकता हूँ कि पं० माधव शुक्ल-जैसा 'भीम' और पं० महादेव भट्ट-जैसा 'धृतराष्ट्र' आज तक मैंने किसी हिंदी-रंगमंच पर नहीं देखा है, तो मैं यह भी ज़ोर देकर कहना चाहता हूँ कि पं० रासविहारी शुक्ल-जैसा 'दुर्योधन' भी मैंने कहीं नहीं देखा है। तारीफ़ तो यह कि उस अभिनय के सभी प्रधान पात्रों का नाट्य सर्वथा दर्शनीय हुआ था। बाबू प्रमथनाथ भट्टाचार्य ने 'युधिष्ठिर' के पार्ट में जो शांति-प्रियता दिखाई, वह कुछ कम प्रशंसनीय नहीं थी, और 'शकुनि' की भूमिका में पं० लक्ष्मीकांत भट्ट ने भी धूर्तता का सच्चा स्वाँग दिखाकर छोड़ा। पं० लक्ष्मीकांतजी वास्तव में बड़े ही सुयोग्य और सुदक्ष अभिनेता हैं; पर खेद है, हिंदी-रंग-मंच उनके कौशल से कृतार्थ होने का सुयोग नहीं पा रहा है!

जो हो, उक्त अभिनय में (स्वर्गीय) बाबू पुरुषोत्तम नारायण चड्ढा (बच्चेजी) का 'अर्जुन' का पार्ट, बाबू रामकृष्ण सूरि का 'संजय' का पं० वेणी शुक्ल का 'विदुर' का और बाबू देवेंद्रनाथ बनर्जी का 'द्रौपदी' का तथा एक अन्य सज्जन का (नाम याद नहीं !) 'विकर्ण' का पार्ट भी ऐसा हृदयग्राही हुआ था कि साहित्यिक-मंडली में जिस प्रकार सम्मेलन के उस अधि-वेशन में पठित पं० जगन्नाथप्रसादजी चतुर्वेदी के "अनु-प्रास-अन्वेषण"-शीर्षक विनोदात्मक निबंध की गर्म चर्चा रही, उसी प्रकार 'समिति' के सफल अभिनय की चर्चा का बाज़ार भी गर्म रहा।

'माधुरी' के छठे वर्ष के प्रथम अंक (विशेषांक) के पंद्रहवें पेज के दूसरे कालम में, अपने "वंगीय रंगमंच"-शीर्षक लेख में, इस समिति के दो सफल अभिनयों की चर्चा मैंने की थी, जो क्रमशः साहित्य-सम्मेलन के पंचम और षष्ठ (लखनऊ और प्रयाग के) अधिवेशनों में अभिनीत हुए थे। सौभाग्यवश मैं लखनऊवाले सम्मेलन में भी पूर्वोक्त 'आरा'-नागरी-प्रचारिणी सभा के प्रतिनिधि-रूप में पहुँच गया था, और मुझे यह प्रकट करते हुए बड़ा संतोष होता है कि प्रयाग के अभिनय की भाँति लखनऊ के अभिनय में भी इस 'समिति' ने सराहनीय सफलता पाई थी, तथा जिस प्रकार उस (पंचम) अधिवेशन में किए गए कविवर "पूर्ण"जी के व्यंग्य-विनोद-पूर्ण कवितामय भाषण की चर्चा साहित्यिकों में सरसाती रही, उसी प्रकार प्रतिनिधियों में इस समिति द्वारा अभिनीत "सत्य हरिश्चंद्र"-नाटक की चर्चा भी चहल-पहल मचाती रही। अब तक के सम्मेलनों की रिपोर्टें पढ़ने से ज्ञात होता है कि इस 'समिति' ने लखनऊ और प्रयाग में अपने सफल अभिनयों से साहित्यिकों को जैसा तृप्त किया था, वैसा किसी नाट्य-समिति ने सम्मेलन के किसी भी अधिवेशन में नहीं किया है। 'समिति' के रेकर्ड में यह बात बड़े गौरव की है, और संभवतः इसका अधिकांश श्रेय कविवर पं० माधव शुक्ल को ही प्राप्त है।

पंडित माधव शुक्ल

किंतु, प्रसंगवश, यहाँ मुझे शुक्लजी से भी कुछ कहना है। इसमें शक नहीं कि वह जैसे अच्छे अभिनेता हैं, वैसे ही अच्छे नाटककार भी। उनका हरिश्चंद्र, भीम, महाराणा प्रताप और सिकंदर का पार्ट जिसने देखा है, वह निस्संकोच कह सकता है कि वीर-रस का नाट्य करने में उन्हें अजीब कमाल हासिल है। ईश्वर ने उन्हें ख़ासा डीलडौल भी दिया है। उनका ग्रांडील शरीर रंगमंच पर बड़ा ही भव्य मालूम होता है। इसी प्रकार उनकी कविताएँ भी बड़ी ओजस्विनी और वीरत्व-पूर्ण होती हैं। उनका 'महाभारत'-नाटक हिंदी में एक चीज़ है। वैसा वीर-रसपूर्ण साहित्यिक नाटक हिंदी में शायद ही कोई हो। उसकी भाषा में पौरुष का गंभीर निनाद सुन पड़ता है। उसकी कविताएँ रोमांच-कारिणी हैं। यद्यपि अब वह अप्राप्य है, तथापि उसके गुणों से अधिकांश पाठक सुपरिचित हैं।

बड़े दुःख के साथ कहना पड़ता है कि शुक्लजी ने उसका उत्तरार्द्ध आज तक नहीं लिखा। यदि वह केवल वीररसात्मक नाटक लिखने में ही अपना जीवन खपा देते, तो निस्संदेह आज हिंदी के रंगमंच पर वीर-रस की विजय-दुंदुभी बजती होती। वह बरसों से कलकत्ते में रहते हैं। मैं जब वहाँ 'मतवाला'-मंडल में था, तब प्रायः उनसे मिलकर अनुरोध किया करता था कि "महाभारत" का उत्तरार्द्ध लिख डालिए। किंतु उन्होंने शायद आलस्यवश आज तक कुछ नहीं किया। इस प्रकार उन्होंने हिंदी को एक रत्न से वंचित कर रक्खा है। वह और कुछ न करके केवल नाटक ही लिखा करते, तो एक सफल और सुकीर्तिशाला नाटककार बनकर हिंदी का असीम

उपकार करते। उनकी लेखनी में पुरुषार्थ को उत्तेजित करने की अद्भुत शक्ति है, सामाजिक क्रांति कराने की बिजली भी मौजूद है। उनके अंदर वस्तुतः वीरत्व का माद्दा है।

कहते हैं, असहयोग-काल में उनको जेल ही में जब अपने एकमात्र युवक जामाता की आकस्मिक मृत्यु का हृदय-विदारक संवाद मिला, और साथ ही घरवालों की यह प्रेरणा भी हुई कि क्षमा-प्रार्थना करके घर चले आइए--सब लोग अधीर और व्यग्र हैं, तब उन्होंने उत्तर दिया था कि हम "सत्य हरिश्चंद्र" और "महाराणा प्रताप" का पार्ट करनेवाले व्यक्ति हैं, विपत्ति-वज्र से मर्माहत होकर भी प्रतिज्ञा-च्युत नहीं हो सकते!

इस घटना से शुक्लजी की नाटक-विषयक तन्मयता और उनके हृदय की बलिष्ठता सहज ही प्रकट होती है। उनकी वाणी और लेखनी, दोनों ही, हिंदी-रंगमंच को धन्य बनाने योग्य हैं; पर न-जाने क्यों, अपनी रचनाओं में उत्साह की ज्वाला भरने की पूर्ण शक्ति रखते हुए भी वह हतोत्साह-से जान पड़ते हैं! उनके पास राष्ट्रीयता और वीरता को विभूषित करने योग्य जो दिव्य विभूति है, उसे वह हिंदी माता के चरणों में उत्सर्ग करना नहीं चाहते क्या?

असहयोग-आंदोलन के युग में शुक्लजी के मस्तिष्क ने अद्भुत चमत्कार दिखाया था। अनेक राष्ट्रीय भाव-पूर्ण चित्रों का जो भव्य प्रकाशन कलकत्ते से हुआ था, उसमें उन्हीं की प्रेरणा मुख्य थी, और अधिकांश प्रभावशाली चित्रों की कल्पना ख़ास उन्हीं के दिमाग़ की उपज थी। उन चित्रों ने एक युग-निर्माण किया था। राष्ट्रीय हलचल में निस्संशय उनका भी ऐतिहासिक महत्त्व माना जायगा। तो क्या चित्रों की भाँति वह असहयोग-आंदोलन-संबंधी नाटक नहीं लिख सकते थे? जनता के हृदय में साहस उमड़ानेवाली जो जादू की पुड़िया उनके पास है, उसे वह हिंदी-साहित्य के भंडार में नहीं रख सकते थे? इन प्रश्नों का उत्तर तो वही दे सकते हैं, या पं० लक्ष्मीकांतजी भट्ट जिन्हें उनकी इन सारी विशेषताओं के साथ-साथ उनके अमार्जनीय आलस्य का भी पता है।

गत वर्ष शुक्लजी और पं० लक्ष्मीकांतजी भट्ट जब काशी आए थे, तो मैंने उनसे पुनः निवेदन किया था कि शुक्लजी के समर्थ होते हुए भी हिंदी में वीर-रसात्मक नाटकों का अभाव बहुत खटकता है; उन्हें चाहिए कि अपनी लेखनी को फिर गरजावें। साथ ही, एक प्रस्ताव भी सामने रक्खा था कि शुक्लजी एक ऐसी पेशेदार हिंदी-नाटक-कंपनी खड़ी करें, जिसमें केवल हिंदी के साहित्य-सेवी ही अभिनेता हों और केवल हिंदी के शुद्ध साहित्यिक नाटक ही खेले जायँ। ऐसे हिंदी-प्रधान नाटक-संघ का आयोजन करने से हिंदी का प्रचार भी बढ़ेगा और बहुत-से साहित्यानुरागी युवकों को नाट्य-कला द्वारा जीविका-उपार्जन करने की सुविधा भी मिल जायगी। और भी अनेक प्रकार के लाभ होंगे। पारसी-थिएट्रिकल कंपनियाँ हिंदी-प्रधान प्रांतों के मुख्य-मुख्य नगरों में घूम कर जनता की रुचि भी बिगाड़ती हैं और साहित्य के नाटक-जैसे महत्त्व-पूर्ण अंग पर क्रूरता-पूर्ण कुठाराघात भी करती हैं, सो तो न हो सकेगा। मुझे विश्वास है कि पेशेदार शुद्ध साहित्यिक-नाटक-कंपनी खुलने पर हिंदी-रंगमंच का तो निश्चय ही काया-कल्प हो जायगा।

शुक्लजी ने इस प्रस्ताव को बहुत पसंद किया और कहा कि हिंदी-साहित्य-सम्मेलन यदि इस तरफ़ ध्यान दे, तो बहुत कुछ काम हो सकता है। किंतु मेरी राय में हिंदी-हित-संबंधी हरएक बात के लिये 'सम्मेलन' ही को गिरफ़्तार करना ठीक नहीं। यदि स्वयं शुक्लजी ही आत्मविश्वास के साथ कलकत्ते में इस बात का उद्योग करें कि व्यावसायिक मंतव्य से एक शुद्ध साहित्यिक हिंदी-नाटक-संघ क़ायम होकर पेशेदार पारसी कंपनियों की तरह भारतवर्ष के नगर-नगर में भ्रमण करे, तो निश्चय ही उनको हिंदी-प्रेमी धनाढ्यों से काफ़ी सहायता मिल सकती है, और मुझे विश्वास है कि बहुत-से साहित्य-सेवी भी उनके इस आयोजन में सहर्ष सम्मिलित होंगे। मुज़फ़्फ़रपुर के होनहार युवक कवि श्रीललित-कुमारसिंह 'नटवर'--जो वीर-रस और हास्य-रस के बड़े निपुण अभिनेता हैं--बहुत दिनों से ऐसी किसी साहित्यिक कंपनी की ताक में हैं, तथा उन्हीं की तरह बहुत-से छिपे-रुस्तम और भी निकल आवेंगे।

ख़ैर, इस व्यावसायिक एवं साहित्यिक नाटक-संघ के विषय में फिर कभी विस्तार से लिखूँगा। यहाँ सिर्फ़ प्रसंगवश इतना लिख देना आवश्यक था। अब, अंत में,

हिंदी-नाट्यसमिति, प्रयाग का अंतिम ग्रूप

इस 'समिति' के बारे में कुछ और जानने योग्य बातें सुन लीजिए--

सन् १९१६ ई० में शुक्लजी को, जीविकोपार्जन के लिये, प्रयाग छोड़कर कलकत्ते जाना पड़ा। तो भी, पं० महादेव भट्ट, पं० लक्ष्मीकांत भट्ट, पं० रासविहारी शुक्ल, पं० जगन्नाथप्रसाद मिश्र आदि सज्जन बड़े उत्साह से 'समिति' को अच्छी तरह चलाते रहे। समय-समय पर शुक्लजी भी कलकत्ते से चले आते थे। परंतु समिति के जीवन-धन पं० महादेव भट्ट के स्वर्गवासी होने पर पूर्ववत् उत्साह न टिका रह सका--यद्यपि आज भी पं० रासविहारी शुक्ल, पं० जगन्नाथप्रसाद मिश्र, बाबू बद्री-प्रसाद खन्ना आदि के बचे-खुचे उत्साह से 'समिति' किसी तरह जीवित है। ईश्वर करे, वह फिर फूले-फले। बड़ी अच्छी बात हो, यदि 'साहित्य-सम्मेलन' अपने नगर की इस प्राचीन साहित्यिक संस्था के पुनरुद्धार का प्रयत्न करे।

हाँ, शुक्लजी सन् १९१६ ई० में जब कलकत्ते चले गए, तो वहाँ भी नाटक का व्यसन उनके साथ ही लगा रहा। आखिर कलकत्ते में भी उन्होंने "हिंदी-नाट्य-परिषद" स्थापित करके ही कल ली। 'परिषद' का उद्देश्य भी प्रयाग की 'नाट्य-समिति' के अनुकूल ही रहा--राजनीतिक जागृति का आवाहन! वास्तव में 'परिषद' ने कलकत्ते में बड़ा जागरण फैलाया। गत राष्ट्रीय आंदोलन के समय 'परिषद' के ४२ नवयुवक सदस्यों को जेल की सज़ा हुई थी। इसके अतिरिक्त 'परिषद' के सभापति बाबू पद्मराज जैन और मंत्री बाबू भोलानाथ बर्मन तो एक-एक वर्ष के लिये जेल गए ही, 'परिषद' के जन्मदाता और जीवन-सर्वस्व शुक्लजी

हिंदी-नाट्य-परिषद, कलकत्ता (सन् १९१७)

भी तीन-तीन बार श्रीकृष्ण-जन्मस्थली के अतिथि हुए। अतएव यदि ऐसा कहा जाय कि प्रयाग की 'हिंदी-नाट्य-समिति' का पुनर्जन्म कलकत्ते की 'नाट्य-परिषद' के रूप में हुआ, तो कोई अत्युक्ति न होगी। मैंने कलकत्ते में 'परिषद' के भी कई अभिनय देखे हैं, जिनकी चर्चा—'परिषद' का सचित्र परिचय देते समय—किसी अगले अंक में करूँगा।

शिवपूजनसहाय

मन

१

कहना न मानता किसी का किसी भाँति से तू,
दूसरों के उर में बनाता जा सदन है;
उलझन होती तुझे सुलझाने से ही और,
कैसे कहें कैसी फिर तेरी उलझन है?
एक क्षण को भी थिर होके बैठता न कभी,
चाहता जहाँ है वहीं करता गमन है;
तृण और तूल से भी हलका कहीं है, तो भी
कहलाता प्रबल प्रभाव से तू 'मन' है।

२

कौड़ियों के मोल विकता तू प्रेम-हाट में है,
कौन जाने कैसी कुछ अजब लगन है?
घन केश देख के मयूर बनता है, और
बनता चकोर देख चंद्र-सा वदन है।
ठगता जहाँ है वहीं जाता बार-बार तू है,
हानि में ही लाभ मान रहता मगन है;
तेरी प्रीति-रीति में कहाँ से लाभ होवे जब,
दो मन मिले से बनता तू एक मन है।

हरिश्चंद्रदेव वर्मा "चातक"

हिंदी-साहित्य का विकास

[आलोचना]

(१)
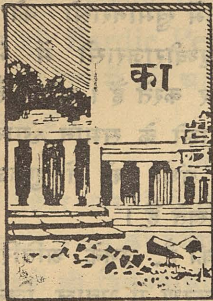
शी की प्रतिष्ठित संस्था नागरी-प्रचारिणी सभा जिस 'हिंदी-शब्द-सागर'-नामक कोश को प्रकाशित करा रही थी, वह अब तैयार हो गया है। इस कोश के प्रारंभ में हिंदी-साहित्य पर पं० रामचंद्रजी शुक्ल ने एक बहुत बड़ा निबंध लिखा है। यह निबंध शायद पुस्तकाकार भी प्रकाशित होगा। इस निबंध के एक अध्याय का नाम है 'हिंदी-साहित्य का विकास'। इसमें हिंदी के गद्य और पद्य-भाग का इतिहास आलोचना के साथ लिखा गया है। हिंदी के पद्य-भाग का विकास काफ़ी बड़ा है, और उसमें हिदी के प्रधान-प्रधान कवियों की चर्चा है। प्रस्तुत लेख में शुक्लजी-लिखित 'हिंदी-साहित्य का विकास' अध्याय पर कुछ फुटकर विचार प्रकट किए जायँगे।

'हिंदी-शब्द-सागर' हिंदी का सर्वमान्य और प्रतिष्ठित कोश है, हिंदी में तो क्या अन्य भारतीय भाषाओं में भी इसके जोड़ के बहुत कम कोश निकलेंगे। ऐसे कोश के आदि में हिंदी-साहित्य पर एक गंभीर विवेचना-पूर्ण निबंध की आवश्यकता हम निस्संकोच स्वीकार करते। परंतु साथ ही हमारा यह भी कहना है कि कोश आदि के प्रारंभ में जो विवेचनात्मक निबंध दिए जायँ, वे कम-से-कम विवादास्पद न होने चाहिए। यदि विवाद-स्थलों का देना अनिवार्य ही हो, तो विवाद-विषय के दोनों ही पक्षों की बातों का उल्लेख होना चाहिए। पं० रामचंद्रजी शुक्ल ने जो निबंध कोश के आदि में दिया है, वह हमारी राय में अनेक स्थलों पर अधिक विवादास्पद हो गया है। कोश-जैसे परम गंभीर ग्रंथ के आदि में विवादास्पद बातों से भरे प्राक्कथन को पढ़कर खेद होता है। हमारी शिकायत यह नहीं है कि पं० रामचंद्रजी ने जो कुछ लिखा है, वह उन्हें कहीं भी न लिखना चाहिए; पर शिकायत केवल इतनी है कि कोश के प्राक्कथन का आश्रय लेकर विवादास्पद समस्याओं को अधिक पल्लवित करना कोश की गंभीरता और उसके उच्च आदर्श के अनुकूल नहीं है।

'हिंदी-शब्द-सागर' के कई संपादक हैं। प्रधान संपादक रायसाहब बाबू श्यामसुंदरदासजी बी० ए० हैं। परंतु प्राक्कथन—साहित्यिक विवेचना—के लेखक पं० रामचंद्रजी शुक्ल हैं। ऐसी दशा में यह बात साफ़-साफ़ नहीं जान पड़ती है कि अन्य संपादकों की राय भी वही है, जो शुक्लजी ने प्राक्कथन में प्रकट की है या अन्य संपादकों का किसी-किसी बात में मत-भेद भी है। जो हो, जब वह शब्द-सागर के आदि में छपा है, तब इतना तो मानना ही पड़ेगा कि कम-से-कम प्रधान संपादक ने उसे स्वीकार किया होगा।

प्रस्तुत निबंध में शुक्लजी के प्राक्कथन के विषय में कोई क्रमबद्ध चर्चा नहीं की गई है। निबंध को पढ़ते समय जहाँ कहीं किसी बात पर शंका उठी है, वहीं उसी बात पर फुटकर विचार प्रकट किए गए हैं। शुक्लजी की विद्वत्ता और सहृदयता सभी लोग स्वीकार करते हैं। ऐसी दशा में संभव है, हमने जो कुछ इस लेख में लिखा है, वह हमारा प्रमाद ही हो। यदि हमारी भूल हमको बतला दी जायगी, तो हम उसे सहर्ष स्वीकार करेंगे।

वीरगाथा-काल

'हिंदी-साहित्य का विकास' अध्याय में आदिकाल के अंतर्गत 'वीरगाथा-काल' नाम का समय निर्द्धारित किया गया है। यह समय १०५० से १३७५ संवत् तक विस्तृत है। इस ३२५ वर्ष के व्यापक काल में १० रचयिताओं की रचनाओं पर विचार किया गया है। पुष्य वंदीजन की रचना अप्राप्त बतलाई गई है; परंतु यह स्वीकार किया गया है कि उसने जिस विषय पर रचना की, उसका संबंध अलंकार-शास्त्र से था, वीरगाथा से नहीं। इसी प्रकार देवसेन ने ९९० में जो श्रावकाचार-ग्रंथ बनाया, वह धार्मिक ग्रंथ था। वीरगाथा का पृष्ठपोषक ग्रंथ उसका भी न था। इसके बाद जिन ९ कवियों के ग्रंथ वीर-गाथा के संबंध में माने गए हैं, उनके नाम इस प्रकार हैं—

१. कवि का नाम अज्ञात। ग्रंथ का नाम खुमानरासा।

खुमानरासा के संबंध में शुक्लजी का कहना है—

"इस समय जो खुमानरासो मिलता है, उसमें महाराणा प्रतापसिंह तक का वर्णन मिलने से यह निश्चित

रूप से कहा जा सकता है कि जिस रूप में यह ग्रंथ अब मिलता है, वह उसे वि० संवत् की सत्रहवीं शताब्दी में प्राप्त हुआ होगा।''

२. नरपतिनाल्ह। ग्रंथ बीसलदेवरासो।

इस ग्रंथ के संबंध में शुक्लजी का कथन है—

''पर वर्णित घटनाएँ, विचार करने पर, बीसलदेव के बहुत पीछे की लिखी जान पड़ती हैं, जब कि उनके संबंध में कल्पना की गुंजाइश हुई'' और भी ''इस बीसलदेवरासो में, जैसा कि होना चाहिए था, न तो उक्त राजा की ऐतिहासिक चढ़ाइयों का वर्णन है, न उसके शौर्य-पराक्रम का। शृंगार-रस की दृष्टि से उसके विवाह और रूठकर विदेश जाने का मनमाना वर्णन है।'' आगे चलकर शुक्लजी लिखते हैं—

''यह पुस्तक न तो वस्तु के विचार से और न भाषा के विचार से अपने असली और मूल-रूप में कही जा सकती है......... इस ग्रंथ में शृंगार की प्रधानता है, वीर-रस का किंचित् आभास-मात्र है।''

३. चंदबरदाई। ग्रंथ पृथ्वीराजरासो।

इस ग्रंथ के विषय में शुक्लजी कहते हैं—''प्रसिद्ध इतिहासज्ञ रायबहादुर पंडित गौरीशंकर-हीराचंदजी ओझा रासो में वर्णित घटनाओं तथा संवतों को बिलकुल भाटों की कल्पना मानते हैं। × × × × सारांश यह कि अभी तक असली रासो का पता नहीं लगा है।''

४-५. भट्ट केदार-मधुकर। ग्रंथों के नाम 'जयचंद-प्रकाश' और 'जयमयंकजसचंद्रिका'।

इन ग्रंथों के संबंध में शुक्लजी के उद्गार हैं—

''दुर्भाग्य से ये दोनों ग्रंथ आज उपलब्ध नहीं हैं।''

६. जगनिक। ग्रंथ का नाम अज्ञात। इसके संबंध में शुक्लजी की उक्ति है—

''जगनिक के काव्य का आज कहीं पता नहीं है।''

७. सारंगधर। ग्रंथ १ हम्मीररासो २ हम्मीरकाव्य। इन ग्रंथों के संबंध में शुक्लजी का मत है—''पर आजकल जो हम्मीररासो नाम की पुस्तक मिलती है, वह पीछे की रचना है, समकालीन नहीं।''

८. नल्लसिंह भट्ट। ग्रंथ विजयपालरासो। शुक्लजी कहते हैं—''इनका ग्रंथ मिला है। जिसमें करौली के विजयपाल-नामक राजा के युद्धों का वर्णन है।''

इस प्रकार नं० १, २, ३ और ७ में जिन ग्रंथों का उल्लेख है, उन्हें शुक्लजी निस्संकोच रूप से समकालीन मानने को तैयार नहीं हैं। नं० ४, ५ और ६ में जिन ग्रंथों की चर्चा है, वे अप्राप्त हैं। केवल नं० ८ का ग्रंथ प्राप्त है, और उसमें वीरगाथा ही है। जिन ग्रंथों को शुक्लजी संदिग्ध बतलाते हैं, उनमें खुमानरासो को वे शृंगार-प्रधान मानते हैं, एवं पृथ्वीराजरासो में भी शृंगार की मात्रा कम नहीं स्वीकार करते हैं। संभव है, जो ग्रंथ अप्राप्त हैं, वे भी खुमानरासो के समान शृंगार-प्रधान हों। पुष्य और देवसेन के ग्रंथों को तो शुक्लजी 'वीरगाथा' के अंतर्गत स्वयं नहीं रखते हैं।

शुक्लजी ने जिन ग्रंथों की चर्चा की है, उनके अतिरिक्त 'मिश्रबंधु-विनोद' के द्वितीय संस्करण में भुवाल, जिन-वल्लभसूरि, कुतुबअली, साईंदान चारण, अकबर फ़ैज़, मोहनलाल द्विज, अनन्यदास, धर्मसूरि जैन, विजयसेन सूरि, विनयचंद्र सूरि और अंबदेव-नामक रचयिताओं का उल्लेख है, और उनके प्राप्त ग्रंथों में से निम्नलिखित ग्रंथों के नाम दिए हैं, तथा कई ग्रंथों के उदाहरण भी उद्धृत हैं। जैसे—भगवद्गीता, वृद्धनवकार, समंतसार, पत्तलि, अनन्ययोग, जंबूस्वामीरासा, रेवंतगिरिरासा, नेमिनाथ चउपद, उवदेसमाला और संघपतिसमरा-रास। उपर्युक्त सूची पर दृष्टिपात करने से जान पड़ता है कि इनमें 'वीरगाथा' से संबंध रखनेवाले ग्रंथ बहुत कम हैं। स्मरण रहे, उपर्युक्त सभी ग्रंथों की रचना उसी समय में हुई है, जिसका नाम शुक्लजी ने 'वीर-गाथा-काल' रक्खा है। ऐसी दशा में विचारणीय बात यह है कि उपलब्ध सामग्री के आधार पर, संवत् १०५० और १३७५ के बीच के समय में 'वीरगाथा'-संबंधी ग्रंथों का प्राधान्य प्रमाणित होता है या नहीं। यदि अप्राप्त ग्रंथों को बिल-कुल छोड़ दें और संदिग्ध ग्रंथों को भी प्रमाण कोटि में न लावें, तो दो-तीन ग्रंथों के सिवा वीरगाथा के सम-र्थक और कौन-से ग्रंथ हैं? इसके विपरीत धर्म और कविता एवं अन्य विषयों के उपलब्ध ग्रंथों की संख्या पर्याप्त है। कहने का अभिप्राय यह है कि उपलब्ध साक्ष्य १०५०-१३७५ काल को वीरगाथा-काल कहने का साधक नहीं है। इतिहास में तो जो साक्ष्य उपलब्ध है, उसी के बल पर निर्णय करना उचित है; केवल इस विचार से कि अन्य भाषाओं में Bardic काल है, इसलिये हिंदी

में भी उसकी ज़रूर स्थापना की जाय, कुछ अधिक उचित नहीं जान पड़ता है। मिश्रबंधुओं ने इस समय का नाम केवल 'आदि-काल' रक्खा है।

ग्रीब्ज़ साहब भी इसे केवल Early Period कहते हैं। F. E. Keay अवश्य ही एक अध्याय का नाम Early Bardic Chronicles रखते हैं, परंतु उन्होंने भी इसे Bardic Period के नाम से नहीं पुकारा है। हमारी राय में इसे आदिकाल कहना ही अधिक युक्ति-संगत है।

हिंदी-नवरत्न

'हिंदी-नवरत्न' के संबंध में शुक्लजी का कथन है—"इसी प्रकार की बेसिर-पैर की बातों से पुस्तक भरी है। कवियों की विशेषताओं के मार्मिक निरूपण की आशा से जो इसे खोलेगा, वह निराश ही होगा।" मिश्रबंधुओं की समालोचना के विषय में शुक्लजी की राय है—"उनकी बातें समालोचना कही जा सकती हैं या नहीं, यह दूसरी बात है।" शुक्लजी की इस उत्तरदायित्व-पूर्ण और गंभीर सम्मति को पढ़ने के बाद हमने निश्चय किया कि एक बार नवरत्न में आए हुए कवियों में से किसी एक कवि पर लिखी हुई समालोचना को ध्यान-पूर्वक पढ़ें, और फिर उसी कवि के संबंध में शुक्लजी ने अपने, 'हिंदी-साहित्य का विकास' में जो कुछ लिखा है, उससे मिलान करें; क्योंकि शुक्लजी ने तो उस कवि के बारे में मार्के की बातें लिखी ही होंगी। इसी अभिप्राय से हमने 'नवरत्न' में 'मतिराम' कवि के विषय में जो कुछ लिखा है, उसे ध्यान से पढ़ा। मतिराम को हमने इसलिये चुना कि इनके विषय में मिश्रबंधुओं पर यह अभियोग नहीं है कि उन्होंने इस कवि के साथ उचित अथवा अनुचित पक्षपात किया है। इसके अतिरिक्त 'मतिराम' पर मिश्र-बंधुओं ने अन्य कवियों की अपेक्षा कम ही लिखा है। फिर हमने 'मतिराम' पर शुक्लजी ने जो कुछ लिखा है, उसे भी ध्यान से पढ़ा। दोनों निबंधों को पढ़ने के बाद हमने उन दोनों का विश्लेषण किया। शुक्लजी एवं मिश्र-बंधुओं ने अपने-अपने निबंधों में विशेषरूप से पाँच बातें लिखी हैं, अर्थात् (१) कवि का परिचय, (२) उसका आचार्यत्व, (३) उसकी भाषा, (४) उसके भाव और (५) उसकी विहारी से तुलना।

'नवरत्न' में मतिराम का परिचय अधिक व्यापक है, उदाहरण भी बहुत-से हैं। शुक्लजी ने जो परिचय लिखा है, वह शायद स्थानाभाव के कारण थोड़ा है। उन्होंने मतिराम के जो पाँच छंद उदाहरण-स्वरूप दिए हैं, वे मिश्रबंधुओं के दिए बहुत-से उदाहरणों में मौजूद हैं। मतिराम के आचार्यत्व के विषय में दोनों की सम्मतियाँ समान हैं, और यही हाल भाषा-संबंधी विचारों का है। मतिरामजी अपने भावों को किस प्रकार विकसित करते थे, इसे मिश्रबंधुओं ने उदाहरण देकर समझाया है। शुक्लजी ने मतिराम में सरसता और स्वाभाविकता का उल्लेख किया है; यही उनकी विशेषता बतलाई है। मिश्रबंधु मतिराम में साहित्य-संबंधी सभी उत्कृष्ट गुण मानते हैं। शुक्लजी मतिराम के दोहों को विहारी के दोहों के समान सरस मानते हैं, और मिश्रबंधुओं को इनके दोहों को पढ़कर विहारीलाल के दोहों का स्मरण हो आता है। निदान विश्लेषण-पूर्वक पढ़ने के बाद हमें तो मतिराम-संबंधी शुक्लजी के और मिश्रबंधुओं के विचार एक-से ही जान पड़ते हैं। अच्छा, तो यदि 'हिंदी-नवरत्न' पुस्तक बेसिर-पैर की बातों से ही भरी पड़ी है, तो 'मतिराम'-निबंध में भी बेसिर-पैर की बातें होनी चाहिए। फिर, यदि 'मतिराम' के संबंध में मिश्रबंधुओं ने बेसिर-पैर की बातें लिखी हैं, तो उन्हीं बेसिर-पैर की बातों को लिखनेवाले शुक्लजी अपनी लिखी बातों को क्या समझते हैं? और, फिर यदि मिश्रबंधुओं की बातें समालोचना नहीं कही जा सकती हैं, तो उन्हीं बातों को लिखकर शायद शुक्लजी भी अपनी बातों को समालोचना मानने से इनकार करें। एक बात और है। 'हिंदी-नवरत्न' का प्रथम संस्करण संवत् १९६७ में प्रकाशित हुआ था, और 'हिंदी-साहित्य का विकास' संवत् १९८६ में छपा है। इस प्रकार 'हिंदी-नवरत्न' पूर्ववर्ती और 'हिंदी-साहित्य का विकास' परवर्ती है। अवश्य ही शुक्लजी ने अपने मतिराम-निबंध में बेसिर-पैर की बातें न लिखी होंगी, तब उन्हीं बातों को 'हिंदी-नवरत्न' में पाकर बेसिर-पैर की क्यों मानें? संभव है, 'मतिराम'-निबंध में शुक्लजी बेसिर-पैर की बातें न मानते हों, तब उनका यह कथन कि "पुस्तक बेसिर-पैर की बातों से भरी पड़ी है" असंयत और असमर्थ जान पड़ता है। यदि 'हिंदी-नवरत्न' के मतिराम-निबंध को पढ़कर मतिराम की विशेषताओं के मार्मिक निरूपण की आशा से हमें

निराश होना पड़ता है, तो हिंदी-साहित्य के विकास में प्राप्त मतिराम-संबंधी विवरण भी हमें निराश करने को पर्याप्त है, क्योंकि दोनों में बातें वही हैं, बल्कि 'विकास' में तो कुछ बातें कम हैं। आगे हम शुक्लजी और मिश्र-बंधुओं के मतिराम-संबंधी कथनों का विश्लेषण देते हैं—

हिंदी-साहित्य का विकास (पं० रामचंद्र शुक्ल)	हिंदी-नवरत्न (मिश्रबंधु)
१. परिचय—जीवन-वृत्तांत और ग्रंथ तथा उदाहरण-स्वरूप पाँच छंद।	१. परिचय—जीवन-वृत्तांत और ग्रंथ तथा उदाहरण-स्वरूप बहुत-से छंद।
२. आचार्यत्व—रीतिकाल के मुख्य कवि। रस और अलंकार की शिक्षा में रसराज और ललितललाम का परंपरा से उपयोग है। सरलता और स्पष्टता के कारण उक्त दोनों ग्रंथ सर्वप्रिय हैं।	२. आचार्यत्व—नायिका-भेद पढ़नेवाले लोग इस ग्रंथ को सबसे पहले पढ़ते हैं। यदि कोई मनुष्य विना गुरु की सहायता के अलंकार पढ़ना चाहे तो उसे हम ललित-ललाम पढ़ने की सम्मति देंगे।
३. भाषा—भाषा शब्दाडंबर से मुक्त, रसस्निग्ध और प्रसाद-पूर्ण है। अनुप्रास के लिये अशक्त शब्दों की भरती का अभाव है। पद्माकर की भाषा इनकी भाषा के ही समान स्वच्छ, चलती और स्वाभाविक है; पर कहीं-कहीं अनुप्रास के जाल में बेतरह जकड़ी है।	३. भाषा—मतिराम की भाषा बहुत उत्कृष्ट है। इनको अनुप्रास आदि का इष्ट न था। माधुर्य और प्रसाद मानों इन्हीं के वास्ते रचे गए थे। ये प्रायः कभी भरती के पद या शब्द नहीं रखते थे। सिवा देव के इनकी सी भाषा कोई कवि नहीं लिख सका। भाषा के मामले में यदि कोई और कवि इनके समीप पहुँचा, तो वह केवल प्रतापसाह थे।
४. भाव—मतिराम में सरसता और स्वाभाविकता है, सच्चा कवि-हृदय है और काव्य में अनुभूति है। भाव, उनके व्यंजक व्यापार और चेष्टाएँ कृत्रिम नहीं हैं। उनकी शृंखला सीधी और सरल है।	४. भाव—सिवा चार-छः परमोत्कृष्ट कवियों के और किसी हिंदी-कवि की रचना मतिराम की कविता की समता नहीं कर सकती। इन्होंने जिस छंद में जो भाव उठाया है, उसके एक-एक शब्द से उसी की पुष्टि की है। मतिराम ने अपनी कविता में प्रायः सभी उत्कृष्ट साहित्य-संबंधी गुणों का बहुतायत से प्रयोग किया है।
५. तुलना—इनके दोहे विहारी के दोहों के समान सरस हैं।	५. तुलना—इनके दोहों से विहारीलाल का स्मरण हो आता है।

दो कवियों की तुलना

हिंदी-साहित्य-संसार में, कुछ समय हुआ, यह विवाद उठा था कि महाकवि देव और महाकवि विहारी में कविता की दृष्टि से कौन कवि बड़ा है। कोई महाकवि विहारी को बड़ा बतलाता था और कोई देव को। इस विवाद को लक्ष्य करके शुक्लजी लिखते हैं—

"अच्छा हुआ कि 'छोटे-बड़े' के इस भद्दे झगड़े की ओर अधिक लोग आकर्षित नहीं हुए।"

संसार-भर में साहित्यिकों में कवियों के विषय में मतभेद रहा है। प्रत्येक भाषा के साहित्य में भिन्न-भिन्न साहित्यिकों ने उसी भाषा के दो कवियों में से एक को दूसरे से श्रेष्ठ माना है। जहाँ भी दो कवियों की तुलना

होगी, वहाँ एक दूसरे से बड़ा माना जायगा। ऐसे विवाद आश्चर्यप्रद नहीं हैं। वे प्राचीन समय से होते आए हैं, इस समय भी हैं और भविष्य में भी होते रहेंगे। ऐसे विवाद से तुलना के विषयों, उभय कवियों की विशेषताओं, गुणों और उनके दोषों की ख़ूब छानबीन होती है। इससे साहित्यिक ज्ञान भी बढ़ता है। हाँ, जब विवाद में हठ, कटुता और गालीगलौज का समावेश हो जाता है, तब वह अवश्य निंदनीय हो जाता है। ऐसी दशा में दो कवियों के विषय में होनेवाले विवाद को हम बुरा नहीं मानते हैं। हमारी राय में देव और विहारी की तुलना से देव और विहारी के संबंध में लोगों को बहुत-सी नई बातें मालूम हुईं। पर यह हमारी राय है; शुक्लजी की जो राय है, वह ऊपर उद्धृत है। उससे स्पष्ट है कि शुक्लजी एक कवि से दूसरे कवि को बड़ा या छोटा कहना पसंद नहीं करते हैं, और ऐसे विवाद को भद्दा अथच निंद्य मानते हैं। हमें आश्चर्य है कि ऐसी राय रखते हुए भी शुक्लजी ने 'साहित्य का विकास'-निबंध में कई जगह ऐसे झगड़े को उठाने का प्रयत्न किया है। यहाँ पर हम कुछ उदाहरण देते हैं।

'दास' कवि के विषय में शुक्लजी कहते हैं—

"इनमें देव की अपेक्षा अधिक रसविवेक था × × × × देव की-सी ऊँची आकांक्षा या कल्पना जिस प्रकार इनमें कम पाई जाती है, उसी प्रकार उनकी-सी असफलता भी कहीं नहीं मिलती है।"

'बेनीप्रवीन' की भाषा को लक्ष्य करके शुक्लजी का कथन है—

"भाषा इनकी बहुत साफ़-सुथरी और चलती है, देव की भाषा की तरह लद्दू नहीं।"

'पद्माकर' की भाषा पर लिखते हुए शुक्लजी के उद्गार हैं—

"देव की शब्दाडंबरप्रियता ने उनकी प्रायः सब रचना विकृत और भद्दी कर दी है। थोड़े पद्य उनके ऐसे मिलेंगे, जिनमें भाषा का स्वाभाविक चलतापन और मार्मिक प्रभाव हो। भावमूर्तिविधायिनी कल्पना की भी उनमें कमी है। वे ऊहा के बल पर कारीगरी के मज़मून बाँधने के प्रयासी कवि थे। हृदय की सच्ची स्वाभाविक प्रेरणा उनमें कम थी। अतः पद्माकर के साथ उनका नाम लेना ही व्यर्थ है।"

उपर्युक्त उद्धरणों से यह बात स्पष्ट है कि विशेष-विशेष बातों में शुक्लजी दास, बेनीप्रवीन एवं पद्माकर को देव कवि से बड़ा मानते हैं। फिर यदि 'देव' और 'विहारी' के संबंध में अन्य साहित्यिक भी विवाद करते हैं, तो उसको आप अनुचित क्यों बतलाते हैं? आपकी सम्मति के संबंध में हमें कुछ नहीं कहना है। एक साहित्यिक की हैसियत से आपको अपनी सम्मति प्रकट करने का पूर्ण अधिकार है। आप अपनी सम्मति का प्रचार भी कर सकते हैं। पर जब उसी प्रकार अन्य साहित्यिक दो कवियों में एक को छोटा या बड़ा कहते हैं, तब आप अप्रसन्न क्यों होते हैं? आप अपने विचार थोड़े में प्रकट करते हैं, पर वे लोग विस्तार के साथ लिखते हैं। भेद केवल इतना ही है।

कवि-परिचय

शुक्लजी ने साहित्य के विकास को दिखलाते हुए जिन कवियों के परिचय लिखे हैं, वे मिश्रबंधु-विनोद के प्रथम संस्करण में दिए परिचयों से बहुत मिलते हैं। दोनों को साथ-साथ पढ़ने से तो ऐसा जान पड़ता है कि एक दूसरे की कोरी नक़ल है। एक बात कुतूहल को और बढ़ानेवाली है। मिश्रबंधुओं ने 'विनोद' के दूसरे संस्करण में नई खोज से लाभान्वित होकर प्रथम संस्करण-वाले परिचयों में कुछ फेरफार भी किए हैं। 'विनोद' का दूसरा संस्करण संवत् १९८४ में प्रकाशित हुआ है। शुक्लजी का 'साहित्य का विकास' संवत् १९८६ में प्रकाशित हुआ है। फिर भी 'विनोद' के दूसरे संस्करण में प्राप्त परिवर्तनों की शुक्लजी के विकास में सर्वथा उपेक्षा है। उदाहरण-स्वरूप हम यहाँ पर आलम, तोषनिधि और बेनीप्रवीन के विषय में कुछ निवेदन करना चाहते हैं। आलम के ही एक ग्रंथ में लिखा है कि वह अकबर के समय में थे। युक्तितरंगिणी-ग्रंथ में कुलपति मिश्र ने अपने पूर्ववर्ती कवियों की स्तुति की है। उस स्तुति में तुलसी आदि कवियों के साथ आलम का नाम लिया है। आलम के काल पर याज्ञिकत्रय ने अच्छा प्रकाश डाला है। 'विनोद' के दूसरे संस्करण में इस नई खोज के अनुसार परिवर्तन किए गए हैं, परंतु शुक्लजी ने वही विनोद के प्रथम संस्करण में लिखी बातों को दोहरा दिया है। तोष और तोषनिधि दो भिन्न कवि हैं। एक पूर्ववर्ती है और दूसरा परवर्ती। एक सरयूपारीण, शृंगवेरपुर

के हैं और दूसरे कान्यकुब्ज कंपिला-निवासी। तोषनिधि और तोष का पूरा परिचय उन्हीं के ग्रंथों से मिल चुका है, और वह हिंदी की भिन्न-भिन्न पत्रिकाओं में प्रकाशित भी हो चुका है। मिश्रबंधुओं ने इस नई खोज से पूरा लाभ उठाया है। उन्होंने दोनों कवियों का हाल अलग-अलग दिया है, पर शुक्लजी को मानो इस नई खोज की ख़बर ही नहीं है। उन्होंने तो विनोद के प्रथम संस्करण में जो कुछ दिया है, उसी की नक़ल-भर कर दी है। 'विनोद' के प्रथम संस्करण में, जो संवत् १९७० में छपा था, इस बात पर खेद प्रकट किया गया था कि कविवर बेनीप्रवीन का 'नवरस-तरंग' प्रकाशित नहीं हुआ है। यह खेद-प्रदर्शन उचित ही था; क्योंकि तब तक सचमुच 'नवरस-तरंग' नहीं छपा था। पर संवत् १९८२ में 'नवरस-तरंग' काशी के "प्राचीन कविमाला-कार्यालय" से प्रकाशित हो गया। उक्त पुस्तक की आलोचनाएँ भी पत्र-पत्रिकाओं में निकल गईं। 'विनोद' के दूसरे संस्करण में बेनीप्रवीन का परिचय लिखते हुए मिश्रबंधुओं ने 'नवरस-तरंग' के प्रकाशित हो जाने पर हर्ष भी प्रकट कर दिया, परंतु शुक्लजी संवत् १९८६ में भी अपने 'हिंदी-साहित्य का विकास' में बराबर यही कहे जाते हैं—"खेद है, इनका कोई ग्रंथ अभी तक प्रकाशित नहीं हुआ।" एक जगह मिश्रबंधुओं ने डौंड़ियाखेरे को उस ज़िले में लिख दिया है, जिसमें वह नहीं है। शुक्लजी ने भी मक्षिकास्थानेमक्षिका—उसको उसी ज़िले में लिख दिया है। मिश्रबंधु-विनोद के प्रथम संस्करण में दिए कवि-परिचयों की नक़ल शुक्लजी के परिचयों में कितनी अधिक मात्रा में मौजूद है, इसे जो कोई देखना चाहें दोनों पुस्तकों को सामने रखकर मिला लें। यहाँ पर हम उदाहरण-स्वरूप आलम, तोषनिधि और बेनीप्रवीन के परिचय दोनों ग्रंथों से लेकर उद्धृत करते हैं। पाठकगण यथार्थ बात का निर्णय स्वयं कर लें। शुक्लजी विनोद को 'इतिवृत्त-संग्रह' बतलाते हैं, वैसी दशा में उनके 'हिंदी-साहित्य का विकास' का अधिकांश भाग सहज में ही 'इतिवृत्तसार-संग्रह' कहा जा सकता है।

हिंदी-साहित्य का विकास

(संवत् १९८६)

आलम—

ये जाति के ब्राह्मण थे, पर शेख़ नाम की रँगरेजिन के प्रेम में फँसकर पीछे से ये मुसलमान हो गए, और उसके साथ विवाह करके रहने लगे। आलम को शेख़ से जहान-नामक एक पुत्र भी हुआ। ये औरंगज़ेब के दूसरे बेटे मुअज़्ज़म के आश्रय में रहते थे, जो संवत् १७६३ में जाजऊ की लड़ाई में मारे गए थे। अतः आलम का कविता-काल संवत् १७४० से संवत् १७६० तक माना जा सकता है। इनकी कविताओं का एक संग्रह 'आलम-केलि' के नाम से प्रसिद्ध है। इस पुस्तक में आए पद्यों के अतिरिक्त इनके बहुत-से सुंदर और उत्कृष्ट पद्य ग्रंथों में संगृहीत मिलते हैं, और और लोगों के मुँह से सुने जाते हैं। "माधवानल कामकंदला" नाम की प्रेम-कहानी भी इन्होंने पद्य में लिखी है। पर इनकी प्रसिद्धि प्रेम और शृंगार-संबंधिनी फुटकल कविताओं के कारण ही है।

शेख़ रँगरेजिन भी अच्छी कविता करती थी। आलम के साथ प्रेम होने की विचित्र कथा प्रसिद्ध है। कहते हैं कि आलम ने एक बार उसे पगड़ी रँगने को दी, जिसकी खूँट में भूल से काग़ज़ का एक चिट बँधा चला गया। उस चिट में दोहे की यह आधी पंक्ति लिखी थी—"कनक छरी-सी कामिनी काहे को कटि छीन"। शेख़ ने दोहा इस तरह पूरा करके—"कटि को कंचन काटि बिधि कुचन मध्य धरि दीन"—उस चिट को फिर ज्यों-का-त्यों पगड़ी की खूँट में बाँधकर लौटा दिया। उसी दिन से आलम शेख़ के प्रेमी हो गए, और अंत में उसके साथ विवाह कर लिया। शेख़ बहुत ही चतुर और हाज़िर-जवाब स्त्री थी। एक बार शाहज़ादा मुअज़्ज़म ने हँसी में शेख़ से पूछा—"क्या आलम की औरत आप ही हैं?" शेख़ ने चट उत्तर दिया कि "हाँ, जहाँपनाह! जहान की मा मैं ही हूँ।" "आलम-केलि" में बहुत- कवित्त शेख़ के रचे हुए हैं। आलम के कवित्त-सवैयों में भी बहुत रचना शेख़ की मानी ज है। जैसे, नीचे लिखे कवित्त में चौथा चरण शेख़ का बनाया कहा जाता है—

प्रेमरंग-पगे जगमगे जगे जामिन के,
जोबन की जोति जगि जोर उमगत हैं;
मदन के माते मतवारे ऐसे घूमत हैं,
झूमत हैं झुकि-झुकि झँपि उघरत हैं।
आलम सो नवल निकाई इन नैननि की,
पाखुरी-पदुम पै भँवर थिरकत हैं;

चाहत हैं उड़िबे को, देखत मयंकमुख,
जानत हैं रैनि ताते ताहि मैं रहत हैं।

आलम रीतिबद्ध रचना करनेवाले कवि नहीं थे। ये प्रेमोन्मत्त कवि थे और अपनी तरंग के अनुसार रचना करते थे। इसी से इनकी रचनाओं में हृदय-तत्त्व की प्रधानता है। "प्रेम की पीर" या "इश्क़ का दर्द" इनके एक-एक वाक्य में भरा पाया जाता है। उत्प्रेक्षाएँ भी इन्होंने बड़ी अनूठी और बहुत अधिक कही हैं। शब्द-वैचित्र्य, अनुप्रास आदि की प्रवृत्ति इनमें विशेष-रूप से कहीं नहीं पाई जाती। शृंगार-रस की ऐसी उन्मादमयी उक्तियाँ इनकी रचना में मिलती हैं कि पढ़ने और सुननेवाले लीन हो जाते हैं। यह तन्मयता सच्ची उमंग में ही संभव है। रेखता या उर्दू-भाषा में भी इन्होंने कवित्त कहे हैं।

भाषा भी इस कवि की परिमार्जित और सुव्यवस्थित है, पर उसमें कहीं-कहीं 'कीन' 'दीन' 'जौन' आदि अवधी या पूर्वी हिंदी के प्रयोग भी मिलते हैं। कहीं-कहीं फ़ारसी की शैली के रसबाधक भाव भी इनमें मिलते हैं। प्रेम की तन्मयता की दृष्टि से आलम की गणना 'रसखान' और 'घनानंद' की कोटि में होनी चाहिए। इनकी कविता के कुछ नमूने नीचे दिए जाते हैं—

जा थल कीने बिहार अनेकन ता थल काँकरी बैठ चुन्यो करैं;
जा रसना सों करी बहु बातन ता रसना सों चरित्र गुन्यो करैं।
आलम जौन से कुंजन में करी केलि तहाँ अब सीस धुन्यो करैं;
नैनन में जे सदा रहते तिनकी अब कान कहानी सुन्यो करैं।

कैधों मोर सोर तजि गए री अनत भाजि,
कैधों उत दादुर न बोलत हैं, ए दई;
कैधों पिक चातक महीप काहू मारि डारे,
कैधों बगपाँति उत अंत गति ह्वै गई;
आलम कहै, हो आली! अजहूँ न आए प्यारे,
कैधों उत रीति बिपरीत बिधि नैं दई;
मदन महीप की दुहाई फिरिबे तें रही,
जूझि गए मेघ कैधों बीजुरी सती भई।

रात के उनींदे, अरसाते, मदमाते राते,
अति कजरारे दृग तेरे यों सुहात हैं;
तीखी-तीखी कोरनि करोरि लेत काढ़ि जीव,
केते भए घायल औ केते तलफात हैं।
ज्यों-ज्यों लै सलिल चख 'शेख' धोवै बार-बार,
त्यों-त्यों बल बुंदन के बार झुकि जात हैं;
कैबर के भाले, कैधों नाहर नहनवाले,
लोहू के पियासे कहूँ पानी तें अघात हैं।

दाने की न पानी की, न आवै सुधि खाने की, याँ
गली महबूब की अराम खुस खाना है;
रोज ही से है जो राजी यार की रजाय बीच,
नाज की नजर तेज तीर का निशाना है।
सूरत चिराग रोशनाई आशनाई बीच,
बार-बार बरै बलि जैसे परवाना है;
दिल से दिलासा दीजे, हाल के न ख्याल हूजे,
बेखुद फकीर वह आशिक दिवाना है।

मिश्रबंधु-विनोद

(संवत् १९७०)

आलम—

ये महाशय संवत् १७६० के लगभग थे। शिवसिंहजी ने इनका बनाया हुआ औरंगज़ेब के द्वितीय पुत्र मुवज़्ज़म की प्रशंसा का एक छंद लिखा है। इससे विदित होता है कि ये महाशय औरंगज़ेब के समय में थे। मुवज़्ज़म जाजऊ की लड़ाई में संवत् १७६३ में मारे गए थे। आलम ब्राह्मण थे, परंतु शेख़ कवि-नामक रँगरेजिन के प्रेम में फँसकर मुसलमान हो गए, और उसके साथ विवाह करके सुख-पूर्वक रहते रहे। इनके जहान-नामक एक पुत्र भी था। इनके चरित्रों का वर्णन कुछ शेख़ के हाल में आवेगा।

इस कवि का हमने कोई ग्रंथ नहीं देखा, परंतु प्रायः ३० स्फुट छंद हमारे देखने में आए हैं। मुंशी देवीप्रसादजी ने लिखा है कि उनके पास आलम और शेख़ के क़रीब ४०० छंद हैं। इनके छंद देखने से हमें जान पड़ता है कि इन्होंने नख-शिख का भी कोई ग्रंथ लिखा होगा। आलम एक स्वाभाविक कवि था और इसकी कविता बड़ी मनोहर है। खोज में आलम-केलि, आलम की कविता तथा माधवानल कामकंदला-नामक इनके ग्रंथ भी मिले हैं। कविता में यह कवि बड़ा कुशल है, और इस कौशल का कारण भी इसका अविचल इश्क़ है। जान पड़ता है कि शेख़ इन्हीं के सामने मर गई थी, क्योंकि उसके विरह में इन्होंने एक बड़ा ही टकसाली छंद कहा है। इस छंद के रचयिता होने से भाषा-साहित्य के किसी भी कवि को अभिमान हो सकता था। इनकी भाषा अत्युत्तम और भाव गंभीर हैं। हम इनकी गणना पद्माकर कवि की श्रेणी में करते हैं।

कैधों मोर सोर तजि गए री अनत भाजि,
कैधों उत दादुर न बोलत हैं ऐ दई ;
कैधों पिक चातक महीप काहू मारि डारो,
कैधौं बकपाँति उत अंत गति ह्वै गई ।
आलम कहै हो आली अजहूँ न आए मेरे,
कैधौं उत रीति बिपरीति बिधि नैं दई ;
मदन महीप की दुहाई फिरिबे तें रही,
जूझि गए मेघ कैधों बीजुरी सती भई ।
जा थर कीन्हें बिहार अनेकन ता थर
काँकरी बैठि चुन्यो करैं ;
जा रसना सों करी बहु बातन,
ता रसना सों चरित्र गुन्यों करैं ;
आलम जौन से कुंजन में करी केलि,
तहाँ अब सीस धुन्यो करैं ;
नैनन में जे सदा रहते तिनकी
अब कान कहानी सुन्यो करैं ।

× × ×

तोषनिधि—
(विकास)

ये एक प्रसिद्ध कवि हुए हैं । ये श्रृंगवेरपुर (सिंगरौर, ज़िला इलाहाबाद) के रहनेवाले चतुर्भुज शुक्ल के पुत्र थे । इन्होंने संवत् १७६१ में 'सुधानिधि'-नामक एक अच्छा बड़ा ग्रंथ रसभेद और भावभेद का बनाया । खोज में इनकी दो और पुस्तकें मिली हैं—विनयशतक और नख-शिख । तोषजी ने काव्यांगों के बहुत अच्छे लक्षण और सरस उदाहरण दिए हैं । उठाई हुई कल्पना का अच्छा निर्वाह हुआ है और भाषा स्वाभाविक प्रवाह के साथ आगे बढ़ती है । तोषजी एक बड़े ही सहृदय और निपुण कवि थे । भावों का विधान सघन होने पर भी कहीं उलझा नहीं है । बिहारी के समान इन्होंने भी कहीं-कहीं ऊहात्मक अत्युक्ति की है । कविता के कुछ नमूने दिए जाते हैं ।

भूषन-भूषित दूषन-हीन प्रबीन महारस मैं छबि छाई ;
पूरी-अनेक पदारथ तें जेहि में परमारथ स्वारथ पाई ।
औ उकतैं मुकतैं उलही कवि तोष अनोप भरी चतुराई ;
होत सबै सुख की जनिता बनिआवत जौ बनिता-कबिताई ।
एक कहै हँसि ऊधवजू ! ब्रज की जुवती तजि चंद्रप्रभा सी ;
जाय कियो कह तोष प्रभू ! एक प्रानप्रिया लहि कंस की दासी ।
जो हुते कान्ह प्रबीन महा सो हहा ! मथुरा में कहा मति नासी ;
जीव नहीं उबियात जबै ढिंग पौढ़ति है कुबजा कछुवा सी ।
श्रीहरि की छबि देखिबे को अँखियाँ प्रति रोमहि में करि देतो ;
बैनन के सुनिबे हित श्रौन जिते-तित सो करतौ करि हेतो ।
मो ढिंग छाँड़ि न काम कहूँ रहै 'तोष' कहै लिखितो बिधि एतो ,
तौ करतार इती करनी करिकै कलि मैं कल कीरति लेतो ।
तौ तन में रबि को प्रतिबिंब परे किरनै सो घनी सरसाती ;
भीतरहू रहिजात नहीं अँखियाँ चकचौंधि ह्वै जाति हैं राती ।
बैठी रहौ, बलि, कोठरी में कह तोष करौं बिनती बहु भाँती ;
सारसी नैनि लै आरसी सों अँग काम कहा कढ़ि घाम में जाती ।

तोषनिधि—
(विनोद)

ये महाशय चतुर्भुज शुक्ल के पुत्र श्रृंगवेरपुर (सिंगरौर, ज़िला इलाहाबाद) के रहनेवाले थे । इन्होंने सं० १७६१ में सुधानिधि-नामक रस-भेद और भाव-भेद का १८३ पृष्ठों और ५६० छंदों का एक बड़ा ही बढ़िया ग्रंथ बनाया । उसी में कवि ने अपने विषय में उपर्युक्त बातें लिखी हैं । विनयशतक और नखशिख-नामक इनके दो और ग्रंथ खोज में मिले हैं । तोषनिधि अपनी श्रेणी के अगुआ हैं । अपने-अपने ग्रंथ में आचार्यता भी प्रदर्शित की है और काव्यांगों पर अच्छे विचार प्रकट किए हैं । कुछ लोगों का यहाँ तक मत है कि इनका रचना-चमत्कार दासजी के समान है । इन्होंने अनुप्रास और यमक का प्रयोग किया है और भावपूर्ण गंभीर छंद आपकी रचना में बहुत पाए जाते हैं । सुधानिधि ऐसा विलक्षण बना है कि जिस एक ग्रंथ से ही ये सुकवि कहे जा सकते हैं ।

इक दीन्हीं अधीनी करें बतियाँ जिनकी कटि छीनी छलामैं करैं ;
इक दोस धरैं अपसोस भरैं इक रोस के नैन ललामैं करैं ।
कहि तोष जुटी जुग जंघन सों उर दे भुज स्यामै सलामैं करैं ;
निज अंबर माँगैं कदंब तरे ब्रज बामैं कलामैं मुलामैं करैं ।
तोतन मैं रबि को प्रतिबिंब परैं किरनैं सो घनी सरसाती ;
भीतर हूँ रहि जात नहीं अँखियाँ चकचौंध ह्वै जात हैं राती ।
बैठि रहौ बलि कोठरी में कहि तोष करौं बिनती बहु भाँती ;
सारसी नैन लै आरसी सों अँग काम कहा कढ़ि घाम मैं जाती ।

बेनी प्रवीन—
(विकास)

ये लखनऊ के वाजपेयी थे और लखनऊ के बादशाह गाजीउद्दीन हैदर के दीवान राजा दयाकृष्ण कायस्थ के

पुत्र नवलकृष्ण उर्फ़ ललनजी के आश्रय में रहते थे जिनकी आज्ञा से संवत् १८७४ में इन्होंने 'नवरसतरंग'-नामक ग्रंथ बनाया। इसके पहले 'श्रृंगारभूषण'-नामक एक ग्रंथ ये बना चुके थे। ये कुछ दिन के लिये महाराज नानाराव के पास बिठूर भी गए थे और उनके नाम पर 'नानाराव-प्रकाश'-नामक अलंकार का एक बड़ा ग्रंथ कविप्रिया के ढंग पर लिखा था। खेद है, इनका कोई ग्रंथ अब तक प्रकाशित न हुआ। इनके फुटकर कवित्त तो इधर-उधर बहुत कुछ संगृहीत और उद्धृत मिलते हैं। कहते हैं कि बेनी बंदीजन (भड़ौआवाले) से इनसे एक बार कुछ वाद हुआ था, जिससे प्रसन्न होकर उन्होंने इन्हें 'प्रवीन' की उपाधि दी थी। पीछे से रूग्ण होकर ये सपत्नीक आबू चले गए और वहीं इनका शरीरपात हुआ। इन्हें कोई पुत्र न था।

इनका 'नवरस-तरंग' बहुत ही मनोहर ग्रंथ है। उसमें नायिकाभेद के उपरांत रसभेद और भावभेद का संक्षेप में निरूपण हुआ है। उदाहरण और रसों के भी दे दिए गए हैं। रीतिकाल के रस-संबंधी और ग्रंथों की भाँति यह श्रृंगार का ही ग्रंथ है। इसमें नायिकाभेद के अंतर्गत प्रेम-क्रीड़ा की बहुत-सी सुंदर कल्पनाएँ भरी पड़ी हैं। भाषा इनकी बहुत साफ़-सुथरी और चलती है, देव की भाषा की तरह लद्दू नहीं है। ऋतुओं के वर्णन भी उद्दीपन की दृष्टि से जहाँ तक रमणीय हो सकते हैं, किए गए हैं जिनमें प्रथानुसार भोगविलास की सामग्री भी बहुत कुछ आ गई है। अभिसारिका आदि कुछ नायिकाओं के वर्णन बड़े ही सरस हैं। ये व्रजभाषा के मतिराम ऐसे कवियों के समकक्ष हैं और कहीं-कहीं तो भाषा और भाव-माधुर्य में पदमाकर तक से टक्कर लेते हैं। जान पड़ता है श्रृंगार के लिये सवैया ये विशेष उपयुक्त समझते थे। कविता के कुछ नमूने उद्धृत किए जाते हैं—

भोर ही न्योति गई ती तुम्हैं वह गोकुल गाँव की ग्वालिन गोरी;
आधिक राति लौं बेनीप्रबीन कहा ढिंग राखि करी बरजोरी।
आवे हँसी मोंहिं देखत लालन, भाल में दीन्हों महावर घोरी;
एते बड़े ब्रजमंडल में न मिली कहुँ माँगेहु रंचक रोरी।
जान्यो न मैं ललिता अलि ताहि, जो सोवत माँहिं गई करि हाँसी;
लाए हिए नख केहरि के सम मेरी तऊ नहिं नींद बिनासी।
लै गई अंबर बेनीप्रबीन, ओढ़ाय लटी दुपटी दुखरासी;
तोरि तनी, तन छोरि अभूषन, भूलि गई गर देन को फाँसी।

घनसार पटीर मिलै मिलै नीर चहै तन लावै न लावै चहै;
न बुझै बिरहागिनि झार, झरी हू चहै घन लावै न लावै चहै।
हम टेरि सुनावतीं बेनीप्रबीण चहै मन लावै न लावै चहै;
अब आवै बिदेस ते पीतम गेह, चहै धन लावै न लावै चहै।
कालिंदी गूँधि बबा की सौं मैं गजमोतिन की पहिरी अति आला;
आई कहाँ ते यहाँ पुखराज की, संग यई जमुनातट बाला।
न्हात उतारी हौं बेनीप्रबीन, हँसैं सुनि बैनन नैन रसाला;
जानति ना अँग की बदली, सबसों "बदली बदली" कहै माला।

सोभा पाई कुंज भौन, जहाँ-जहाँ कीन्हों गौन,
सरस सुगंध पौन पाई मधुपनि हैं;
बीथिन बिथोरे मुकताहल मराल पाए,
आलिन दुसाल साल पाए अनगनि हैं।
रैनि पाई चाँदनी फटक सी चटक रुख,
सुख पायो पीतम प्रबीन बेनी धनि है;
बैन पाई सारिका, पढ़न लागी कारिका,
सो आई अभिसारिका कि चारु चिंतामनि है

बेनी प्रवीण—

(विनोद)

ये महाशय लखनऊ-निवासी कान्यकुब्ज ब्राह्मण उपमन्यु गोत्री ऊँचे के वाजपेयी थे। लखनऊ के बादशाह गाज़ीउद्दीन हैदर के दीवान राजा दयाकृष्ण कायस्थ के पुत्र नवलकृष्ण उपनाम ललनजी इनके आश्रयदाता थे। जगद्विदित महाराज बालकृष्ण इन्हीं ललनजी के भाई थे। बेनीप्रवीणजी ने ललनजी की आज्ञा से 'नवरसतरंग'-नामक ग्रंथ संवत् १८७४ में बनाया। इसके प्रथम ये 'श्रृंगार-भूषण'-नामक एक ग्रंथ बना चुके थे, क्योंकि उसके छंद नवरसतरंग में उद्धृत किए गए हैं। बेनीप्रवीणजी का मान इनके यहाँ बहुत कुछ हुआ। इसके बाद ये महाशय महाराज नानारावजी के यहाँ बिठूर में गए और उनके नाम पर आपने "नानाराव-प्रकाश"-नामक ग्रंथ बनाया, जो कि आकार एवं विषय में बिलकुल कविप्रिया के समान है। इसमें कविप्रिया की रीति पर वर्णन किया गया है। यह ग्रंथ पंडित नंदकिशोरजी मिश्र (लेखराज) ने अपने हाथ से लिखा था, परंतु गदर में जाता रहा। यह भी बहुत उत्कृष्ट था। बेनीप्रवीणजी के कोई पुत्र नहीं था, और अंत में ये रोगग्रस्त भी हो गए थे, सो पीड़ित होकर ये महाशय सपत्नीक अबुर्द-गिरि पर चले गए और फिर नहीं लौटे। वहीं इनका शरीरपात

हुआ। यह सब हाल वाजपेयियों से जाना गया और संवत् एवं आश्रयदाता का हाल नवरस-तरंग में भी है।

इनका अभी कोई भी ग्रंथ मुद्रित नहीं हुआ है। हमारे पास केवल हस्तलिखित नवरसतरंग है। इसमें १६५ पृष्ठ और ५५६ छंद हैं। इसमें भावभेद एवं रस-भेद का वर्णन है, परंतु मतिराम एवं पद्माकर की भाँति इन्होंने भी नायिकाभेद से ग्रंथारंभ किया और अंत में सूक्ष्मतया भावभेद और रसभेद के शेष भेद भी लिख दिए। इन्होंने व्रजभाषा में कविता की और अनुप्रास का भी थोड़ा-थोड़ा आदर किया। इनकी भाषा में मिलित वर्ण बहुत कम आने पाए हैं। इन्होंने प्राकृतिक वर्णन कई जगह पर बहुत अच्छे किए हैं और अमीरी का सामान भी बहुत कुछ दिखाया है। इनको रूपक भी प्रिय थे और इनकी कविता में वे जहाँ-तहाँ पाए जाते हैं। यों तो इन्होंने कई विषयों पर विशाल काव्य किया है, परंतु गणिका, परकीया और अभिसारिका के बड़े ही विशद वर्णन इनकी रचना में हैं। आपकी कविता में उत्कृष्ट छंदों की मात्रा बहुत विशेष है। उसमें जहाँ देखिए, टकसाली छंद निकलेंगे। ऐसे बढ़िया छंदों की इतनी मात्रा बहुत कवियों के ग्रंथों में न मिलेगी। ये महाशय संस्कृत के भी अच्छे पंडित थे। इनकी कविता शृंगार-काव्य का शृंगार है, परंतु आश्चर्य है कि सेनापतिजी की भाँति अद्यापि इनके ग्रंथों को भी मुद्रण का सौभाग्य नहीं प्राप्त हुआ है। भाषानुरागियों को इनके ग्रंथ बहुत शीघ्र छपवाने चाहिए। इनकी गणना हम दास की श्रेणी में करते हैं। इनके कुछ छंद यहाँ लिखे जाते हैं—

कालिह ही गूँधि बबा की सौं मैं गजमोतिन की पहिरी अति आला ;
आई कहाँ ते इहाँ पुखराज की संग यई यमुनातट बाला।
न्हात उतारी हौं बेनीप्रबीन हँसै सुनि बैनन नैन रसाला ;
जानति ना अँग की बदली सबसों बदली बदली कहै माला।
भोर ही न्योति गई ती तुम्हैं वह गोकुलगाँव कि ग्वालिनि गोरी ;
आधिक राति लौं बेनीप्रबीन कहा ढिंग राखि करी बरजोरी।
आवै हँसी मोहिं देखत लालन भाल मैं दीन्ह महाउर घोरी ;
एते बड़े व्रजमंडल मैं न मिली कहुँ माँगहू रंचक रोरी।
जान्यो न मैं ललिता अलि ताहि जु सोवत माँहि गई करि हाँसी ;
लाए हिए नख केहरि के सम मेरी तऊ नहिं नींद बिनासी।
लै गई अंबर बेनीप्रबीन ओढ़ाय लटी दुपटी दुखरासी ;
तोरि तनी तन छोरि अभूषन भूलि गई गल देन को फाँसी।
घनसार पटीर मिलै मिलै नीर चहै तन लावै न लावै चहै ;
न बुझै बिरहागिनि झार झरीहू चहै घन लावै न लावै चहै।
हम टेरि सुनावती बेनीप्रबीन चहै मन लावै न लावै चहै ;
अब आवै बिदेस तें पीतम गेह चहै धन लावै न लावै चहै।
मालिन ह्वै हरवा गुहि देत चुरी पहिरावैं बने चुरिहेरी ;
नाइन ह्वै कै निवारत केस हमेस करैं बने जोगिनि फेरी।
बेनीप्रबीन बनाय बिरी बरईनि बने रहैं राधिका केरी ;
नंदकिसोर सदा बृषभानु की पौरि पै ठाढ़े बिकैं बने चेरी।
सोभा पाई कुंज-भौन जहाँ-जहाँ कीन्हों गौन,
सरस सुगंध पौन पाई मधुपनि है ;
बीथिन बिथोरे मुकताहल मराल पाए,
आलिन दुसाल साल पाए अनगनि है।
रैनि पाई चाँदनी फटक सी चटक रुख,
सुख पायो पीतम प्रबीन बेनी धनि है ;
बैन पाई सारिका पढ़न लागीं कारिका,
सु आई अभिसारिका कि चारु चिंतामनि है।

कृष्णविहारी मिश्र

अभिसारिका

नंगे पाँव चली जाती है लिए दूध की मटकी,
गुखरू के कितने ही काँटे पग में लगे, न अटकी।
सारी की लहरों में पड़कर झुक-झुक शीश नवाकर,
कुसमित घासों ने पुष्पों से भेजा उसे सजाकर।
लिपट गया लिपटा-खर छिपकर जितना उसे छुड़ाया,
बिखर गया बस टूट-टूटकर विलग न होना भाया।
पाँव बढ़ाए लपकी जाती भूली कोई धुन में,
खिंचती जाती है पतंग-सी बँधी प्रेम के गुन में।
दूध बेचने के मिस निकली गोरस रही छिपाए,
बोली नहीं तनिक थी मानो मुख में दही जमाए।
लोचन कितने ललच-ललचकर माल मोल लेने को,
चित कितने ही चढ़े चाव से लाल लोल लेने को।
चख कितने ही चखने को रस, लखते रहे डगरिया,
सबकी आँख बचाकर आकर ओझल हुई गुजरिया।
आँख चुराकर निकल गई झट देर न कहीं लगाई,
आँख लड़ी थी जिससे उससे मिलने को वह धाई।
पुरवा चल झकझोर रहा था केशराशि अलिदल को,
उड़ा रहा था गिर-शृंगों से आँचल के बादल को।

घिरे खड़े थे उमड़-घुमड़कर श्यामबरन के जलधर,
बिजली यह होती जाती थी पाँव न रुकते पल-भर।
बाम हाथ से मटकी थामे सरकाए घूँघट को,
उड़ते केशों को सँभालती कभी सरकते पट को।
बढ़ती जाती थी उमंग में चढ़ती रही जवानी,
कुछ फुहार पड़ धार बाँधकर लगा बरसने पानी।
गरज-गरजकर लगा बरसने अरज-गरज नहिं मानी,
पानी चढ़ जाने से तन पर आई निखर जवानी।
भीँग वस्त्र तन लिपट गए सब आभा प्यारी झलकी,
अंग-अंग सब हुआ प्रदर्शित रस की प्याली छलकी।
जल ने उन्नत पयोधरों पर खूब चढ़ाया पानी,
माँगा वर, घर करो हृदय में, दिग्-अंबर बरदानी।
एवमस्तु कह, वारिकणों को कर पानी का मोती,
हार बनाकर हृदय लगाया दुति अद्भुत है होती।
भींगे अंचल को निचोड़कर कभी गारती जल थी,
शराबोर थी फिर भी पानी बिना मीन बेकल थी।
वृक्ष नहीं छतनार कोई था कुंज झाड़ियों का था,
मग में रुकना छन-भर उसको कहीं नहीं था भाता।
हरित भूमि से निकल-निकलकर भुईंफोड़ का छाता,
बीर-बहूटी का सुंदर पट जल से रहा बचाता।
पर इस ललना बेचारी को मिली न कोई छाया,
इसी समय कुछ दूर दौड़कर आता कोइ दिखाया।
ठमक गई यह, वह बढ़ता ही बहुत निकट जब आया,
काले कंबल के घोघी को सिर से दूर हटाया।
पग रुक गए चार आँखें हों, पुलकित हो शरमाई,
कृष्णचरण छू बढ़ती जमुना की धारा हट आई।
विहँसा युवक तेज था मुख पर गौरववंत गठीला,
घुँघरारे काले बालों पर बँधा अँगौछा ढीला।
लोहे-सी जंघा के ऊपर कसी हुई थी धोती,
घनी शिखा करवट ले-लेकर गर्दन पर थी सोती।
तन पर कोई वस्त्र नहीं था गर्दन में था गंडा,
एक हाथ में काला कंबल, एक हाथ में डंडा।
सम्मुख देख हृदयधन अपना ललना अति सकुचाई,
भींगे हुए खुले अंगों की जब उसको सुध आई।
लज्जा से आँखें नीची कर छिपा वक्ष को कर से,
डूब गई हो पानी-पानी लोचन से जल बरसे।
इक छन निरख नवल छबि उसकी शोभा कनकलता-सी,
फूट-फूटकर आभा निकली पड़ती दीप शिखा-सी।

अपने में आ, लख यह लीला युवकहृद्य भर आया,
बड़े प्रेम से रस बरसाते प्रिय को हृदय लगाया।
पोंछ कमलमुख से जलकण को अपने सूखे पट से,
छिपा लिया उस शशिआनन को निज कंबल में झट से।
दोनों छिपे रहे कंबल में निज गलबहियाँ डाले,
ख़ूब बरसते रहे ज़ोर से बादल काले-काले।
बोला युवक—प्रिया! क्यों तुमने इतना कष्ट उठाया,
यह पानी-बूँदी भी किंचित् मन को रोक न पाया।
घनी घास, यह विकट राह, बन बीहड़, रात अँधेरी,
तेरा मुख चूमूँ, फिर चूमूँ लख हिम्मत यह तेरी।
फिर भी क्यों यह कष्ट उठाया ऐसे विकट समय में,
कौन खींचकर लाया तुझको बरबस ऐसे भय में?
द्रुत गति चलने से नारी का उठ-उठ हृदय धड़कता,
आलिंगन में पक्षी ऐसा रह-रह और फड़कता।
जैसे हो मंदार-पुष्प के होठों पर अरुणाई,
और हृदय के सिंहासन पर अरुणओप छवि छाई।
श्रम से कुछ-कुछ श्याम हुए-से अधर लाल हो आए,
मनमंदिर के सिंहासन पर मूरत एक बिठाए।
ललना बोली, मैं क्या जानूँ कौन खींच है लाया,
तेरे सुखद अंक ने प्यारे! सारा कष्ट भुलाया।
इसी देवता के दर्शन को नयन हमारे तरसे,
अपने गिरिधारी को पाया इंद्र ख़ूब अब बरसे।
गले लगाकर प्रियतम बोला—चंद्रमुखी सुकुमारी,
मेरे जीवन के वसंत की प्रिय कुसमित फुलवारी।
मेरे ऊपर दया दिखाकर इतना कष्ट उठाया,
प्रणयसूत्र में बँधकर मेरे सब कुछ और भुलाया।
पास हमारे नहीं और कुछ एक हृदय था प्यारा,
उसे समर्पण कर चरणों पर तन, मन, धन, सब वारा।
पर तूने भी सोच लिया है, पग है कहाँ बढ़ाया,
किस कंटक से हृदयपुष्प को अपने है उलझाया।
तू भूली है भारी भ्रम में भामिन! भोलीभाली,
तू किस पर अर्पण करती है निज यौवन की डाली।
हे सुमुखी तू सोच ज़रा तो मेरे सँग क्या सुख है,
खोकर निज उज्ज्वल भविष्य को तू सिर लेती दुख है।
बड़े बाप की तू है बेटी, है चौधरी घराना,
कनक-कटोरा दूध पिया है खेला मोतीदाना।
आभूषण-अमूल्य अलंकृत जगमग ज्योति तुम्हारी,
रँगी केसरिया रंग सुगंधित कामदार सुचि सारी।

लाल भरे अँगिया में तेरे मुँदरी रत्न जड़ी है,
आसमान से बातें करती बखरी बहुत बड़ी है।
ये सारे सुख मेरे सँग में प्रिया कहाँ पावेगी,
अब से भी मन को समझा ले, पीछे पछतावेगी।
मेरे तन पर एक लँगोटी, वह भी फटी पुरानी,
काली कमली करे निवारन शीत घाम औ पानी।
धन मेरा, बस, धेनु यही हैं, दिन-भर जिन्हें चराता,
पय-प्रसाद पा अमृत पीकर आनंद में छक जाता।
रहने को झोपड़ी एक है, खर से है जो छाई,
जो अकोल के वृत्तकुंड में पड़ती तनिक दिखाई।
कनकवृक्ष हैं खड़े पास में पास नहीं है सोना,
शस्यश्यामला हरित भूमि का कोमल सुखद बिछौना।
कहाँ अटारी वह सुखदायक, कहाँ फूँस का डेरा,
फिर भी सुख की आशा करना मेरे सँग में तेरा,
केवल है मृगतृष्णा प्यारी, है आकाश-कुसुम-सा,
अनुचित होगा, भूल करे यदि समझदार भी तुम-सा।
प्रेम विचारा तो अंधा है नहीं सोचता आगे,
समझे विना न जाना चहिए उसके पीछे भागे।
नहीं सोचती है भविष्य तू क्यों अपना सुकुमारी?
मैं तो तेरा भक्त रहूँगा तेरा सदा पुजारी।
अबला विकल हुई सुनकर यह, ली उसास घबड़ाई,
हृदयभार हलका करने को लोचन-धार बहाई।
बोली—ऐसी बात प्राणपति मुख से नहीं निकालो,
इस अबला का हाथ छोड़ अब बीच धार मत डालो।
मेरे तो आनंद तुम्हीं हो एक-मात्र अभिलाषा,
जीवन के सर्वस्व तुम्हीं हो संपति मेरी आशा।
मेरे तो शृंगार तुम्हीं हो अलंकार-आभूषण,
हृदयपद्म कब खिल सकता है, विना प्रेममय पूषण।
विना तुम्हारे महल-अटारी केवल बंदीख़ाना,
उसमें रहने से अच्छा है वन-वन अलख जगाना।
संग तुम्हारे पर्णकुटी यह होगी आनंदकारी,
कर निछावर इक चितवन पर विश्वसंपदा सारी।
अब बिक चुकी तुम्हारे हाथों हुई तुम्हारी दासी,
अब मत हाथ हमारा छोड़ो मेरे हिय के बासी।
जोगिन बनकर माँग रही हूँ अटल प्रेम की भिक्षा,
क्या लेने आए हो प्यारे मेरी आज परीक्षा।
तो आओ हम शुद्ध हृदय से शंकर की सौं खावें,
अमर सदा हो प्रेम हमारा शिव से यही मनावें।
पिंडी पर धर हाथ युवक ने शपथ प्रेम की खाई,
हृदय लगाकर चंद्रमुखी को प्रीति अतीत दिखाई।
छू शिवलिंग सुभग ललना ने कहा—नाथ हूँ तेरी,
सदा बनाए रखना हमको इन चरणों की चेरी।
आलिंगन में एक हो गए दोनों प्रेमपुजारी,
अंक पूर्ण कर दिया निशा ने घिर आई अँधियारी।

गुरुभक्तसिंह 'भक्त'

खेत की ओस

पातिन अनगन ओसकन, लसत हरियरे खेत;
श्रमकन मनहुँ किसान के, प्रकट दिखाई देत।
परखि किसानन की लगन, भूमि द्रवित दरसाति;
ओस रूप सो द्रवदसा, खेतन मैं सरसाति।
पुलकि पसीजी भूमि लखि, सेवा-त्याग किसान;
झलकति खेतन ओस यों, फहरत नेह-निसान।
सागर मैं मोती लसैं, गगन नखत सुख देत;
बसुधा खेतन ओसकन, निरखत मन हरि लेत।
हरे खेत मैं ओसकन, दुरत समीर-झकोर;
वैभव मनहुँ किसान को, हँसत अनंद-हिलोर।
खेत सस्य वैभव लखत, सुख आँसू सरसात;
सोई झलकत ओस ह्वै, भाव विमल दरसात।
लदे ओसकन-जाल सों, हरे-भरे ये खेत;
आबदार मोतिन सजे, धनिकन की छबि लेत।
नहवावति दुलराय कै, पौधन प्रकृति प्रभात;
उबरे जल के ओसकन, खेतन मैं दरसात।
रबि किरनैं खेतन धँसी, अँचयो ओस अघाय;
हरियारी मैं रमि रहीं, सोभा सुख सरसाय।
ओस नहीं ये स्वेद-कन, प्रकृति-नायिका-अंग;
झलके खेत-सहेट निसि, निसिपति-पति के संग।

कृष्णविहारी मिश्र

पुरस्कार!

परिवर्तन

(१)
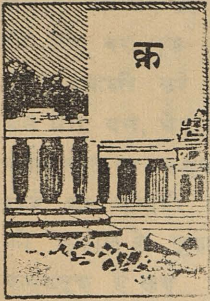
क़रीब पचास वर्ष का समय गुज़रा । कढ़ोरी बारह साल की सज़ा काटकर कारागार से छूटा था। उसके घर था न द्वार, न कोई नातेदार था, जिसको वह अपना कह सकता । १२ साल कारागार में बसते-बसते शकल भी कुछ बदल गई थी। कढ़ोरी उन अपराधियों में था जो जेलख़ाने को ससुराल कहते थे और जेल से रिहाई पर कह आते थे कि हमारा चूल्हा तोड़ना मत, हम फिर जल्द आवेंगे। छूटने के समय कढ़ोरी के पास २४॥-) थे जो जेल में मिहनत करके चीज़ों से बचे थे। एक बड़ी लाठी और एक फटे-पुराने कपड़ों की गठरी थी जो इनके साथ जेल में दाख़िल होते वक़्त पाई गई थीं। जेल से छूटने पर पहला प्रश्न सामने यह था कि कहाँ चलें, और क्या करें ? चलते-चलते एक गाँव में पहुँचे, जहाँ रात्रि हो गई । अँधेरा हो गया, सर्दी बढ़ गई, आगे न बढ़ सके। भूख-प्यास नींद भी सताने लगी। सुभागपुर में एक घर पर जाकर कुछ दाम देकर भोजन और शय्या का प्रबंध किया था कि गाँव के चौकीदार और मुखिया को ख़बर लगी। कढ़ोरी की अजीब शकल देखकर उन्होंने सच्चा अनुमान किया कि यह कोई क़ैदी है ! और उस घरवाले पर ज़ोर दिया कि ऐसे मनुष्य को अपने यहाँ न ठहरने दे, न-मालूम क्या संकट आ पड़े। उस बेचारे ने दाम वापस कर दिए और कढ़ोरी को भूखा-प्यासा ही घर से निकाल दिया । रात्रि बढ़ने से सर्दी और अँधेरे का प्रकोप अधिक हो गया। और भी दो-चार जगह वसीला लगाया, परंतु परिणाम वही हुआ। अब क़दम आगे उठाना कठिन हो गया। गाँव के कुत्ते पीछे भूँकने लगे। अति दुःखी होकर विचारा कि इस रिहाई से तो जेल का बंधन ही अच्छा था। ख़ैर, आगे बढ़े तो एक मंदिर में कुछ प्रकाश दिखाई दिया, विना पूँछ-बताव किए अंदर दाख़िल हुए, पुजारी ने देखकर आश्वासन दिया और कढ़ोरी की सब गाथा सुनी । पुजारी सच्चे ईश्वर-भक्त थे, कढ़ोरी पर दया विचार कर उसे भोजन-वस्त्रादि देने का वचन दिया । अपनी टहलनी से चाँदी के थाल में भोजन मँगवाया। कढ़ोरी १२ साल से जेल की रोटी पर गुज़र करते रहे थे। आज यह नए प्रकार के भोजन पाए। बड़ी देर से क्षुधा से पीड़ित थे, ख़ूब अच्छी तरह से तृप्त हुए। हुक़ा चिलम पिया। फिर मन में विचार किया कि पुजारी को या तो चौकीदार मुखिया ने और गाँववालों की तरह सचेत नहीं किया या इसने उनके कहने पर ध्यान नहीं दिया ; यदि यह है तो पुजारी की सज्जनता में कोई संदेह नहीं है।

वास्तव में एक अजनबी के गाँव में घूमने की चर्चा पुजारी के कान तक टहलनी द्वारा पहुँच चुकी थी, और कढ़ोरी के सामने थाल रखते समय टहलनी को यह भी भास हुआ था कि हो न हो, यह वही व्यक्ति है, जिसकी चर्चा गाँव में हो रही है। टहलनी ने पुजारी से कहा भी था—महाराज, यह क़ैदी है, दुरात्मा है, इसको वास देना उचित नहीं है । परंतु पुजारी का अंतःकरण यह नहीं स्वीकार करता था कि पापात्मा भूखा रहे और स्थान न पावे। पुजारी ने कहा—"यह ईश्वर का मंदिर है । दीनदुःखी सबके लिये आश्रय है, भोजन के पश्चात् पुजारी ने एक शय्या पर अच्छे साफ़ कपड़े बिछवा दिए, और कढ़ोरी को शयन करने के लिये आग्रह किया। कढ़ोरी आनंद और विस्मय से भर गया, लेटते-लेटते सो गया। आधी रात को कढ़ोरी की आँख खुली। वह उठकर चारपाई पर बैठ गया । धर्म और शैतान की लड़ाई उसके अंदर होने लगी। कमरे का दरवाज़ा खुला था, लैंप जल रहा था। शैतान ने कहा कि यह पड़ी हुई चीज़-वस्तु लेकर चल दो। धर्म कहता कि इस पुजारी ने तुमको आश्रय दिया है, भोजन दिया है ; इसके साथ

यह अपकार करना बड़ा अनुचित है। कभी धर्म की जय होती थी, तो कभी शैतान फ़तह पाता था। कुछ देर कढ़ोरी किंकर्तव्यविमूढ़ रहा, फिर एक-दो बार खाँसा, दो-एक जम्हाई ज़ोर से ली, देखा कि कोई जागता नहीं है। कुछ जहाँ तहाँ पड़ी हुई सामग्री एकत्रित की, एक पोटली में बाँधी, फिर अपना असबाब बाँधा, धीरे से लॅंप का प्रकाश छोड़कर चंद्रमा के प्रकाश में बाहर आ खड़ा हुआ, और चल पड़ा। धीरे-धीरे चलता जाता और अपने किए हुए पर कभी खेद करता, कभी अपने लाभ पर प्रसन्न हो जाता था। चौकीदार मुखिया ने यह समझकर कि पुजारी उनके कहने से भूखे अनाश्रित को कभी घर से न निकालेगा, पुजारी से कहना व्यर्थ जाना; परंतु उसकी खबरगीरी में व्यस्त रहे। रात-भर पहरा रक्खा। जब कढ़ोरी घर से निकला, उसके पीछे आदमी हो लिया और उसने कुछ आगे चल कर यह निश्चय रूप से लख लिया कि यह पुजारी का असबाब उड़ा लाया है। गाँव में खबर की और कढ़ोरी फिर चोरी के माल के सहित गिरफ़्तार हो गए। वही जेल! वही वार्डर! वही दंड! वही भोजन! फिर वही सब कढ़ोरी की आँखों के सामने घूमने लगा। अपनी ग़लती पर पछताने लगे। हा धिक्! एक दिन भी न बाहर रहने पाए, एक बार भी ईमान स्थिर न रख सके।

चौकीदार और गाँववाले लोग कढ़ोरी को पकड़कर माल शिनाख़्त कराने पुजारी के पास प्रातःकाल ले आए। पुजारी की टहलनी ने असबाब देखा और पहचान लिया। अंदर मकान के जाकर पुजारी को जगाया, कहा—"देखिये, मैं कल क्या कहती थी आप इसको वास न दीजिए, अब लीजिए वह आपका सब माल लेकर भागा और पकड़ा गया। वह तो चोर था ही आपने कैसे विश्वास कर लिया?" पुजारी समझ गए, बाहर आए, माल देखकर—"हाँ यह हमारा माल है" परंतु—"क्या" (पुजारी सोचते थे कि इतनी दया के पीछे भी यदि यह जेल गया तो क्या हुआ)—परंतु "यह माल हमने इनकी ग़रीबी देखकर दे दया है। यह चोर नहीं ह?" सत्य क्या है यह सब लोग जान गए, परंतु अब कढ़ोरी पर कोई अभियोग नहीं चल सकता। कढ़ोरी फिर छूट गए। टहलनी को पुजारी ने यह कहकर समझा दिया—"यह माल सब ईश्वर का है ईश्वर ग़रीबों का है। उस व्यक्ति के पास कुछ नहीं है उसको इस माल की हमारे मुक़ाबले अधिक ज़रूरत है हमको फिर मिल जायगा।" पुजारी के उपकार का कढ़ोरी पर कुछ कम प्रभाव नहीं था। प्रातः पुजारी के सामने आने में उसे बड़ी लज्जा प्राप्त थी। पुजारी की इस अधिकतर दया से कढ़ोरी अनुग्रह से दब गया और सोचने लगा—"संसार में एक मैं अधम हूँ, जिसने उपकार के बदले यह सलूक किया, और एक यह पुजारी है जिसने मुझ-से अपराधी को फिर भी तिरस्कृत नहीं किया, क्या मैं भी अपने पुराने पापों का प्रायश्चित नहीं कर सकता? क्या मैं भी पुजारी की तरह भलाई नहीं सीख सकता? हाँ, अवश्य सीख सकता हूँ—अब तक मेरा जीवन पाप में कटा है; चोरी और अपराध मेरे अंग हो गए हैं। अब इनको छोड़कर अच्छा जीवन स्वीकार करूँगा, अपने में ज़रूर सुधार करूँगा।" इस तरह सोचता हुआ आगे सड़क पर जिधर नाक उठ गई उधर बेतुका जा निकला। आगे एक झाड़ी में से एक ११-१२ वर्ष का भंगी का लड़का कुछ गीत गुनगुनता हुआ प्रसन्नवदन निकला और कढ़ोरी के बराबर धीरे-धीरे चलने लगा। लड़के के हाथ में एक अठन्नी थी जिससे वह गेंद की तरह उछाल-उछालकर खेलता जाता था। अठन्नी लड़के के हाथ से उछालने में फिसल पड़ी और सड़क पर लुढ़कने लगी। कढ़ोरी ने झपटकर उस पर अपना पैर जमा दिया, और अठन्नी दबा ली। लड़के की हँसी उड़ गई, कढ़ोरी से कहा, "पैर हटाओ हमारी अठन्नी है"। कुछ हुज्जत हुई। कढ़ोरी का सामुद्रिक आकार तथा बृहत् लाठी देखकर लड़का धमकी में आ गया। रोता, कोसता हुआ आगे चला गया। कढ़ोरी ने अठन्नी उठाकर अंटी में दबा ली। फिर भी अंतःकरण में एक

बार खेद हुआ और पुराना संकल्प याद आया।

(२)

ऊपर लिखी घटना के क़रीब १० वर्ष पीछे एक सेठ ने आकर फ़ीरोज़पुर में एक काँच का काम आरंभ किया। थोड़े ही काल में उसे ऐसी सफलता हुई कि उसने गाँव में बहुत-सी ऊसर ज़मीन लेकर एक फ़ैक्टरी बनाई, और दो हिस्सों में आबादी कर दी। एक मनुष्यों का भाग था, एक स्त्रियों का। उनके रहने के वास्ते घर बनवा दिए। बाज़ार भी लग गया। कोई ऐसा व्यक्ति दिखाई न पड़ता था, जिसके पास कुछ पूँजी न हो, सब ख़ुश थे और मेल और आनंद में दिन उद्योग से व्यतीत करते थे, दुःखी, दरिद्री, और निरुद्यमी कोई न था। सेठ उत्तमचंद का समय दीनदुःखी की सहायता करने में व्यतीत होता था। उनके पास धन बहुत था। परंतु न बालबच्चा था, न स्त्री थी, न और कोई संबंधी। धन उनका दरिद्रों के वास्ते व्यय होता था। हाँ, अवश्य २००) का मनीआर्डर एक पुजारी के पास सुभागपुर को मासिक नियम से भेजा जाता था। कभी किसी ने सेठ उत्तमचंद से पूछा कि यह कौन है तो उसने उत्तर दिया, "मैं पहले इनके घर में नौकर था।" सेठ उत्तमचंद के बढ़िया जोड़ी, मोटर आदि थे जो उनकी प्रजा अर्थात् कारख़ाने के कामवालों के लिये सदैव तैयार रहते थे। वह स्वयं उन कामवालों के साथ बैठते-उठते थे। उनको दावतें खिलाते थे। उनको अपना ही मानते थे। लोग उनकी आदतें और स्वभाव को विस्मय से देखते थे। किसी ने कहा, "हम आपका ख़ास कमरा देखना चाहते हैं" तो वह कमरे में ले गए। वह सादा सामान था, जो इनके धन के देखते हुए तुच्छ प्रतीत होता था। और सबसे ऊपर एक पुराना चाँदी का थाल रक्खा हुआ था। इसका अर्थ लोगों की समझ में न आया। सेठ उत्तमचंद को कई बार सरकार से उपाधि देने का प्रस्ताव हुआ, सेठजी बराबर मना करते रहे। एक बार आपको आनरेरी मजिस्ट्रेट बनाने का प्रस्ताव हुआ, फिर भी आप मना करने लगे। परंतु लोगों ने कहा—"अच्छा मजिस्ट्रेट अच्छा है और बुरा बुरा; मजिस्ट्रेटी स्वयं न अच्छी है, न बुरी आप अपने बसाए हुए नगर में जो न्याय करेंगे, वह दूसरा न कर सकेगा"। इस पर निरुत्तर होकर आपने आनरेरी मजिस्ट्रेटी स्वीकार कर ली। इस अवसर पर आपने १०००) मुद्रा सुभागपुर में एक मंदिर के जीर्णोद्धार के लिये भेज दिए। सेठजी को दलित जातियों से विशेष सहानुभूति थी। उनको बहुत दान दिया करते थे, विशेषतः भंगियों को। जो भंगी गाँव में झाड़ू लगाता था उसके यहाँ कुछ मेहमान आए थे। उनमें एक २०-२५ वर्ष का युवक था। उसको देखकर सेठजी ने नाम-गाँव पूछा और बहुत-सा धन-वस्त्र-आभूषण दिए तथा घर बनवाकर उसका मासिक वेतन नियत कर दिया।

पाठक सेठ उत्तमचंद और कढ़ोरी को आसानी से पहचान लेंगे।

खड्गजीत मिश्र

प्रभु !

लेते कैसे भारत में तुम अवतार धार ?—
करते नहीं जो दुराचार घोर घातकी !
'रसिकेंद्र' दीनबंधु कौन तुम्हें कहता, जो—
करते न चिंता तुम दीन-अश्रु-पात की।
ख्यात कैसे होता 'गिरिधारी' नाम विश्व में, जो—
सुरपति अति करता न बरसात की ?
पतितों को पावन बनानेवाले प्रभु; तुम—
कैसे कहलाते, जो प्रकटते न पातकी ?

'रसिकेंद्र'

अध्ययन

[चित्रकार—श्रीनारायणप्रसाद वर्मा]

N. K. Press, Lucknow.

विना उस्ताद के वैद्य-विद्या सिखानेवाला ग्रन्थ

चिकित्साचन्द्रोदय

सात भाग

लेखक—बाबू हरिदास वैद्य

संक्षिप्त सूची और मूल्य।

पहला भाग—इस भाग में वैद्यक-विद्या सीखनेवाले के आरंभ में जानने योग्य पारिभाषाएँ, रोग पहचानने के तरीक़े, नाड़ी देखने की आसान विधियाँ और अरिष्ट ज्ञान आदि हज़ारों बातें लिखी हैं। पृष्ठ-संख्या ३४०। मूल्य अजिल्द का ३) और सजिल्द का ३॥)

दूसरा भाग—इस भाग में ज्वर-चिकित्सा बड़े ही विस्तार से लिखी है। हिंदी क्या भारत की और भी किसी भाषा में ज्वर-चिकित्सा पर इससे अच्छा ग्रंथ नहीं है। न्यूमोनिया टाइफ़ाइड प्रभृति अँगरेज़ी ज्वरों की भी चिकित्सा लिखी है। इस भाग में ६०० सफ़े हैं। मूल्य अजिल्द का ५), सजिल्द का ५॥)

तीसरा भाग—इस भाग में अतिसार, संग्रहणी, बवासीर, पीलिया, कृमिरोग आदि का इलाज बहुत ही उत्तमता से लिखा है। सभी रोगों पर, दूसरे भाग की तरह, इसमें भी परीक्षित अमीरी और ग़रीबी नुसख़े लिखे हैं। इस भाग में ४६६ सफ़े हैं। मूल्य अजिल्द का ४।), सजिल्द का ५) है।

चौथा भाग—इस भाग में प्रमेह, धातुरोग और कमज़ोरी के निदान, लक्षण और चिकित्सा जिस ख़ूबी से लिखी है, उसकी तारीफ़ कर नहीं सकते। यह भाग कामशास्त्र का भी बाबा है। इसमें उपर्युक्त रोगों की चिकित्सा के सिवा नाना प्रकार के अपूर्व योग लिखे हैं। शेष में बंग, अभ्रक, सोना, चाँदी, मोती आदि की भस्में करने की निहायत आसान और आज़मूदा तरकीबें लिखी हैं। यह दूसरा संस्करण है। इसमें ६३२ सफ़े हैं। मूल्य अजिल्द का ४।), सजिल्द का ५) है।

पाँचवा भाग—इस भाग में साँप, बिच्छू, पागल कुत्ता आदि के काटने का इलाज, स्त्रियों के प्रदर आदि रोगों की चिकित्सा तथा राजयक्ष्मा का इलाज बड़ी ख़ूबी से लिखा है। इस भाग की हर घर में ज़रूरत है। पृष्ठ-संख्या ६३०। मूल्य अजिल्द का ५), सजिल्द का ५॥) है।

छठा भाग—इस भाग में खाँसी, श्वास, ज़ुकाम, रक्तपित्त, अम्लपित्त आदि रोगों की चिकित्सा विस्तार से लिखी है। पृष्ठ-संख्या ४१६। मूल्य अजिल्द का ३॥), सजिल्द का ४।) है।

सातवाँ भाग—इस भाग में अपस्मार, उन्माद, वातरोग, हाथीपाँव, कोढ़ प्रभृति ४० रोगों की चिकित्सा चालीस हाफ़टोन चित्र देकर नए ही ढंग से लिखा है। यह भाग सबसे बड़ा है। पृष्ठ-संख्या १२११। मूल्य अजिल्द का १०॥), सजिल्द का ११) है।

उत्तमता के प्रमाण।

पहले भाग के तीन, दूसरे के तीन और चौथे के दो संस्करण हो जाना ही उत्तमता का काफ़ी सुबूत है। विश्वास न हो तो आप बतौर नमूने के केवल चौथा भाग मँगा देखें। अगर यह ग्रंथ हमारी लिखी तारीफ़ से सैकड़ों गुना अधिक होगा, तो आपको शेष छः भाग मँगाने ही होंगे।

अँगरेज़ी-हिंदी-शिक्षा ५ भाग

पहले भाग की पचास हज़ार और अन्य भागों की प्रायः बीस हज़ार प्रतियाँ निकल जाना ही इसकी उम्दगी का सच्चा सुबूत है। इस आदि अँगरेज़ी-शिक्षक से अच्छा इँगलिशटीचर और कहीं नहीं छपा। मूल्य पहले भाग का १) रु०। शेष चार भागों का दो-दो रुपया। कुल नौ रुपए। पाँचों भाग एक साथ मँगाने से सात रुपए लगेंगे। इस पर भी डाकमहसूल माफ़। शीघ्रता कीजिए।

विशेष सूचना—सातों भाग सजिल्द का मूल्य ४०॥) और अजिल्द का ३२॥) है। एक साथ लेने से क्रमशः ६।-) और ५॥) कमीशन मिलेगा। १०) पेशगी भेजें और क़रीबी रेलवे-स्टेशन का नाम लिखें।

पता—हरिदास ऐंड कंपनी, पो० बड़ा बाज़ार, कलकत्ता

अम्मा की चिता

धू-धूकर जल रही होलियाँ कितनी देखीं ;
गगन-चूमती सती-टोलियाँ कितनी देखीं ।
ताजों पर सुलगती गोलियाँ कितनी देखीं ;
समय-चक्र की रंगरेलियाँ कितनी देखीं ।
देखी थीं—कितनी देख लीं,
अग्निदेव की जल्पना ;
कर लीं—कितनी ही कर चुके,
उग्र रूप की कल्पना ।
परंपराएँ, किंतु, आज भी बनी हुई हैं ;
पशुता की पाखंड-वृत्तियाँ तनी हुई हैं ।
वैभव की वासना छत्र में सनी हुई हैं ;
कुटिल काल की तीव्र कटारें हनी हुई हैं ।
पर अम्मा की उस चिता में,
जली जा रही शांति थी ;
शैशव के वैभव की अरे,
मिटी जा रही कांति थी ।
सिरहाने पावनी गोमती की धारा थी ;
श्रीचरणों पर बरस रही दृग-जल-धारा थी ।
ऊपर नभ में घनीभूत वारिद-माला थी ;
छिपी चंद्रिका खड़ी लिए अमृत-प्याला थी ।
कोई भी तो न बुझा सके,
व्योम-वेधती आग को ;
कोई भी, हा, न जगा सके,
शिशु के बुझते भाग को !
उकठ काठ का ढेर, जिसे अम्मा ने तापा ;
वही—जिसे निर्जीव समझ था फूँका-तापा ।
प्रतिहिंसा-परिपूर्ण हृदय से रचकर काँपा ;
ठुकराए विकराल सर्प-सा खोकर आपा ।

सूखे हाड़ों की आड़ में,
मानों बदला ले रहा ;
पद-दलितों के अभिमान को,
मानों जीवन दे रहा ।
उसी ध्वंसकर ज्वाल-जाल में नभ हिलता था ;
वायु प्रकंपित, दिशा शून्य, भूतल जलता था ।
मातृ-वेदना करुण रूप धर सिसक रही थी ;
मर्माहत हो धरा तलातल खिसक रही थी ।
आँसू बन बह-बह उसी पर,
स्नेह हो रहा राख था ;
भादों की झड़ियों में अरे,
झुलस रहा वैशाख था ।
कल तक जिसके वक्षःस्थल में उधम मचाया ;
मचल-मचलकर ख़ूब खिझाकर फिर इठलाया ।
गा किलकारी गीत वैरियों को दहलाया ;
याद नहीं, क्या खेल-खेलकर क्या था खाया ।
एक-एक कर वे सभी, आ
खड़े सामने नाचते ;
अंकित मेरे इस हृदय में,
मा का गौरव बाँचते ।
कुटिया में दे जन्म महल का ठाठ दिखाया ;
चिथड़ों ही में पाट-पटंबर साज सजाया ।
सोया था मैं—मुझे जगाकर ज्ञान सिखाया ;
अंधकूप से उठा, विश्व क्या है—बतलाया ।
मुझ निराधार के शीश पर,
रक्खा अपना हाथ था ;
मानों मैं ही सम्राट् था,
छत्र धरा था, ताज था ।

बटन देखकर कसा, सिहरकर थी जग जाती ;
कह उठती थी—अरे, दबी जाती है छाती।
उसी वक्ष पर धरा आज यह विश्व-भार है ;
इतना बोझिल है कि नहीं उसका सँभार है।
है चूर-चूर करती मुझे,
उसकी भीषण धारणा ;
अब कौन सोच सकता यहाँ,
उसकी तीव्र प्रतारणा !
तू होती, उठता न कभी विपदा का बादल ;
तेरी 'फू' में उड़ जाता सारा दल का दल।
अग्नि-शिखा में बाल-भाव क्यों जल-जल रोता ;
क्यों होता मातृत्व-अंत क्यों कंपन होता।
तेरी तो मृदु मुसकान में,
बह जाती थी आपदा ;
तव स्निग्ध ज्योति में थी भरी,
वसुधा की सब संपदा।
तेरी चुटकी बजी देख पीड़ा थी हारी ;
ताली में थी बसी विधाता की करतारी।
गोदी में सर्वदा इंद्र-सिंहासन भाया ;
चुंबन में क्या रहा—अभी तक जान न पाया।
वह क्या था ?—स्रोत पियूष वह,
या क्या था ?—किस ओर है ?
बतला दे अंब ! बुझा चलूँ,
चिताज्वाल घनघोर है।

मातादीन शुक्ल

राजनीति के प्रवाह में इस्लाम

[उत्तरार्द्ध]

५. अफ़ग़ानिस्थान

फ़ग़ानिस्थान की सारी महिमा उसकी भौगोलिक स्थिति के कारण है। कोई वैदेशिक शक्ति यदि पश्चिमोत्तर मार्ग से भारतवर्ष के ऊपर आक्रमण करना चाहे, तो अफ़ग़ानिस्थान के हाथ में उसका यह उद्देश्य सफल होने या न होने देने की क़रारी सामग्री है। पिछले अवसरों पर अफ़ग़ानों के हिंदोस्तान पर हमलावर होने तथा कुछ प्रांतों पर अपना आतंक स्थापित करने की बात इतिहास-प्रसिद्ध है। उसके बाद ही महाराज रणजीतसिंह के नेतृत्व में सिखों के प्रत्याक्रमण करने और इस प्रकार अधिकृत प्रांतों से उनके प्रधानत्व के मूलोच्छेदन करने का प्रतिफल कौन नहीं जानता। जितने युद्ध अँगरेज़ों और अफ़ग़ानों के बीच में हुए, वे सब अफ़ग़ानिस्थान में ब्रिटिशों का शाका गाड़ने में असमर्थ सिद्ध हुए हैं। रूस का समय-समय पर प्राबल्य और उत्कर्ष अँगरेज़ों के हृदय में सदासर्वदा अफ़ग़ानों के प्रति उत्सुकतापूर्ण चिंताभाव उत्पन्न करता रहा है।

पिछले दस वर्षों से अफ़ग़ानिस्थान राजनीतिक उथल-पुथल का एक विशेष केंद्र रहा है। सन् १९१८ में अमीर हबीबुल्लाख़ाँ की भेदभरी हत्या के बाद सन् १९१९ में अमीर अमानुल्लाख़ाँ को शासनाधिकार मिले थे—उस समय वह केवल २६ वर्ष के थे और उसी समय उन्हें ब्रिटिश फ़ौजों से मोर्चा लेने की नौबत आ गई थी। किंतु उन्होंने युद्ध के स्थान पर कूटनीति से काम लेना ही श्रेयस्कर समझा। दो वर्षों के भीतर ही सर हेनरी डाब के मिशन के रिपोर्ट के आधार पर अफ़ग़ानिस्थान और भारत-सरकार के बीच संधि हो गई। उसकी स्वाधीनता को अँगरेज़ों ने स्वीकार कर लिया।

फलतः उसके राजदूत संसार के सभी स्वतंत्र देशों में प्रतिष्ठित रहे हैं।

रूस का अफ़ग़ानिस्थान में नैतिक प्रभाव काम करने का सबसे महान् एक यह कारण है कि उसी ने सबसे प्रथम अफ़ग़ानिस्थान की स्वतंत्रता को स्वीकार किया था। स्वातंत्र्य-पद के उचित मूल्य आँकनेवाले का कौन समादर नहीं करता। सन् १६२२ से ही अमीर की कूटनीति, संसार की शक्तिसंपन्न सरकारों के साथ देश की स्वाधीनता मनवाने एवं अफ़ग़ानिस्थान को व्यापारिक दृष्टि से अधिक उपयोगी तथा सामयिक बनाने में काम कर रही थी। १६२१ में वैदेशिक मंत्री सरदार वलीख़ाँ के नेतृत्व में जो मिशन इन शक्तियों के साथ स्वतंत्र संधि करने के उद्देश्य से भेजा गया था, उसके प्रतिफल में फ्रांस, टर्की, इटली, जर्मनी और पर्शिया के दूत-के-दूत वहाँ रहने लगे। और, इसका परिणाम यह हुआ कि अफ़ग़ानिस्थान राजकीय और सामरिक, सभी दृष्टि से अधिकाधिक संगठित और सुसज्जित हो गया। शाह अमानुल्ला का संसार-भ्रमण इसी उद्देश्य को लेकर था कि जो विचार या प्रबंध संसार में सर्वोत्कृष्ट हो, उसका अफ़ग़ानिस्थान में प्रचार किया जाय। इस अकस्मात् विश्वपर्यटन की बात ने योरपीय राजनीतिज्ञों को स्तंभित कर दिया। अफ़ग़ानिस्थान-जैसे पिछड़े भूभाग से ३६ वर्ष के युवक की, नवजीवन-प्रदान के उद्देश्य से २,४५,००० वर्गमील में, सुविस्तृत सुदूर यात्रा का प्रसंग उनके दिलों में क्यों न खलबली पैदा करता। हिंदुस्थान की सर-ज़मीन पर क़दम रखते ही शाह अमानुल्लाख़ाँ का शाही स्वागत हुआ—दूसरे-दूसरे देशों ने अपने रत्नभांडार इस शाही अतिथि के आतिथ्य-सत्कार में लुटा दिए। बड़े-बड़े राजप्रासादों के द्वार उनकी प्रतीक्षा उन्मुक्त दृष्टि से कर रहे थे—और बड़े-बड़े राजनीतिज्ञ उन्हें अपने अपार वैभव और चमत्कार से चकाचौंध करने का उपाय सोच रहे थे। शाही पल्टनें ही क्या—स्वयं सम्राट् तक—उनके स्वागत-प्रदर्शन सम्मान से—उनके देश की पूर्वोक्त भौगोलिक स्थिति के कारण—उनके भृकुटिकोण को अपनाना चाहते थे। यात्रा से एक विजयी वीर की भाँति लौटने के बाद अफ़ग़ानिस्थान में किए गए पाश्चात्य ढंग के सुधारों की संसार-भर में डौंडी पिट गई। पर उसकी तह में अफ़ग़ानिस्थान में भेद-भाव डालनेवाले बंदरबाँट-नीतिपरायण कूटनीतिज्ञों की चौसर भी बराबर उनको इस सत्कार्य से पराभूत करने के लिये बिछाई जाती रहीं। जे० लारेंस और अफ़ग़ानिस्थान के पहाड़ी फ़िरक़ों में मंत्रजाल फैलानेवाले—प्रचुर रण-सामग्री और अतुल धन बाँटनेवाले ग़ैबी पुरुष का भेद यद्यपि आज भी अप्रकट है, तथापि ऐतिहासिकों का अनुमान है कि अफ़ग़ानिस्थान की वर्तमान क्रांति में उसकी उन्नति को न सह सकनेवालों का गहरा हाथ है। जो हो, जितने समाचार अफ़ग़ानिस्थान की भीतरी क्रांति के संबंध में इस देश में आ सके हैं, उनसे तो यही पता चलता है कि वहाँ की व्यापक अशांति का जन्म शाह अमानुल्लाख़ाँ द्वारा किए हुए सामाजिक सुधारों को लेकर हुआ। अफ़ग़ानिस्थान से भागकर आए हुए एक अँगरेज़ प्रोफ़ेसर का इस संबंध में यह कहना है कि अशांति का कारण यह था कि शाह अमानुल्लाख़ाँ ने अदालतों में फैले हुए घूस के बाज़ार को एकदम रोक दिया था और इसे न सह सकने के कारण ही उसके राज्य-कर्मचारी इस उपद्रव और विद्रोह के भीतर-ही-भीतर संगठनकर्ता बने। परिणाम यह हुआ कि जो हेरफेर उन्होंने टैक्स, शासन, न्याय, फ़ौज, शिक्षा और सिविल सर्विस आदि विभागों में किए थे और जो योरप के किसी भी बड़े-से-बड़े देश के प्रबंध से होड़ ले सकते थे—वह उन्हीं के लिये काल बन गए।

धर्मांध मुल्लागण इस गुप्त उद्देश्य-साधन के निशाना बनाए गए। उनसे शाह को क़ाफ़िर होने का फ़तवा निकलवाया गया। शोर-बाज़ार के मौलवी स्वयं शिखंडी बने। अशांति की लहर उमड़ पड़ी। राज्य-प्रबंध में आश्रय पाए हुए, भिश्तीनंदन बच्च-ए-सक़ा ने विद्रोह का झंडा उठाया। काबुल के चारों ओर मारकाट की—लूटमार की—धर्मांधता की दोहाई की इतनी विकट बहिया आई कि सेना विद्रोह में शामिल होती दिखाई पड़ी। फलतः अमानुल्लाख़ाँ काबुल से क़ंधार चले गए और वहीं उन्होंने अपनी राजधानी घोषित की। उनका अनुमान था कि अनुकूल अवसर पाने पर वह हेरात और पड़ोसी फ़िरक़ों की, सैनिकप्रकृति-जन्य निवासियों की सहायता से फिर काबुल पर अपनी

विजयपताका फहरा सकेंगे; किंतु ग़ैबी पंजे की कृपा से भिश्तीनंदन इतना आधुनिक अस्त्रशस्त्र से सुसज्जित हो चुका था कि शाह अमानुल्लाख़ाँ की दाल उसके सामने न गल सकी। अपने स्वामिभक्त सैनिकों के देशद्रोहिता करने का उन्हें स्वप्न में भी ख़याल न था। काबुल का भविष्य उन्हें महान् अंधकारपूर्ण दिखाई दिया। वह सिहर उठे और निराशावाद की मर्मांतक व्यथा से सहम गए। विजयगर्व का स्वप्न देखनेवाला कर्मवीर अर्जुन की भाँति कर्तव्याकर्तव्य के मोहजाल में फँसकर अवाक्-सा हो गया—और कुछ ही क्षणों में, अपने देश में अबोध नर-नारियों की अगणित हत्या बचाने के उद्देश्य से, उसे अपनी मातृभूमि से बहुत दिनों के लिये बिदाई लेनी पड़ी। बिदाई भी कैसी करुणापूर्ण—अगणित धन-जन और प्रचुर संपत्ति के स्वामी को केवल एक कपड़ा पहनकर, एक बिस्तर लेकर—अपनी प्राणोपम प्यारी बेगम सुरैया और अबोध बालकों के साथ, गोपनीय दशा में, रातोंरात, चमन के मार्ग से, सीमाप्रांत पर आना पड़ा। जिन शाह अमानुल्लाख़ाँ का विश्वभ्रमण के समय स्थान-स्थान पर अपूर्व स्वागत-सत्कार हुआ था, वही एक मैली गंदी स्पेशल ट्रेन से लेंडीकोटल से बंबई शाही क़ैदी की भाँति भेज दिए गए। स्थान-स्थान पर भारतीय पराधीन जनता उनके लिये शोकाश्रु बहा रही थी, पर अमानुल्लाख़ाँ के मुख पर विजयगर्व अंकित था। वह अफ़ग़ानिस्थान का शांति-कामना से मन-ही-मन फूल रहे थे।

इस पराभव के साथ एक देशभक्त का विभव भी अदृष्ट की इच्छा से आगे बढ़ रहा था और वह था जनरल नादिरख़ाँ का। जितने गद्दीधर शाह अमानुल्लाख़ाँ की इच्छा से अमीर बने, वे सब-के-सब कुछ ही दिन के मेहमान रहे। उनके छोटे भाई हयातुल्लाख़ाँ और शाही फ़ौजदार अलीअहमदख़ाँ बंदी बनाए गए। जनरल का परिवार भी जेल का आश्रित बना। पर उनकी आत्मा इससे ज़रा भी न डिगी। उन्होंने फिर से सेना का संगठन किया और नए अमीर बनाने के लिये जिरगे का आवाहन किया। बच्च-ए-सक़ा की विजयश्री अस्त हो रही थी। उसके अत्याचारों का प्याला लबालब भर आया था। शाही ख़ज़ाना ख़ाली हो चुका है, और मुल्लागण भी शहद-प्रेमी मक्खियों की भाँति उसकी क्लांत दशा से ऊब उठे थे। जिन महाशक्तियों का बच्च-ए-सक़ा के क्षणिक उत्थान में गुप्त हाथ था, उन्होंने भी इस बालू की दीवार को अधिक टिकाऊ बनाने का कोई निश्चित विधान न पाया और उसके परिणामस्वरूप अफ़ग़ानिस्थान से बच्च-ए-सक़ा के शासन का एकदम अंत हो गया। जनरल नादिरख़ाँ उसके अमीर चुने गए। बेचारे अमानुल्लाख़ाँ रोम के मेहमान ही रहे। उनका भाग्य अब उदय होगा या नहीं, यह तो भविष्य के गर्भ में है। पर यह प्रायः निश्चय है कि जो मुठभेड़ अफ़ग़ानिस्थान को उठानी पड़ी है, उससे सँभलने के लिये उसे कुछ समय लगेगा, और जनरल नादिरख़ाँ के कुशल शासन में अपने देश के भविष्य के लिये थोड़े समय बाद ही उसे किसी ख़ास पहलू में टिकने का अवसर मिलेगा।

६. इजिप्ट (मिश्र)

पिछले पूरे सौ वर्षों से ज्यों-ज्यों हमारे महाप्रभुओं के हृदयों में भारतवर्ष को पराधीन रखने की लिप्सा बलवती होती गई, त्यों-त्यों उनके भीतर इजिप्ट को क़ाबू में बनाए रखने तथा स्वेज़-नहर को अपने वश में रखने का भाव भी प्रबल होता गया। सन् १८७८ से ही योरपीय पूँजीपतियों ने एक अंतरराष्ट्रीय कमीशन का आयोजन करके ऋणग्रस्त मिश्रदेश को अपने फंदे में फाँसने का प्रबंध किया था। उसी के अनुसार उसके निवासियों, कलाहीन और छोटे-छोटे व्यापारियों तथा ज़मींदारों पर बेतहाशा टैक्स लगाया गया। यह टैक्स उस ऋण के ब्याज में शामिल किया जाता था, और असह्य था। १८८२ में, अरबीपाशा के नेतृत्व में, लोगों ने इस स्वेच्छाचारी कार्य-पद्धति से विद्रोह प्रकट किया। विद्रोह बात-की-बात में सारे देश में फैल गया। अँगरेज़ साम्राज्यवादी तो इसके लिये पहले से ही प्रतीक्षक थे। बस, उन्होंने अपनी सेना वहाँ ला खड़ी की, और एलेग्ज़ेंड्रिया आदि नगरों को तबाह कर और अपनी सेना का अड्डा क़रार देकर एक नया प्यूनिटिव टैक्स उनके गले मढ़ दिया। सूडान में भी एक पागल मुल्ला ने जो विद्रोह खड़ा किया था, उसे दबाने के नाम पर जिस कौशल से जनरल गार्डन की अध्यक्षता में अँगरेज़ों ने अपने पैर अड़ाए, उसी का

यह फल था कि १८९८ में सर हर्बर्ट (बाद के के लार्ड किचनर) ने सूडान के सूबे में शांति-स्थापन के नाते उस प्रांत में ब्रिटिश-फ़ौजी लाट का प्रवेश, और प्रदेश पर मिश्रियों और अँगरेज़ों का सम्मिलित शासन स्थापित कर दिया। ईश्वरभक्त, धर्म-भक्त मेहदी के अनुयायियों के दिलों में त्रास फैलाने के लिये समाधि से मेहदी के अस्थिपंजर निकाले गए, और नील-नदी की लहरों में सदैव के लिये उन्हें विश्राम दे दिया गया।

बारंबार ब्रिटेन के राजनीतिज्ञ यह विश्वास दिलाते थे कि उनकी इच्छा मिश्र को अपने अधीन रखने की नहीं है। सन् १८९२ में लार्ड डफ़रिन ने स्पष्ट कहा था कि "हमारा व्यवहार मिश्रवासियों के साथ कुछ इस प्रकार का होना चाहिए, जिससे वे हमें अपना साथी मानें; हमें उनको चिढ़ाने की ज़रूरत नहीं है।" १९१४ में युद्ध के अवसर पर मिश्रदेश, नाममात्र के लिये टर्की के अधीन होने पर, वास्तव में अँगरेज़ों का रक्षित प्रदेश बन रहा था। उसी अवसर पर वहाँ फ़ौजी क़ानून का प्रयोग हुआ। उसके ख़लीफ़ा अधि-कारच्युत कर दिए गए—उनके स्थान पर एक छोकड़ा प्रिंस फ़ुएड मिश्र का शासक बनाया गया। वहाँ की धारासभा तोड़ दी गई। मिश्र-निवासियों को यह विश्वास दिलाया गया था कि "युद्ध का अंत होते ही इन घातक क़ानूनों का अंत कर दिया जायगा और अँगरेज़ मिश्रदेश को ख़ाली करके वहाँ स्वाधीनता की घोषणा कर देंगे।" किंतु युद्ध की काली घटाएँ निकल जाने के बाद ब्रिटिशों ने मिश्रदेश पर अपना तेज़ दाँत गड़ाया, और उनकी सैनिक प्रभुता अधिकाधिक देदीप्यमान् होने लगी।

इस असहनीय अवस्था का एक ही प्रत्युत्तर हो सकता था। उन्होंने वीरश्रेष्ठ जगलुलपाशा के नेतृत्व में अपनी राष्ट्रीय स्वाधीनता की घोषणा कर दी। एक विराट् आंदोलन की पुष्टि में जगलुलपाशा को अधिकार दिया गया कि वह संधि-परिषद् के समक्ष इस स्वाधीनता के प्रश्न को पेश करें, किंतु उन्हें पासपोर्ट देने से ही इनकार कर दिया गया। वह माल्टा में निर्वासित कर दिए गए। स अवसर पर मिश्रवासियों का अपने हृदय-सम्राट् के बिछोह में घनघोर आंदोलन सदासर्वदा स्मरण रखने योग्य है। उस आंदोलन से ही सुप्त ब्रिटिशों की आँखें खुलीं। भौचक्के-से होकर, उलटे हाथों, उन्हें मित्रगण-सहित जगलुलपाशा को लौटाना ही पड़ा। फ़ौजी क़ानून में भी तराश-ख़राश हुई और अख़बारों का सेंसर-भूत हटा। जगलुल पेरिस दौड़े, पर बोटियों की ताक में भूखे भेड़िए उनकी कैसे सुनते।

मिश्र का राष्ट्रीय आंदोलन उत्तरोत्तर बढ़ता ही गया। १९१९ में लार्ड मिलनर इसलिये भेजे गए कि वह दंगों के मुख्य कारणों की जाँच करें, और मिश्रदेश के लिये एक शासनविधान का मसविदा तैयार करें। किंतु उसे चारों ओर असफलता ही मिली। जगलुल-पार्टी ने उसका पूरा बहिष्कार किया और बहुत सोच-विचार तथा पलटा-पलटी के बाद एक विधान इस आशय का स्वीकार हुआ कि पार्लियामेंट के प्रति ज़िम्मेदार मिनि-स्टर मिश्रदेश का राज्यकार्य सँभाले। स्वेज़-नहर पर किसका आधिपत्य रहे तथा सूडान का भविष्य एवं योर-पियन कर्मचारियों की मानरक्षा का प्रश्न आगे के समझौते के लिये छोड़ दिए गए। खुले तौर पर चुनाव हुए, जिसके फलस्वरूप वफ़्द दल के लोग बहुमत से चुने गए। प्रधान मंत्रित्व में जगलुलपाशा का बोलबाला हुआ। सारांश यह कि मिश्रदेश को उनकी मुँहमाँगी मुराद—आज़ादी—हासिल हो गई।

यह दिन अँगरेज़ी पार्लियामेंट में भी बड़ी उथल-पुथल के थे। वर्षों से स्वार्थांध और जंग खाई हुई उदार तथा अनुदार-पार्टी पार्लियामेंट में शक्तिहीन हो गई थी, और उसका स्थान मज़दूर-दल ने ग्रहण किया था। लोगों को मज़दूर-दल के कार्यक्रम और उसके नवविकसित भविष्य के कारण उसे शक्तिशाली देखकर अपनी गुत्थी सहज में सुलझाने के लिये लंबी-चौड़ी आशाएँ बँध रही थीं। मिश्र के राष्ट्रीय नेताओं ने भी ऐसे अवसर से लाभ उठाना चाहा। श्रीजगलुल-पाशा लंदन गए, उन्होंने प्रधान मंत्री सर रैम्ज़े मैक्डानेल्ड से भेट भी की; किंतु अपने देश के संबंध में मज़दूर-महामंत्री का रूखा रुख़ देखकर स्तंभित-से रह गए। उन्हें टका-सा जवाब दे दिया गया कि ग्रेट-ब्रिटेन उलझे हुए मामलों में कोई भी रियायत मिश्रदेश के साथ नहीं कर सकता। इस तुषारपात ने मिश्रदेशवासियों की

आँखें अच्छी तरह खोल दीं, और उन्हें विश्वास हो गया कि किसी देश की स्वतंत्रता माँगने से नहीं मिलती—अपने पैरों खड़े होकर ही ली जाती है।

इस विरोधाभास-अवस्था के अगले दो वर्ष बड़े ही भयानक सिद्ध हुए। सूडान में अँगरेज़ी और मिश्री सैनिकों में बड़ा मनोमालिन्य बढ़ गया था। वहाँ ब्रिटिशों का प्रभाव नहीं के बराबर रह गया था। इसी अवसर पर १९२४ के नवंबर-मास में कैरो की एक गली में सर ली स्टैक का ख़ून हो गया। बहुत दिनों से घात लगाए हुए अँगरेज़ी-कर्मचारियों को मिश्र के साथ फिर छेड़छाड़ का अवसर हाथ लगा। इँगलिश कैबिनट के आदेश के आधार पर ब्रिटिश हाई-कमिश्नर लार्ड एलनबी ने मिश्र की नवनिर्वाचित सरकार को एक अल्टिमेटम इस आशय का भेजा कि मिश्र की सरकार इस ख़ून के लिये क्षमायाचना करे—ख़ूनी को दंड दिया जाय, और इस ख़ून का ५,००,००० पौंड तामान अदा करे।

अल्टिमेटम में तुरंत मिश्र की सेना और उसके अफ़सरों को सूडान से हटाए जाने की भी माँग थी। इसके साथ ही नील-नदी के तट—कछार—की भूमि का विस्तार—ब्रिटिश कपास के उत्पादकों के हक़ में—बढ़ाए जाने की बात थी। जगलुलपाशा ने इन शर्तों के स्वीकार करने से साफ़ इनकार कर दिया, और अपने पद से बिदा माँग ली। मौक़ा पाकर अँगरेज़ों ने भी एलेग्ज़ेंड्रिया और पोर्ट सईद की चुंगियों और शासन पर अपना अधिकार जमाया। सूडान के सारे मिश्र के सिपाही एवं अफ़सर निकाल दिए गए, और एक बार फिर फ़ौजी क़ानून की घोषणा कर दी गई। जीवरपाशा के मंत्रित्व में एक कृत्रिम मंत्रिमंडल स्थापित करने का नागपाश भी फेंका गया; किंतु ये दमनकारी अस्त्र आज़ादी के पुतलों को न दहला सके। वैध शासन की न्यायोचित पुकार कोने-कोने से उठी, और वह इतनी प्रखर होती गई कि जीवरपाशा की सरकार को क्षुब्ध लोकमत के सामने अपना सिर झुकाना ही पड़ा। एक बार फिर निर्वाचन हुए, और बिजली की भाँति जगलुलपाशा के अनुयायियों की सर्वत्र विजय हुई।

पक्षापक्ष की जीत के पहले संकेत में यह संभव नहीं था कि कुटिलगण अपने दाँव-पेच से बाज़ आते। जीवरपाशा ने तुरंत बादशाह फ़ुएड की आज्ञा से नवनिर्वाचित पार्लियामेंट को विसर्जित कर दिया। इस प्रकार देश फिर अपने वैध भाग्य-निर्णायकों द्वारा शासित होने से वंचित कर दिया गया। इधर सूडान पर एकाधिपत्य स्थापित रखनेवाले अँगरेज़ों ने नील नदी के तटवाले कछार पर रुई के अँगरेज़ व्यापारियों की सुलभता के लिये नहर निकाली और उसका जल बंद करके मिश्रनिवासी रुई के व्यापारियों को बेरोज़गार कर दिया। फलतः एक बार फिर प्रजापक्ष के सिद्धांतों का तुमुल नाद हुआ। सिदक़ीपाशा और उनके साथी अपनी मिनिस्ट्री को प्रतिवादस्वरूप छोड़ चुके थे—इस दुर्घटना के कारण नया चुनाव शीघ्रतापूर्वक किए जाने का फिर से प्रबंध हुआ। मई, १९२६ में जगलुलपाशा का दल फिर से चारों ओर विजयी हुआ। इस जीत ने विरोधियों के दिल तोड़ दिए।

यह बात ब्रिटेन को सह्य होती, तो कैसे? ब्रिटेन ने जगलुल को चेतावनी दी कि उन्हें किसी भी दशा में मंत्री नहीं बनने दिया जायगा। इस चेतावनी के साथ ही हवाई जहाज़ एलेग्ज़ेंड्रिया पर तथा अँगरेज़ी फ़ौजें कैरो आदि स्थानों पर मँडराने लगीं। प्रत्येक संभव उपाय राष्ट्रीय दलवालों के दिलों को मुर्दा बनाने का किया गया, जिसका अनिवार्य परिणाम यह हुआ कि जगलुल ने मिनिस्ट्री बनाने से इनकार कर दिया, और इसका सेहरा लिबरल दल के प्रधान अदलीपाशा के सिर पर बाँधा गया। अदली महोदय मंत्री बनकर आए अवश्य; पर पार्लियामेंट के भीतर और बाहर तो जगलुल के अनुयायियों का ही बोलबाला था। इसका प्रदर्शन उस समय हुआ, जब मिश्र की सरकार की ओर से ब्रिटिश-फ़ौज़ी सरदार के ओहदे को तोड़ देने की माँग पेश की गई। उसके स्वीकार करने के स्थान पर ब्रिटेन ने और दो लड़ाके जहाज़ छाती पर मूँग दलने के लिये रवाना कर दिए।

मिश्रदेश ने जो ब्रिटेन की शर्तें हाल में ठुकरा दी हैं, उसका कारण उनकी ओर से कोई दुर्भाव नहीं, बरन् यथार्थ स्थिति की ग़ैर-जानकारी अथवा अवज्ञा ही है। अँगरेज़ी जनता का यह रुख़ कि मिश्र का सारा आंदोलन कुछ मुट्ठी-भर राष्ट्रीय आंदोलकों तक सीमाबद्ध है—इस नीति का आधार है। अँगरेज़ी-मिसरी

समझौते के तब तक यथार्थ में कोई अर्थ नहीं होंगे, जब तक ज़िम्मेदार अँगरेज़-राजनीतिज्ञों को इस बात का पूरा विश्वास न दिला दिया जाय कि मिश्रवासी अपने देश की स्वाधीनता को लेकर ही कल करेंगे, तथा वे संसार में अपने लिये उतना ही स्वतंत्र रहना पसंद करते हैं, जितना ग्रेटब्रिटेन या टर्की। मिश्र समानाधिकार लेकर, एक शांतिप्रिय साथी की भाँति, इँगलैंड से मित्रता बनाए रखने के लिये भी उत्सुक है। इस प्रकार एक की पराधीन बनाए रखने की कामना और दूसरे की स्वाधीन बनकर सहकारिता की कामना ही दोनों में समझौता न होने देने का मुख्य हेतु है।

वहाँ के दो राजनीतिक दलवालों—राष्ट्रीय विचार वाले वफ़्ददल और माडरेटों—के मतभेद से लाभ उठाने का विचार व्यर्थ की भावना है। आज वे अपनी व्यक्तिगत कमज़ोरियों से देश के तईं कर्त्तव्यपथ में चाहे जो कुछ आगे-पीछे हों; पर यह निर्विवाद है कि दोनों का लक्ष्य मिश्रदेश की पूरी स्वाधीनता है। दोनों ने जगलुल के नेतृत्व में दायित्वपूर्ण शासन की स्थापना तथा राष्ट्रीय सम्मान सुरक्षित रखने के महायज्ञ में अपने तुच्छ स्वार्थों का बलिदान किया है। दोनों ही जानते हैं कि ऐक्य से वे टिकते और मतभेद से नाश होते हैं। इस राष्ट्रीय भावना में सबसे अधिक अग्रसर होने तथा देश के सबसे बड़े विश्वासपात्र होने पर भी, उन्होंने अल्पमत के प्रतिनिधि सरबतपाशा पर उचित से अधिक भरोसा किया है।

सारांश यह कि उनके इन संधिशर्तों के स्वीकार करने में मुख्य असमर्थता या अड़चन ब्रिटिशों के मिश्र पर सदासर्वदा अपना अबाध अधिकार बनाए रखने के कारण है। संसार की कोई युक्ति उन्हें इसका विश्वास नहीं दिला सकती कि मुख्य-मुख्य नगरों में अँगरेज़ों के प्रधान सहवास की क्यों आवश्यकता है? स्वेज़-नहर की संरक्षा किन कारणों से होनी चाहिए? उस पर आक्रमण ही कौन कर रहा है?

सबसे बड़ी शिकायत उन्हें बादशाह फ़ुएड के संबंध में है। नए महामंत्री मुहम्मद महमूदपाशा के चकमे में आकर उन्होंने मिश्रदेश के विधान को केवल स्थगित ही नहीं किया है, बरन् पार्लियामेंट-भवन में भी एकदम ताला लगा दिया है। वहाँ प्रजा के निर्वाचित प्रतिनिधियों के बैठने की एकदम मनाही है। पिछले अवसरों पर इस बात के काफ़ी प्रमाण मिले हैं कि पार्लियामेंट की बैठकों को न होने देने के लिये उन्होंने रेलवे-स्टेशनों को भी फ़ौजी अधिकार तक में दे दिया। किंतु उनकी यह भद्दी भूल थी। वफ़्ददलवाले—पार्लियामेंट के राष्ट्रीय सदस्य—इस विरोधिनी आज्ञा के होते हुए भी एक स्थान पर एकत्र हुए और घोषणा कर दी कि पार्लियामेंट का अस्तित्व अभी तक शेष नहीं हुआ है। इसलिये वे सबसे पहले अपने उस भाग्यविधाता से निपटना चाहते हैं, जो दूसरों के हाथ का खिलौना होकर उन पर इतनी मुसीबतें बुला रहा है।

७. उपसंहार

इस प्रकार सर्वसाधारण मुसलमानों में ज़मीन-आसमान का परिवर्तन हो रहा है। संसार की प्रतिक्रियाओं के अनुसार इस्लाम का जन्म और उसका उत्थान देश के प्रति अनन्य भक्ति के कारण हुआ है। जहाँ कहीं मुसलमान-जाति बसी, उसने अपने इस जागृत भाव—जीवित व्रत का झंडा गगन-मंडल में फहराए रक्खा। उन्होंने यह सिद्ध किया कि बाह्य रंगरूप, सभ्यता या विचार पर आश्रित हुए विना ही वे समानता एवं मनुष्य के अधिकारों के रक्षक हैं। सुदूर देशों में अपना सहवास स्थापित करके, विदेशों और विधर्मियों से वैवाहिक संबंध जोड़कर और उन्हें स्वकीय समझने में उन्होंने अपने दृष्टिकोण से सार्वभौमिक नीति का परिचय दिया है। संसार में अपना प्रधानत्व जमाए रखने के संबंध में इस्लाम का आदेश प्रायः उन्हीं आधारों पर आश्रित है, जैसा कुछ योरपीय जातियों में उनकी भोगलिप्सा के बल पर आज दृष्टिगोचर हो रहा है। इसका सूक्ष्म परिचय इतने से ही मिल जाता है कि इस्लाम का वासस्थान अरब, पर्शिया या सीरिया नहीं है, बरन् ए—इस्लाम अर्थात् समस्त भूमंडल है। लक्ष्मी के आवाहन के उद्देश्य से उनका संसार-भर में समुद्र-मंथन करने का यह भाव ही सूचना देता है कि वे समाज-विशेष में अपने को आबद्ध न करते हुए अपने प्रभाव का प्रधानत्व स्थापित करने के व्रती थे। जहाँ कहीं उनका भाग्यचक्र उन्हें ले गया, वे निस्सीम अंतरराष्ट्रीयत्व तथा अबाध सार्वभौमिक राष्ट्रीयता की उपासना करते रहे हैं।

इस सार्वभौमिक राष्ट्रीयत्व-प्रदर्शन की आभ्यांतरिक क्रांति के साथ ही मुसलमानों ने अधिकृत प्रांतों के

सीमा-रक्षण करने की भी यथासाध्य चेष्टा की थी। निकट-पूर्व-प्रांतों में मुसलमानों और ईसाइयों की मुठ-भेड़ और उत्तरीय आफ़्रिका, पर्शिया, अफ़ग़ानिस्थान तथा सीरिया के उठे हुए भीषण धर्मयुद्ध उनके मातृभूमि के प्रति प्रेम के उत्कट प्रमाण हैं। तथापि यह भी ध्यान देने योग्य है कि आधुनिक उन्नत संसार में आगे बढ़ी हुई इस्लामी रियासतों की रीतिनीति इस्लाम के लोकसत्तासूचक पुराने संघसमूह से कुछ पार्थक्य लिए हुए थी। उसका आधारस्तंभ प्रायः उसी प्रकार का रहा है, जिस प्रकार संयुक्त-राष्ट्रों के संघसमूह अमेरिका का आजकल दिखाई देता है।

अर्वाचीन पर्शिया तथा नूतन टर्की की यथार्थ गति-विधि जाननेवालों के लिये यह बात स्पष्ट है कि उपर्युक्त देशों में व्याप्त क्रांति विदेशी भावों के बहिष्कार को लक्ष्य में रखकर की जा रही है। कुछ बाह्य अध्ययनकारियों की समझ में यह बात वैसी नहीं है। वे इन मुस्लिम रियासतों में नवीन भावों के आवाहन और पुराने कट्टर सिद्धांतों के परिवर्तन पर बड़े क्षुब्ध हैं। वे इस सार्व-भौमिक राष्ट्रीयत्व को मुसलमानी स्वार्थ-साधन के लिये घातक बता रहे हैं। टर्की में नारी-मंडल की स्वच्छंदता और उसके नवीन सामाजिक साधनों ने उनके हृदय में बड़ा भय उत्पन्न कर दिया है।

टर्की, अरब, पर्शिया और मिश्र में राष्ट्रीयत्व का यह उत्थान स्थानीय देशभक्ति को लक्ष्य में रखकर इस्लाम के प्रति कोई बग़ावत नहीं है। यह केवल बाह्य पद्धति के प्रति विद्रोह है और उन्हीं वस्तुओं का सम्मान सिखाता है, जो प्रत्यक्ष अध्यवसाय और संगठित शक्ति की उत्पादन करनेवाली हों। यह इस विकट परिस्थिति में—जीवन-मरण के इस संग्राम में—उसके प्रातःकाल और संध्या के संधिस्थल में—प्रत्येक प्राप्त साधन द्वारा अपनी लुप्तप्राय आकांक्षाओं को प्राप्त करने एवं प्रतिकूल परीक्षाओं में उत्तीर्ण होने का जाग्रत् इस्लाम का अंतिम और एकमात्र प्रयत्न है।

आधुनिक इस्लाम योरप के साथ इस समय एक ओर अपना आर्थिक युद्ध छेड़ रहा है, दूसरी ओर वह क्लर्जी के गुरुडम का भी निराकरण कर देने का अभिलाषी है। टर्की के राष्ट्रीय दल का मार्गानुसरण और प्राचीन इस्तं-बोल के पुरातन सिद्धांतों की हार केवल इसी युगपरि-वर्तन की सूचना देती है। टर्की के सुलतान की कम-ज़ोरी के कारण ही क्लर्जी का वहाँ इतना प्रभुत्व बढ़ सका था कि एक समय वहाँ ऐसा भी आ गया था कि निकम्मी राजसत्ता के पुजारियों—धर्म के नाम पर कुस्तुनतुनिया के कट्टर मुल्लाओं—के प्रति उँगली उठाने पर भी उनके स्वेच्छाचारीपन की आलोचना करनेवाले को मृत्यु की सज़ा दी जाती थी। टर्की के स्वनाम-धन्य नेता, उसके प्रजातंत्र के वर्तमान जीवन-प्राण ग़ाज़ी मुस्तफ़ा कमालपाशा और उनके अधिकांश साथी इसी इस्लाम के नाम पर पुराने सुलतान की आज्ञा से आजन्म निर्वासन तक का पुरस्कार पा चुके थे। किंतु प्रतिक्रिया के झकोरों ने और नवटर्की के शक्तिसंपन्न होने के कारण उल्माओं ने एक दिन अपनी प्राणसंघा-तक सत्यानाशी भूल समझ ली, और अपने पापों का प्रायश्चित करने के लिये उन्हें बाध्य होना पड़ा। टर्की में ख़िलाफ़त का नाश भी इन्हीं राजनीतिक कारणों से हुआ है और यह प्रत्यक्ष हो रहा है कि आज टर्की आर्थिक दृष्टि से अधिकाधिक संपन्न, संगठनशक्ति में पूर्व से अधिक सुसज्जित और इस्लाम के सच्चे भावों की पूर्ति की ओर सबसे अधिक बद्धपरिकर है।

अरब की दशा इससे अवश्य कुछ भिन्न है। इस्लाम का शोला उसके हृदय में टर्की, पर्शिया और अफ़ग़ा-निस्थान से अधिक जाग्रत् दिखाई देता है। वह अरब के रेतीले मैदान से बहुत दूर—सारे ब्रह्मांड में—इस्लाम के प्रचार का स्वप्न देख रहा है। वह सैनिक रुचि भी रखता है, और दार्शनिक रुचि भी। वह बार-बार स्मरण करता है कि इस्लाम के नियंता हज़रत पैग़ंबर का यहीं से मंत्रोच्चार हुआ था। उसी के परिणाम-स्वरूप वह इस्लामी देशों का संघ बनाने के लिये अन्या-न्य देशों से अधिक उत्सुक है। किंतु अरब का टर्की के प्रति विद्रोह प्रायः वैसा ही राजनीतिक अस्त्र था, जैसा टर्की में ख़िलाफ़त का तोड़ा जाना। उसके धार्मिक धागे वैसे ही अक्षुण्ण हैं।

पर्शिया-शियाद देश में भी पैन-इस्लामिज़्म की घटा छाई हुई है। तेहरान के एक शिया विद्वान् ने कहा था कि इसे भूल जाना चाहिए कि अली या अबूबकर में किसको पहला ख़लीफ़ा बनाया जाना चाहिए था। इस समय तो इसके विचार की आवश्यकता है कि

शताब्दियों की बहसाबहसी के बाद भी अभी हम उसी स्थान पर जमे हैं, और पश्चिम का पार्थिव पूजा का प्रबल प्रहार प्राचीन एशिया की सारी सभ्यता को धोए जा रहा है। फ्रांस की फ़ौजी टोपी की ढंग की पहलवी हैट पर्शिया की राजधानी में आमतौर पर सभी अफ़सरों द्वारा व्यवहार की जाती है। इस्फ़हाम और क़ूम-जैसे धार्मिक केंद्रों के क्लर्जीगण यथार्थ सत्यता को समझ गए हैं। वे शिया-सुन्नी, भूरे-काले-सफ़ेद रंग के सभी मुसलमानों को अपना भाई मानते हैं।

पूर्वी इस्लामी राज्यों में एक सिरे से दूसरे सिरे तक राष्ट्रीयता की लहर दौड़ रही है। प्रत्येक मनुष्य अभिमान के साथ उसका स्मरण करता है। वे इस सूत्र में संगठित होना ही इस्लाम-धर्म का तत्त्व मानते हैं।

योरप निस्संदेह उनकी इस तैयारी से बड़ा भय-भीत है। पूर्व के देशों में राष्ट्रीयता कार्य-साधन का उपाय (Means to an end) भर मानी जाती है। इसी नीति के अनुसार इस्लामी उन्नति का अंतिम लक्ष्य इस्लाम का एकत्व है। यह विचार पश्चिमी देशों के राष्ट्रीयत्व-प्रचार के दृष्टिकोण से निश्चय ही उत्तम है; क्योंकि योरपीय देशों का सिद्धांत यह है कि जितना वहाँ राष्ट्रीयता का प्रचार होगा, उतना ही युद्ध का भय और अंतरराष्ट्रीय सदिच्छा की पूर्ति में बाधा पड़ती रहेगी। अलेप्पो में प्रसिद्ध भारतीय मुसल-मान विद्वान् सरदार एकबाल अलीशाह से सीरिया का एक देहाती मिला था। वह घोर देहाती था। इसके पहले उसने किसी बड़े शहर के दर्शन भी नहीं किए थे। फिर भी वह संसार-भर की राजनीति का गहन ज्ञाता था। राष्ट्रसंघ के विषय में जो विचार उसने प्रकट किए, वे ये थे—योरप में आज राष्ट्रसंघ का जन्म हुआ है, किंतु इस्लामवाले उसकी स्थापना १३०० वर्ष पूर्व ही कर चुके हैं। अंतर केवल इतना ही है कि हम इस्लामी एकत्व के नाम को अपनी राष्ट्रीयता का आधार-स्तंभ समझते हैं, किंतु योरपवासी अपनी भिन्न-भिन्न देशस्थित राष्ट्रीयता का स्मरण करते हुए भी अंतर-राष्ट्रीयता का राग अलापते हैं। यथार्थ में इस्लाम की अटल भीति अभी जहाँ की तहाँ क़ायम है, और योर-पीय विद्वानों का कथन एक-न-एक दिन अवश्य असत्य सिद्ध होगा कि राजनीति के प्रवाह में इस्लाम अपना सब कुछ खोता जा रहा है।

रामप्रसाद मिश्र

हृदयोद्गार

१

पिघल कलेजा बह निकला है लोचनों से,
साँसें निकली हैं घबराकर वदन से;
आ बसी व्यथाएँ अनजानी उर-देश में हैं,
निकल गया है मोद मानस-भवन से।
'कौशलेंद्र' प्राण हो गया पखेरू पींजरे का,
तुल गया हाय यह तन लघु तृन से;
जीवन अमोल, मुझे हो गया अतोल भार,
जब से तुम्हारा मन मिला मेरे मन से।

२

टेरते जो पहले मुझे न मौन भाषा में तो,
क्यों समाई होती श्रवणों में हलचल-सी;
फिर यदि फिरते न मुझसे, तो अंतर में,
चल उठती क्यों चल विद्युत की कल-सी।
'कौशलेंद्र' मैं भी तुम्हें ध्यान से निकाल देता,
फँसी जो न होती बुद्धि मन में विकल-सी;
देख लेता तव मंजु मूर्ति इन आँसुओं में,
काँपती न होती जो निगाह चलदल-सी।

३

भूल गया अपने को भी मैं अपनाके तुम्हें,
किंतु तुम पाते मोद मुझको सताने से;
बाट जोहता तुम्हारे आने की सदा हूँ, किंतु
तुम भागते हो मेरी याद के ही आने से।
'कौशलेंद्र' फिर भी हो मेरे कहलाते तुम,
तंग आ गया हूँ ऐसी रीति के निभाने से;
हो गया प्रलंब और भी हमारा दुख हाय,
प्रेम-धन, आपका सनेह जुड़ जाने से।

कौशलेंद्र राठौर

स्वागत !
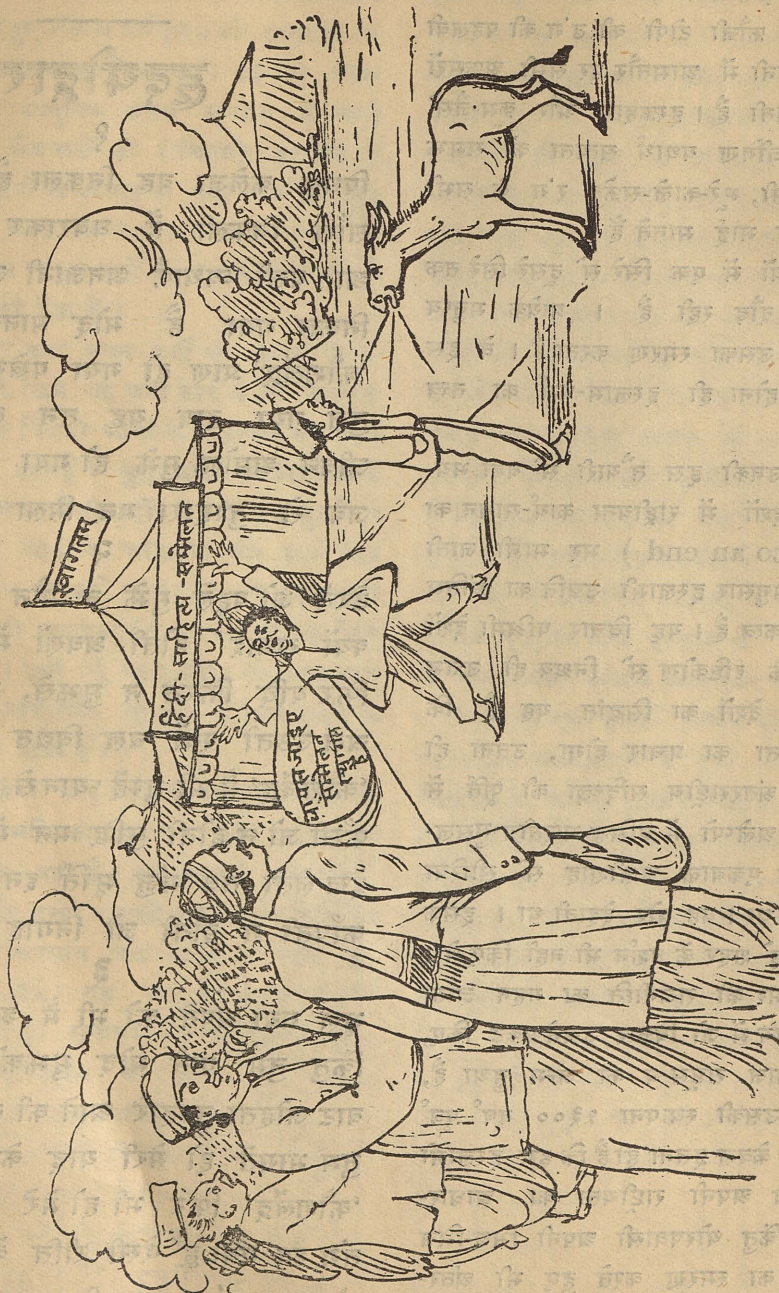
आलोचना और पुस्तक-परिचय

[आलोचना]

१. गीतावली

भक्तशिरोमणि गोस्वामी तुलसीदास-जी ने अपने ग्रंथों द्वारा हिंदी-भाषा की महिमा बढ़ाने, हिंदू-धर्म की रक्षा करने तथा हिंदुस्थान-देश की तत्कालीन आवश्यकताओं की पूर्ति करने में जो कार्य किया, वह सचमुच अद्वितीय तथा अनुपम है। गुसाईंजी की कविता और उनके विचारों का अध्ययन और प्रसार दिन-दिन बढ़ता जाता है, यह देखकर परम आनंद होता है। किंतु अभी तक उनके परम लोक-प्रिय ग्रंथ श्रीरामचरितमानस ने जितना ध्यान आकर्षित किया है, उतना उनके और ग्रंथ नहीं कर सके हैं। वह ग्रंथ है भी सर्वोत्तम तथा सर्वांगीण। किंतु उनके अन्य ग्रंथ भी उपेक्षणीय नहीं, प्रत्युत् श्रद्धास्पद और पठनीय हैं। यद्यपि यह बात सच है कि किसी महाकवि की सर्वोत्तम रचना एक ही होती है, तथापि यह भी उतना ही सच है कि कवि की अमर लेखनी का चमत्कार उसकी अन्य कृतियों में भी थोड़े या अधिक रूप में जाज्वल्यमान् रहता है—महाकवि की चमत्कारिणी लेखनी तथा उसके व्यक्तित्व की छाप उसके सभी ग्रंथों पर न्यूनाधिक रूप में पाई जाती है। यद्यपि कवि एक ही दो ग्रंथों को, अपनी संपूर्ण शक्ति लगाकर, सर्वांगीण तथा संपन्न बनाता है, फिर भी कभी-कभी वह अपने समग्र विचारों की संपूर्णता एक ही ग्रंथ में न कर सकने के कारण या किसी विशेष उद्देश्य या विचार को सामने रख अन्य ग्रंथों को लिखता है। इस प्रकार कवि के विचारों का परिपूर्ण परिचय पाने के लिये हमें उसकी समग्र कृतियों का अनुशीलन करना आवश्यक हो जाता है—कारण, उनके बिना हमें कवि की विचारधारा के प्रवाह के सभी सोपानों (Stages) का पता नहीं लग पाता और उसकी प्रतिभा के क्रम-विकास की धारावाहिक परंपरा हृदयंगम नहीं हो पाती। अतः समालोचक के लिये कवि की भिन्न-भिन्न अवस्थाओं और भिन्न-भिन्न विचारसोपानों के अवसरों पर लिखित भिन्न-भिन्न ग्रंथों का अनुशीलन परमावश्यक हो जाता है।

रचना-पाठ

यह निर्विवाद है कि श्रीरामचरितमानस गुसाईंजी ने अपनी अवस्था के उत्तर-भाग में अर्थात् संवत् १६३१ में लिखा, जिस समय उनकी अवस्था ७८ वर्ष की हो चुकी थी। मानस की प्रगल्भ कल्पना, उसके सर्वांगीण रूप तथा विचार-प्रौढ़ता से स्पष्ट है कि उस समय गुसाईंजी की प्रतिभा अपने सर्वोच्च शिखर पर पहुँच चुकी थी। किंतु इस समय के पूर्व भी वह कुछ ग्रंथों

की रचना कर चुके थे। गुसाईंजी का साहित्यिक जीवन संवत् १६२६ से आरंभ होता है और यही हमारे आलोच्य ग्रंथ की रचना का काल माना गया है। अथवा यों कहिए कि 'गीतावली' गुसाईंजी की सर्वप्रथम रचना है—काव्यरचना का प्रथम प्रवेश है। इसी संवत् में श्रीकृष्णगीतावली भी लिखी गई। दोनों का विषय-सादृश्य भी इसी बात को पुष्ट करता है।

श्रीबेनीमाधवदास-कृत "मूल-गोसाईंचरित्र" में (जो गोस्वामीजी का जीवनवृत्तांत-संबंधी सबसे अधिक प्रामाणिक ग्रंथ माना जा चुका है) इन ग्रंथों की रचना के संबंध में इस प्रकार वर्णन है—

तड़के इक बालक आन लग्यो;
सुठि सुंदर कंठ सों गान लग्यो।
सिसु गान पै रीझि गुसाईं गए;
लिखि दीन्ह तबै पद चारि नए।
करि कंठ सुनायऊ दूजे बिना;
अरि जाय सो, नूतन गीत बिना।
सिसु याहि बनावन गीत लगे;
उर-भीतर सुंदर भाग जगे।
जब सोरह सै वसु बीस चढ्यो;
पद जोरि सबै शुचि ग्रंथ गढ्यो।
तिन राम-गितावलि नाम धर्यो;
अरु कृष्ण-गितावलि राँचि सर्यो।
दोउ ग्रंथ सुधारि लिखे रुचि सों;
हनुमंतहिं दीन सुनाय जिसों।

प्रेरक कारण

उत्तर पद में इन ग्रंथों का रचनाकाल संवत् १६२८ बताया गया है तथा उसका प्रेरक कारण भी यह बतलाया गया है कि एक बालक के सुंदर गायन से मुग्ध होकर गुसाईंजी ने पदों की रचना आरंभ की। और यही कारण है कि गुसाईंजी ने इस ग्रंथ के लिये पदों का प्रयोग किया।

पदों के प्रयोग में गुसाईंजी ने अपने पूर्ववर्ती वैष्णव-कवियों का अनुकरण किया। हिंदी-भाषा का इतिहास जाननेवालों को पता है कि गुसाईंजी के पूर्व ही से वैष्णव-भक्त कवियों में पदों के द्वारा काव्यरचना की परंपरा चली आती थी। श्रीवल्लभाचार्य से लेकर सूरदास आदि अष्टछाप तथा गुसाईंजी के समकालीन महाकवि सूरदासजी ने भी पदों के ही द्वारा अपने "सागर" को तरंगित किया था।

गुसाईं-चरित्र से पता लगता है कि श्रीसूरदासजी ने अपने सूरसागर को रचकर गुसाईंजी को दिखाया भी था। इस घटना के संवत् का ठीक पता नहीं लगता, किंतु संभव है, इसी समय के आसपास यह घटना घटी हो और सूरदासजी के आदर्श पर गुसाईंजी ने इन ग्रंथों की रचना की हो। सूरसागर तथा गुसाईंजी के इन ग्रंथों में भाषा, भाव, छंद, वर्णनशैली आदि की आश्चर्य-जनक समता भी इस बात को पुष्ट करती है।

गोस्वामीजी ने व्रजयात्रा भी की थी। व्रज में कृष्णो-पासक वैष्णवों का प्राबल्य था, तथा पदों के द्वारा कीर्तन की प्रणाली भी प्रचलित थी। जान पड़ता है, इस यात्रा का प्रभाव भी गुसाईंजी की ग्रंथरचना पर पड़ा। इसी समय "कृष्णगीतावली" का रचा जाना भी इस बात को पुष्ट करता है।

आदर्श

दोनों ग्रंथों की साथ-साथ रचना से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि कृष्ण-भक्तों तथा उनकी कवितप्रणाली का प्रभाव गुसाईंजी पर अवश्य पड़ा, किंतु उस प्रवाह में बहकर उन्होंने अपने व्यक्तिगत झुकाव की दिशा को बदला नहीं। भगवान् कृष्ण के चरित्र पर उन्होंने "कृष्ण-गीतावली"-नामक छोटी-सी पुस्तक लिखकर अपने इष्टदेव भगवान् राम के चरित्र पर उससे कहीं बृहत् तथा विस्तृत "रामगीतावली" या "गीतावली" लिखकर ही संतोष किया। कृष्ण-भक्ति के समान राम-भक्ति की सरिता बहाना तुलसीदासजी का ही काम था। आदर्श तो उन्होंने वैष्णव-कवियों का लिया, किंतु उसकी दिशा में परिवर्तन कर अपनी प्रतिभा की कला दिखा दी।

कहा जा चुका है कि मध्यकालीन वैष्णव-कवियों का आदर्श कृष्णभक्ति था। यह भक्ति भगवान् कृष्ण के बालरूप को आधार मानकर उनके माधुर्यमय रूप ही में केंद्रित थी। इसीलिये सूरदास आदि की रचनाओं में कृष्ण के बालसौंदर्य तथा ललित माधुरी आदि को ही

विशेष स्थान दिया गया है। इसी आदर्श पर गोस्वामीजी ने भी अपनी लेखनी चलाई। यही कारण है कि गीतावली में राम के बाल-रूप, बाल-लीला, सौंदर्य तथा माधुर्य का ही विशेष वर्णन है।

शक्ति-शील-सौंदर्य

असल में गुसाईंजी सूरदास के समान केवल सौंदर्य के उपासक नहीं, किंतु भगवान् के सौंदर्य, शक्ति और शीलयुक्त संपूर्ण रूप के उपासक थे, जैसा कि रामचरित्र से प्रकट होता है। मानस में उन्होंने इन दोनों का सामंजस्य कराया है, किंतु प्रारंभिक रचना होने के कारण गीतावली में सौंदर्य पर अधिक ध्यान दिया गया है। यह बात नहीं कि उसमें राम के शक्ति-शीलमय रूप का बिलकुल अभाव है, किंतु वे गौण रूप से —— प्रधानता इसी सौंदर्यमय रूप की ही है।

गुसाईंजी के ग्रंथों और विचारों में धारावाहिक विकास के प्रवाह को लक्ष्य करने से इसका कारण स्पष्ट हो जाता है। सिद्ध हो चुका है कि संवत् १६२८ गीतावली का रचनाकाल है। इसके तथा मानस के रचनाकाल के बीच में गुसाईंजी के दूसरे प्रसिद्ध ग्रंथ "कवितावली" का रचनाकाल माना गया है। इसका ठीक संवत् निश्चय नहीं हो सका है। तत्पश्चात् संवत् १६३१ में मानस की रचना हुई तथा उसके बाद विनयपत्रिका रची गई।

यही गुसाईंजी के मुख्य ग्रंथ हैं और इनको ध्यान से पढ़ने पर स्पष्ट हो जाता है कि भगवान् राम के चरित्र के उक्त तीन भिन्न-भिन्न रूपों—सौंदर्य, शक्ति और शील—को गुसाईंजी ने अपने तीनों ग्रंथों में क्रमशः प्रधानता दी है। अर्थात् क्रमशः प्रथम रचित गीतावली में सौंदर्य को, तत्पश्चात् रचित कवितावली में शक्ति को तथा मानस में शील को प्रधानता दी गई है। यद्यपि मानस में उन्होंने इन तीनों रूपों का सामंजस्य करा दिया है, तथापि प्रधानता उसमें उनके शील या चरित्र ही की है।

इस क्रम से इन रूपों को प्रधानता क्यों दी गई, इसका भी कारण है। इसका संबंध मनुष्य के मस्तिष्क के झुकाव की भिन्न-भिन्न अवस्थाओं या सोपानों—मंजिलों (Stages) से है। पहलेपहल मनुष्य किसी वस्तु के बाह्य सौंदर्य की ओर आकर्षित होता है, फिर धीरे-धीरे उसके शारीरिक पराक्रम या मानसिक शक्ति से प्रभावित होता है, तत्पश्चात् उसके आंतरिक चरित्र या शील की महत्ता का अनुभव करता है। मनुष्य-समाज भी इसी मार्ग से जाता है। मनुष्यों ने देवताओं की कल्पना भी इसी मनोवृत्ति के आधार पर की है। आदिम काल में केवल बाह्य सौंदर्ययुक्त देवता पूजे जाते थे, फिर शक्तिशाली पूजे जाने लगे और तत्पश्चात् सदाचारी चरित्रयुक्त देवताओं या वीर पुरुषों की पूजा आरंभ हुई।

इसी प्रकार गुसाईंजी भी पहले अपने उपास्य देव राम के बाह्य सौंदर्य पर मुग्ध हुए और गीतावली में उस मधुर रूप का हमें दर्शन करा हमारी आँखों को तृप्त किया। फिर उनके शक्ति-शाली रूप से प्रभावित हुए और कवितावली में हमें उसका रूप दिखाकर हमारे मन को संतुष्ट किया। पश्चात् उनके लोकोत्तर पवित्र चरित्र की ओर आकर्षित होकर उनके उस रूप का मानस में दर्शन करा हमारे हृदय को पवित्र किया। तथा अंत में इन तीनों के सामंजस्य की मंजुल, मंगल-मोद-मयी, माधुर्य-तेज-शील-युक्त मूर्ति को उपस्थित कर हमारे नयन-मन-हृदय तथा आत्मा को भी आप्यायित किया।

गुसाईंजी की विशेषता

पं० रामचंद्रजी शुक्ल अपनी पुस्तक "गोस्वामी तुलसीदास" में लिखते हैं—

"गोस्वामीजी ने राम के अलौकिक सौंदर्य का दर्शन कराने के साथ ही उनकी अलौकिक शक्ति का भी साक्षात्कार कराया है। इस अनंत सौंदर्य और अनंत शक्ति के साथ अनंत शील की योजना हो जाने से भगवान् का सगुण रूप पूर्ण हो जायगा। सौंदर्य के प्रभाव से हृदय को वशीभूत करके, शक्ति के अलौकिक प्रदर्शन से उसे चकित करते हुए अंत में उसे शील या धर्म के रमणीय रूप की ओर आप-से-आप आकर्षित होने के लिये छोड़ देते हैं। जो केवल बाह्य सौंदर्य पर मुग्ध होकर और बाह्य शक्ति पर चकित होकर ही रह गया, शील की ओर आकर्षित होकर उसकी साधना में तत्पर न हुआ, वह भक्ति का अधिकारी न हुआ।"

यही स्वामीजी की विशेषता है। सौंदर्य से उन्होंने आरंभ किया, किंतु उसे अंतिम लक्ष्य नहीं मान लिया। किंतु शक्ति में उसकी उच्चता बतलाकर शील या धर्म में उसका अंत किया। उन्हें तो भारत के सामने इसी धर्म का आदर्श उपस्थित करना और उसे राम के रूप में

चरितार्थ करके बतलाना था। सौंदर्य तथा शक्ति भी पूर्ण मनुष्यत्व का अंग है और उसके बिना चरित्र अपूर्ण रह जाता है। किंतु वह साधन है, साध्य नहीं। अधिकांश हिंदी, संस्कृत तथा अँगरेज़ी-कवियों से गुसाईंजी में यही विभिन्नता या विशेषता है। मध्यकालीन हिंदी-कवियों ने सौंदर्य को ही अपना आदर्श मान लिया, उसी को सब कुछ या चरम लक्ष्य समझ बैठे, इसीलिये शृंगारिक कविता की बाढ़ आ गई। किंतु शील या धर्म का आदर्श सम्मुख न होने के कारण उसमें अपवित्रता तथा अश्लीलता प्रवेश कर गई, यहाँ तक कि भक्तराज सूरदास के काव्य में ही इसने प्रवेश पा लिया।

आदि अँगरेज़ी-काव्यों में शक्ति की प्रधानता है। चंद-बरदाई तथा महाकवि भूषण आदि हिंदी-कवियों ने भी शक्ति को प्रधानता दी है, किंतु भारतीय होने के कारण उनका आदर्श धर्मस्थापन ही रहा—उनकी शक्तिसाधना धर्मसाधना का ही अंग बनी रही।

गुसाईंजी की विशेषता यही है कि उन्होंने अपने समय के कवियों की शृंगारिक या बाह्य सौंदर्यप्रियता की लीक को छोड़कर शील को ही अपना आदर्श बनाया। इतना होते हुए भी उन्होंने सौंदर्य या शक्ति का तिरस्कार नहीं किया, बल्कि उसे शृंगार और अश्लीलता के कीचड़ से निकालकर पवित्रता के आसन पर बिठाया और उसे शील का एक अंग बना दिया। उनकी Beauty में केवल Delicacy नहीं है, Vigour भी है—उनके सौंदर्य में केवल कोमलता नहीं है, शक्ति भी है। और यह शक्ति भी केवल शारीरिक या पाशविक शक्ति नहीं, बल्कि आंतरिक आत्मिक शक्ति का प्रतिबिंब-मात्र है। दूसरे शब्दों में उनके बाह्य सौंदर्य और आंतरिक सौंदर्य में एकरूपता है, सामंजस्य है, बिंब-प्रतिबिंब भाव है। राम का बाह्य माधुर्य तथा शक्ति उनके आंत-रिक शील का ही प्रतिबिंब है—अंतर में सौंदर्य इतना परिपूर्ण है कि वह शक्ति और सौंदर्य के रूप में बाहर प्रतिस्फुटित हो उठता है। भीतर न समाकर बाहर फूट निकलता है।

कहा जा चुका है कि गीतावली में गुसाईंजी ने रामजी के माधुर्य और सौंदर्य का ही विशेषता से वर्णन किया है। कहीं-कहीं यह सौंदर्य, शक्ति और शील से अलग-सा जान पड़ता है। जान पड़ता है कि केवल बाह्य सौंदर्य का ही प्रभाव लोगों पर पड़ रहा है। राम के सौंदर्य में एक व्यक्तिगत आकर्षण-सा है—वह जहाँ जाते हैं, वहीं नर-नारियों का मन मोह लेते हैं।

(ग्रामवधुओं का संवाद)

मनोहरता के मानो ऐन।
स्यामल गौर किसोर पथिक दोउ,
सुमुखि! निरखु भरि नैन॥ १॥
बीच बधू बिधुबदनि बिराजति
उपमा कहुँ कोऊ है न।
मानहुँ रति ऋतुनाथ सहित मुनि-
वेष बनाए है मैन॥ २॥
किधौं सिंगार-सुखमा-सुप्रेम मिलि
चले जग-चित-बितलैन।
अद्भुत त्रयी किधौं पठई है बिधि
मग-लोगन्हि सुख दैन॥ ३॥
सुनि सुचि सरल सनेह सुहावने
ग्रामबधुन्ह के बैन।
तुलसी प्रभु तरु तर बिलँबे किए
प्रेम कनौडे कैन?॥ ४॥

(गी० अ० प० २४)

* * *

कैसे पितुमातु, कैसे ते प्रिय परिजन हैं?
जग जलधि ललाम, लोने-लोने गोरे स्याम,
जिन पठए हैं ऐसे बालकनि बन हैं॥ १॥
रूप के न पारावार, भूप के कुमार मुनि-वेष,
देखत लोनाई लघु लागत मदन हैं।
सुखमा की मूरति सी, साथ निसिनाथ-मुखी,
नख-सिख अंग सब सोभा के सदन हैं॥ २॥
पंकज-करनि चाप, तीर तरकस कटि,
सरद-सरोजहु तें सुंदर चरन हैं।
सीताराम लषन निहारि ग्रामनारि कहैं,
हेरि, हेरि, हेरि! होली हियके हरन हैं॥ ३॥
प्रानहूँ के प्रान से, सुजीवन के जीवन से

प्रेम हू के प्रेम, रंक कृपिन के धन हैं।
तुलसी के लोचन-चकोर के चंद्रमा से,
आछे मन-मोर चित-चातक के घन हैं ॥ ४ ॥
(गी० अ० पद २६)

* * *

नीके कै मैं न बिलोकन पाए।
सखि ! यहि मग जुग पथिक मनोहर,
बधु बिधु-बदनि समेत सिधाए ॥ १ ॥
नयन सरोज, किसोर बयसबर,
सीस जटा रचि मुकुट बनाए।
कटि मुनि बसन तून, धनुसर कर,
स्यामल गौर सुभाय सुहाए ॥ २ ॥
सुंदर बदन, बिसाल बाहु उर,
तनु-छबि कोटि मनोज लजाए।
चितवत मोहिं लगी चौंधी-सी
जानौं न कौन कहाँ तें धौं आए ॥ ३ ॥
मनु गयो संग, सोचबस लोचन
मोचत बारि, कितौ समुझाए।
तुलसिदास लालसा दरस की
सोइ पुरवै जेहिं आनि देखाए ॥ ४ ॥
(गी० अ० ३५)

किंतु इनके शील का प्रभाव भी बिना पड़े नहीं रहता—

सजनी ! हैं कोउ राजकुमार।
पंथ चलत मृदु पद कमलनि दोउ
सील-रूप-आगार ॥ १ ॥
(गी० अ० प० २१)

किंतु जब इन ग्रामवधुओं को उनके वनगमन का कारण ज्ञात होता है, तब तो इस सुंदरता के सोने में शील का सुहागा मिल जाता है—

बोले राज देन को, रजायसु भो कानन को,
आनन प्रसन्न, मन मोद, बड़ो काज भो।
मातु-पिता-बंधु-हित, आपनो परम हित,
मोको बीसहू कै ईस अनुकूल आज भो ॥ १ ॥
असन अजीरन को समुझि तिलक तज्यौ,
बिपिन-गवनु भले भूखे को सुनाजु भो।
धरम-धुरीन धीर बीर रघुबीरजू को
कोटि राज सरिस भरतजू को राज भो ॥ २ ॥
ऐसी बात कहत सुनत मग-लोगन की,
चले जात बंधु दोउ मनि को सो साज भो।
धाइबे को, गाइबे को, सेइबे-सुमिरिबे को,
तुलसी को सब भाँति सुखद समाज भो ॥ ३ ॥
(गी० अ० ३३)

इस प्रकार यहाँ सौंदर्य, वीरता या शक्ति तथा शील, तीनों का प्रभाव बतलाया गया है।

इस सब सौंदर्य तथा ग्रामवधुओं के प्रेम में पवित्रता की मात्रा कितनी अधिक है ! ऊपर के पद में है—

सुनि सुचि सरल सुहावने ग्रामबधुन्ह के बैन।

आगे भी कहती हैं—

हेरनि हँसनि हिय लिए हौं चुराई।
पावन प्रेम बिबस भई हौं पराई ॥

इस पवित्र प्रेम की छाप इन सरल ग्रामवधुओं पर राम के चले जाने पर भी पड़ी रही। देखिए—

बहुत दिन बीते सुधि कछु न लही।
गए जो पथिक गोरे साँवरे सलोने,
सखि ! संग नारि सुकुमारि रही ॥ १ ॥
जानि पहिचानि बिनु आपुतें आपुने हुतें,
प्रानहुँ तें प्यारे प्रियतम उपही।
सुधा के सनेह हू कै सार लै सँवारे बिधि,
जैसे भावते हैं भाँति जाति न कही ॥ २ ॥
बहुरि बिलोकिबे कबहुँक, कहत
तनु पुलक, नयन जलधार बही।
तुलसी प्रभु सुमिरि ग्रामजुवती सिथिल,
बिनु प्रयास परीं प्रेम सही ॥ ३ ॥
(गी० अ० ३८)

इसी प्रकार जनकपुरनिवासियों पर भी राम के शील और सुषमा का एक साथ प्रभाव पड़ता है—

शील सुधा के अगार सुखमा के पारावार,
पावत न पैरि पार पैरि-पैरि थाके हैं।

तथा—

सषमा शील सनेह-ज्ञानि मनो रूप बिरंचि सँवारे।

शैली

कहा जा चुका है कि गीतावली में गुसाईंजी ने सूरदासजी के समान भगवान् के माधुर्य पर ही विशेष दृष्टि रक्खी है। इसके लिये उन्होंने सूरदासजी के ही समान व्रजभाषा तथा पदों का प्रयोग किया है। कारण, कृष्णलीला का माधुर्य भी गुसाईंजी के पहले व्रजभाषा में पदों के द्वारा वर्णन करने की परिपाटी चली आ रही थी। उसी परिपाटी तथा उसी शैली को अपनाकर, गुसाईंजी ने उसमें रामभक्ति तथा अपने व्यक्तित्व की छाप लगा दी है। प्रतिभाशालियों की विशेषता इसी में है कि प्राचीन परिपाटी के पीछे चलने में ही संतोष न कर उसे अपना लें तथा अपने व्यक्तित्व की स्पष्ट मुहर उस पर लगा दें। बाद में चलकर गुसाईंजी ने रामचरित-मानस में अपनी चौपाइयों की नवीन शैली का प्रचलन किया है, जो उनके परवर्ती कवियों के लिये आदर्श बनी जा रही है। यह एक विशेष मार्के की बात है कि गुसाईंजी ने दूसरों की शैली पर चलकर इतनी सफलता पाई कि उनसे भी आगे बढ़ गए, किंतु गुसाईंजी अपनी प्रचलित की हुई शैली में अद्वितीय ही रहे—आज तक भी कोई उस दिशा में उनकी बराबरी नहीं कर सका। चौपाई के नाते गुसाईंजी की चौपाई एक ही रही। जैसे—सूर के पद और बिहारी के दोहे।

भाषा और छंद

व्रजभाषा का लालित्य तो प्रसिद्ध ही है। गायन योग्य विविध राग-रागिनियों के पदों में वह मधुरिमा और भी बढ़ जाती है। माधुर्यलीला का वर्णन मधुर व्रजवाणी के मधुर पदों के संगीत से त्रिगुणित मधुर हो उठता है—वर्णनीय भी मधुर, भाषा भी मधुर और छंद भी मधुर—तीनों एक दूसरे के उपयुक्त ही हुए हैं।

गुसाईंजी ने अपने अन्य ग्रंथों में अवधी, बैसवाड़ी आदि बोलियों का भी प्रयोग किया है, किंतु गीतावली तथा कृष्णगीतावली में उन्होंने शुद्ध व्रजभाषा का ही प्रयोग किया है। जान पड़ता है, पहले कृष्णगीतावली में उन्होंने अपनी लेखनी साफ़ कर फिर रामगीतावली में उसे परिमार्जित किया है। रामगीतावली से प्रकट होता है कि कृष्णगीतावली में जिस शैली का प्रयोग उन्होंने आरंभ किया था, वह रामगीतावली में प्रौढ़, परिमार्जित और प्रांजल हो चुकी थी।

आख्यान वस्तु या वर्णनीय विषय

गीतावली के क्रम को देखकर यह बात स्पष्ट हो जाती है कि ग्रंथ उनके दोहावली आदि कुछ ग्रंथों के समान पदों का संग्रह-मात्र नहीं है, किंतु क्रमबद्ध ग्रंथ ही के रूप में लिखा गया है। श्रीरामचरित्र ही इसका वर्णनीय विषय है, किंतु सांगोपांग कथा का पूर्णरूपेण घटनावार वर्णन करना उनका उद्देश्य नहीं देख पड़ता। लालित्य और माधुर्य पर दृष्टि रखने के कारण, गीतावली में ऐसे ही प्रसंगों का विशेष विस्तार से वर्णन है, जिसमें माधुर्य आदि की मात्रा अधिक है; शेष बातों का केवल संक्षेप से उल्लेख कर दिया गया है या कई बिलकुल छोड़ दी गई हैं।

जैसे—सूरदासजी ने श्रीकृष्ण के महान् चरित्र से केवल बाललीला, रासक्रीड़ा, गोपिका-प्रेम, वियोग तथा विरह-वर्णन को ही चुनकर उन्हीं के विस्तार से अपने सूरसागर को भर दिया है, उसी प्रकार गुसाईंजी ने भी बाललीला, मिथिला-यात्रा, वनवास-यात्रा, वनवास तथा राम-राज्य-वैभव आदि प्रसंगों का विशेष वर्णन किया है। कई कथाएँ, जिनका मानस में विस्तार है, गीतावली में संक्षिप्त हैं, तथा जिनका इसमें विस्तार है उनका मानस में संक्षिप्त वर्णन है।

ब्योहार राजेंद्रसिंह

× × ×

२. रूपलेखा

साहित्य एवं संगीत की संगिनी चित्रकला की महती महिमा की वर्णना में जो कुछ कहा जाय, सो सब स्वल्प है। संक्षेप में यही वक्तव्य है कि यह चारु कला अनुन्नत सभ्यता की सहोदरा होने का अपमान सहन नहीं कर सकती। इसका अस्तित्व सर्वांगीण अभ्युदय को विद्योतित करनेवाले सभ्य समाज में ही है। यह कला उत्कर्ष-रत्न के परखने की एक प्रधान कसौटी है। यह देश के सौभाग्य को अक्षुण्ण बनाए रहती है। यह केवल हर्म्यों की मनोरमता के उपादान का ही साधन नहीं है, प्रत्युत् देश की जातीयता को जागृत रखने का प्रधान उपाय है।

प्राचीन चित्रावली के दर्शक इस भारतभू की भूरि-भूरि प्रशंसा किए बिना नहीं रह सकते। उन चित्रों के विस्ताकर्षकता, मौलिकता आदि सुगुण इस शताब्दी में भी इस देश के मस्तक को संसार के सम्मुख अवनत नहीं होने देते।

परम हर्ष का विषय है कि भारत की राजधानी इंद्रप्रस्थ में इस गौरवशालिनी चित्रकला के पुनः प्रचार के निमित्त कतिपय उद्योगशील महामना सज्जन बद्ध-परिकर हुए हैं। उनमें से कलाकोविद बाबू शारदा-चरण उकील, बाबू वरदाचरण उकील तथा बाबू रणदा-चरण उकील विशेषतः उल्लेख योग्य हैं। इनके निरीक्षण तथा संपादकत्व में प्रकाशित 'रूपलेखा' वस्तुतः अपनी प्रणाली की एक अपूर्व रचना है। उसकी सांगोपांग सिद्धि का श्रेय इन्हीं उकीलबंधुओं को है। इस पत्रिका की शैली की प्रशंसा न केवल देशी प्रत्युत आक्सफ़ोर्ड*, लंदन † आदि के कोविद चित्रकारों ने भी की है।

अपनी लोकप्रियता, कलानैपुण्य तथा प्रसिद्धि द्वारा बंधुत्रय ने इसके निमित्त जिस सहायता को प्राप्त किया है, वह औरों को अप्राप्य ही थी। प्रयाग के इंडियन प्रेस तथा स्थानीय आइ० एम्० एच्० प्रेस ने भी पत्रिका के प्रोज्वल भविष्य की आशा पर साहाय्य देकर संपादक-मंडल के उत्साह की वृद्धि की है।

अभी तक रूपलेखा के दो अंक प्रकाशित हुए हैं। जो पत्र-पत्र पर अभिरामता से विराजमान हैं। सब कुछ होते हुए भी एक खेद यह है कि जितने महत्त्व की यह पत्रिका है, जितना उच्च इसका आदर्श है, जितनी उपादेयता इसमें विद्यमान है, स्थानीय तथा इतर जनता की उतनी ही उपेक्षादृष्टि इसके प्रति रही है। कलाभिज्ञों ने जिसके लाभ के लिये इसके संपादन-भार को वहन किया, वही जनता अपनी गुणग्राहकता के परिचय को न देकर संपादकों के चित्त में क्षोभ का संचार कर रही है। पत्रिका का पाठ, दर्शन, मनन करके लाभान्वित होना तो एक ओर, सहानुभूति प्रदर्शित करने में भी जनता को संकोच है, और इसका हमें खेद है।

संपादकों ने कुछ स्वार्थसाधन के लिये ही इसे संचालित किया हो, ऐसा नहीं है। यह 'राष्ट्रीय चित्रागार की सुचारु संपत्ति हो'—इसी विचार को हृदयंगम करके जनता के सम्मुख प्रस्तुत की गई है। सभ्यता को आश्रय देनेवाली विद्यानुरागिणी जनता से हमारी मित्रवत् सदुक्ति है कि वह ऐसे सुअवसर को हाथ से न जाने दे, प्रत्युत यावच्छक्य पत्रिका की ग्राहिका बनकर गुणग्राहकता लाभ करे और संपादन में सहायता देती हुई कला की उन्नति में भारत के गौरव की उन्नति की प्रार्थना श्रीभगवान् से करे*।

कृष्णदत्त भारद्वाज

---

* I shall follow with very great interest and sympathy all the activities of Delhi Fine Arts and Crafts syndicate so well begun in the interesting and attractive first number of Roopa Lekha.........which give art in India much greater power in national life than it has in modern Europe, where it has generally become a cult for the intelligentsia only..........

(Sd.) E. B. Hawell
Oxford.

† ......the first issue of Roopa Lekha, and I am delighted to meet with another example of the re-awakened interest in Indian art in India itself.

(Sd.) W. Rathenstein,
Royal College of Arts,
London.

* रूपलेखा के संपादक-मंडल की नामावली—

१ श्री० के० एच्० वकील (बंबई) २ श्रीअजित घोष (कलकत्ता) ३ मिसेज़ एलिस ई० अडयार (मदरास) ४ मिसेज़ कमलादेवी चट्टोपाध्याय (मँगलोर) ५ श्रीजी० वेंकटाचलम् (दक्षिण भारत, बँगलोर) ६ श्रीमुकुंदीलाल, डिप्टी प्रेसिडेंट यू० पी० कौंसिल, लखनऊ ७ श्रीवरद उकील (दिल्ली)।

आर्थिक साहाय्य देनेवाले रूपलेखा के परिचालकों की नामावली—

१ सरदार साहब सरदार शोभासिंह २ मिस्टर रघुवीर सिंह, बी० ए० ३ मिस्टर दीवानचंद ४ मिस्टर शारदाचरण उकील ५ सरदार गुरुचरणसिंह ६ मिस्टर बरदा उकील ७ सरदार मेहरसिंह रईस रावलपिंडी।

हेमला सत्ता—लेखक मुंशी अजमेरी ; प्रकाशक, साहित्य-सदन, चिरगाँव (झाँसी) ; पृष्ठ-संख्या ४८ ; मूल्य ।ー)

यह एक नक़ली भूत की कथा है । पद्य में लिखी गई है और हमें यह लिखते हर्ष होता है कि इसकी भाषा बड़ी प्रांजल तथा प्लाट मनोरंजक है । भूतों की कल्पित कहानियों से जो लोग भयभीत हों, उन्हें एक बार यह पुस्तक अवश्य पढ़नी चाहिए । वह निर्भय हो जायँगे । सती तो स्त्रियाँ अपने पति के साथ होती हैं ; किंतु हेमला जाट अपनी मृत पत्नी के साथ 'सत्ता' होने को उद्यत हुआ । ज्यों ही चिता की आँच 'सत्ता' को लगी कि वह भागा, और पास ही एक पेड़ में छिप गया । लोगों ने उसे ज़बर्दस्ती 'भूत' बना दिया, तब से वह सचमुच भूत हो गया । उस सत्ता भूत के भय से कितने ही मर गए और लोगबाग गाँव छोड़कर भाग गए । अंत में एक ठाकुर साहब ने उसे भूत से मनुष्य बनाया । यही सत्ता भूत की कथा बड़े अच्छे ढंग से लिखी गई है । हास्यरस की छोटी-सी अच्छी पुस्तक है । पृष्ठ ३९ में "बछिया का ताऊ" प्रयोग नितांत असंगत है। इसका प्रयोग तो बुद्धि के अभाव के प्रदर्शन में होता है । न-जाने अजमेरीजी ने भूत-उद्धारक ठाकुर साहब के लिये इसका प्रयोग कैसे कर दिया ।

× × ×

विकट भट—लेखक, मैथिलीशरण गुप्त ; प्रकाशक, साहित्य सदन, चिरगाँव (झाँसी) ; मूल्य ≈)

यह भी पद्यबद्ध पुस्तक है । चारणों की गाथाओं के आधार पर लिखी गई है । इसका कथा-प्रवाह इसके नाम को सार्थक कर रहा है । इस छोटी-सी पुस्तिका में, तनी सौम्य भाषा में, कदाचित् इससे अधिक ओज नहीं भरा जा सकता था । यह छोटी-सी वीर-गाथा ही है । पढ़ने लायक़ है । वीरवंशज किस प्रकार वीरता से अपने पूज्य पूर्वजों की कीर्तिरक्षा करते हैं, यह इसमें देखिए ।

× × ×

नवीन राज्यशासन (दूसरा भाग)—लेखक, रामचंद्र संघी एम्० ए०, विशारद, भूतपूर्व हेडमास्टर हिंदी-भाषी संघ-स्कूल, नागपूर ; प्रकाशक, नर्बदा-बुकडिपो, जबलपुर ; मूल्य ।ー)

इस पुस्तक के प्रथम भाग का परिचय माधुरी में दिया जा चुका है । यह द्वितीय भाग मध्यप्रांतीय मिडिल स्कूलों की सातवीं कक्षा के लिये लिखा गया है और प्रांतीय शिक्षाक्रम के अनुसार होने से शिक्षा-विभाग द्वारा स्वीकृत भी हो चुका है । अतएव शिक्षा की दृष्टि से इसकी उपयोगिता में संदेह नहीं किया जा सकता । सुयोग्य नागरिक बनने के लिये जिस प्रारंभिक ज्ञान की आवश्यकता रहती है, वह इसमें समाविष्ट है । भाषा भी विद्यार्थियों के योग्य है । अंत में प्रत्येक पाठ पर कुछ महत्त्वपूर्ण प्रश्न भी दे दिए गए हैं, जिससे विद्यार्थियों के लिये अधिक उपयोगी बन गई है ।

× × ×

अपठित भाषाबोध—रचयिता, जगपति चतुर्वेदी विशारद, हिंदी-भूषण । प्रकाशक, रायसाहब रामदयाल अगरवाला, बुकसेलर और पबलिशर, कटरा, इलाहाबाद ; मूल्य ॥) ; पृष्ठ-संख्या १०० ।

पुस्तक के नाम से तो यह जान पड़ता है कि यह छात्रों के लिये है ; किंतु किस श्रेणी के छात्रों के लिये है, इसका कहीं भी संकेत नहीं है । गद्य और पद्य, दोनों का यह संग्रह है । इस संग्रह का उद्देश्य, रचयिता के शब्दों में, यह है कि "बालकों को पाठ्य पुस्तकों के अतिरिक्त हिंदी के गद्य-पद्य के सुंदर अंशों को देखने का अवसर मिले, जिनसे उनके हृदय में हिंदी-साहित्य-अध्ययन के प्रति अनुराग बढ़े और उनके ज्ञान-भंडार की वृद्धि तथा अधिकाधिक बातें जानने की जिज्ञासा उत्पन्न होने के अतिरिक्त उनका मनोरंजन भी हो।" किंतु हमारी समझ में रचयिता का उद्देश्य इससे पूर्ण न होगा । हमारी सम्मति में छात्रों के लिये भाषा की शुद्धता कम आवश्यक नहीं है । किंतु दूसरे नंबर के पद्य में ही खड़ीबोली और व्रजभाषा की खिचड़ी पकी मिलती है । रचयिता महाशय स्वयं लिंग-संबंधी भूल करते हैं । पैसेज ६६ में अभ्यासार्थ जो प्रश्न आपने दिए हैं, उनमें से पहले प्रश्न में उपनिषद् को पुल्लिंग लिखा है । किंतु यह तो स्त्रीलिंग है । पैसेज १०० बिलकुल निरर्थक है—ख़ासकर छात्रों के लिये । आजकल ऐसे बहुत-से 'संग्रह' प्रकाशित हो रहे हैं । अच्छा हो कि शिक्षा-विभाग इनका चुनाव करने में सावधानी से काम लिया करे ।

× × ×

जब अँगरेज़ नहीं आए थे—अनुवादक, शिवचरणलाल शर्मा ; प्रकाशक, सस्ता-साहित्य-मंडल, अजमेर ; पृष्ठ-संख्या १०० ; मूल्य ।)

भारतवर्ष की सामाजिक तथा आर्थिक दशा का चित्र आज बड़ा बीभत्स है ; वह इतना रोमांचकारी है कि उसकी कल्पना में ही वेदना है। 'देशदर्शन', 'देशेर कथा' आदि ग्रंथों में इस बात को सप्रमाण सिद्ध किया गया है कि भारतवर्ष, मुसलमानी शासन की अपेक्षा भी, आज बहुत ही गया-गुज़रा है। मि० डिग्बी, लार्ड मैकाले तथा अन्य कितने ही विवेकशील अँगरेज़-लेखकों ने भी ब्रिटिश-शासनांतर्गत भारत की दुर्गति का यथार्थ वर्णन किया है। प्रस्तुत पुस्तक ऋषिकल्प दादाभाई नौरोजी-लिखित "Poverty and unbritish Rule in India"-नामक ग्रंथ के India Reform Society-नामक परिच्छेद का अनुवाद है। भारतवर्ष में जो सुख-समृद्धि तथा शांति अँगरेज़ों के यहाँ आने से पहले थी और जो ह्रास इसमें अब तक हुआ है, इसका उसमें ख़ासा वर्णन है। प्रत्येक देश-प्रेमी को यह पुस्तक पढ़नी चाहिए। मूल-पुस्तक सर्वप्रथम सन् १८५३ में प्रकाशित हुई थी। उसके बाद वह सन् १८६६ में पुनः छपी। इसी से उसकी प्राचीनता और प्रामाणिकता का अनुमान किया जा सकता है। सस्ता-साहित्य-मंडल की पुस्तकें दाम में सस्ती-से-सस्ती रहती हैं ; अतएव पुस्तक की उपयोगिता को देखते हुए तो यह मूल्य और भी कम रह जाता है।

× × ×

त्रिवेनी—लेखक, पद्मकांत मालवीय ; प्रकाशक, अभ्युदय-प्रेस, प्रयाग ; मूल्य साधारण संस्करण २), विशेष संस्करण २॥)

यह वही पुस्तक है, जिसकी आज चारों ओर हिंदी-संसार में धूम मची हुई है। उदीयमान कवि पं० पद्मकांत मालवीय की कुछ कविताओं का इसमें संग्रह है। "जैसा कि पुस्तक के 'त्रिवेनी' नाम से ही ज्ञात होता है, इसमें तीन प्रकार की कविताएँ हैं। हिंदी या उर्दू, खड़ीबोली तथा ब्रजभाषा।" रचयिता की सम्मति में 'त्रिवेनी' नामकरण का यह कारण है। किंतु भाषा की दृष्टि से नहीं, कविता की दृष्टि से मुझे तो यह जान पड़ता है कि कहीं इसमें गंगा की उज्ज्वल शांत धारा प्रवाहित है, कहीं यमुना का नीलिमामय प्रवाह है और कहीं सरस्वती की प्रच्छन्न क्षीण रेखा है। यह क्षीण रेखा ही मेरी दृष्टि में इसे 'त्रिवेनी' नाम से सार्थक कर रही है। और, वह क्षीण रेखा सरस्वती की क्या है—रचयिता में कवि-हृदय की विभूति-अनुभूति। यह न होती, तो लेखक की रचनाओं को त्रिवेणी का महत्त्व कदापि न प्राप्त होता। द्वैत की भावना को मिटाकर उसे अद्वैत का रूप देनेवाली यह क्षीण रेखा ही तो है।

कवि 'कामना'-शीर्षक कविता में (पृष्ठ ५) लिखते हैं—

मिलन चिरस्थायी हो दुख-सा नाचैं मिल दोनों मन-मोर ;
प्राण सिमिटकर खिंचित तार सम, मिल जाएँ हो ओर न छोर।

* * *

तू हो मुझमें, मैं हूँ तुझमें, तू ही तू हो मुझको ज्ञान ;

कितनी मीठी पंक्तियाँ हैं। स्थायित्व इनमें कितना है?—उतना जितना वेदना और उसके उपरांत प्राप्त होनेवाले तन्मयता के आनंद के संयोजक काल में। यह उस क्षीण रेखा का प्रमाण है। देखिए—

प्रेमउदधि का तरल तरंगों से ताड़ित बहने में ;
मिल । जो आनंद नहीं वह शीघ्र डूब मरने में।

क्यों ?—इसलिये कि

हाँ, विस्मृत पट पर है अब तक छाया कुछ उस छवि की।
और, वह स्मृतिपटल पर अंकित है।

उत्प्रेक्षाओं और उपमाओं की यथार्थता न होने पर भी पद्मकांतजी में प्रकृति-पर्यवेक्षण, हृदय का स्पंदन, मनोवैज्ञानिक अनुशीलन और वेदना-जन्य तड़पन तथा भावांदोलन, प्रायः कविता के सभी गुण हैं। वह होनहार कवि हैं—उनके द्वारा समय आने पर हिंदी को कुछ मिलेगा—इसका हमें विश्वास है। अभी तो विकास का प्रारंभिक काल है।

पुस्तक सचित्र है, कितने ही रंगीन और तिरंगे चित्र हैं, जो कहीं-कहीं सोने में सुगंध का काम करते हैं। आरंभ में पं० रमाशंकर शुक्ल 'रसाल' एम० ए०-लिखित भूमिका है, जिसमें पद्मजी की कविताओं का आलंकारिक निरूपण किया गया है।

किंतु एक बात हमें इस प्रसंग में कहनी पड़ती है। अभी हाल में, किसी साप्ताहिक में, 'माधवी' और 'त्रिवेणी'

पर एक लेख हमने पढ़ा था। लेख के संबंध में हमें कुछ नहीं कहना है। कहना यह है कि 'त्रिवेनी' पर स्वतंत्र विचार ही उसके गौरव को अधिक महत्त्व प्रदान करेंगे। समय आवेगा, जब इस त्रिवेणीतट पर, उसी के कारण, तीर्थराज बसेंगे। भगवान् इस कवि-हृदय को दीर्घजीवी करें।

× × ×

इंद्रार्जुन-संवाद (महाकवि भारवि के प्रसिद्ध ग्रंथ 'किरातार्जुनीय' के ग्यारहवें सर्ग का पद्य में अनुवाद)—अनुवादक और प्रकाशक, कुँ० रामलाल वर्मा, मल्लाबाज़ार, अल्मोड़ा; मूल्य ।≈)

संस्कृत-साहित्य में 'किरातार्जुनीय' का विशेष स्थान है। राजनीति के जो तत्त्व इसमें बतलाए गए हैं, उससे अच्छे कदाचित् 'माघ' और 'नैषध' ही में मिलेंगे। किरातार्जुनीय का यह श्लोकार्द्ध—सहसा विदधीत न क्रियामविवेकः परमापदास्पदम्—ही ग्रंथकार की नीतिमत्ता का प्रमाण है। अस्तु, यह पद्य-बद्ध अनुवाद उसी के ११वें सर्ग का है। महर्षि वेदव्यास के आदेशानुसार अर्जुन 'पाशुपत अस्त्र' की प्राप्ति के लिये इंद्रकील-पर्वत पर तपस्या करने जाते हैं, वहाँ इंद्र द्वारा प्रेषित अप्सराओं द्वारा जब उनका तप भंग नहीं होता, तब स्वयं इंद्र पहुँचते हैं और उन्हें उद्देश्य से विचलित करते हैं। जब आत्मज का तप भंग करने में उन्हें सफलता नहीं मिलती, तो प्रसन्न होकर उपदेश देते हैं कि शंकर की आराधना करो। यही 'इंद्रार्जुन-संवाद' है। आरंभ में पं० गोविंदवल्लभ पंत बी० ए०, एल्‌-एल्‌० बी०, एम्‌० एल्‌० सी०-लिखित कथानक की परिचायक संक्षिप्त भूमिका है और 'शक्ति'-संपादक पं० बदरीदत्त पाँडे एम्‌० एल्‌० सी०-लिखित बधाई। पंतजी को इस पुस्तिका में, लेखक के संबंध में, अपनी आशा "सफल हुई जान पड़ती है" और पाँडेजी की सम्मति में "अनुवाद सरल और रोचक है।" हमारी सम्मति में इसके छंदों में कहीं-कहीं गतिभंग दोष है। पुस्तक उपदेशप्रद और पढ़ने योग्य है।

मातादीन शुक्ल

× × ×

सचित्र संतानशास्त्र—लेखक, बाबू अयोध्याप्रसाद भार्गव; प्रकाशक, भार्गव-पुस्तकालय, गायघाट, बनारस सिटी; मूल्य १ℓ); पृष्ठ ३०८, सजिल्द।

इधर इस विषय पर अच्छी-बुरी बहुत-सी पुस्तकें निकली हैं, जिससे मालूम होता है कि जनता की कामशास्त्र-संबंधी ज्ञान-पिपासा बढ़ती जा रही है। इस पुस्तक में रज और वीर्य की उत्पत्ति से संतानपालन तक, कितनी ही उपयोगी बातों का समावेश किया गया है, जिन्हें जान लेने के बाद हमारा विचार है कि मनुष्य संतान के प्रति अपने कर्तव्य का पालन करने में ज़्यादा कुशल हो जायगा। गर्भाशय, गर्भाशय के रोग, रजोधर्म के रोग, संयोग में त्याज्य स्त्री या पुरुष, बंध्यारोग, योनिरोग, मूत्ररोग, प्रदररोग, कन्या या पुत्र पैदा करना मनुष्य के अधीन है, बच्चों में मातापिता के मनोबल का प्रभाव, आदि कोई ७० शीर्षकों में इस विषय के प्रायः सभी अंगों का उल्लेख कर दिया गया है। भाषा सुबोध और सरल है। छपाई सुंदर। लेखक ने एक ज़रूरी विषय पर ज़रूरी किताब लिखी है; चुंबन के प्रकार, आलिंगन के भेद और संभोग के आसन लिखकर पुस्तक में गंदगी नहीं आने दी।

× × ×

जल-चिकित्सा—लेखक, श्रीशिवनारायण टंडन; प्रकाशक, प्रकाश-पुस्तकालय, कानपूर; पृष्ठ ६८; मूल्य ।≈)

यह इस पुस्तक का दूसरा एडीशन है। लेखक का कथन है कि जलचिकित्सा या टबस्नान से कितने ही प्राणियों ने, सभी चिकित्सा-प्रणालियों से निराश होने के बाद, आरोग्य लाभ किया है, और इस कथन में बहुत कुछ सत्य है। लेखक महोदय ने स्वयं इसका अनुभव किया है। उनके एक मित्र की स्त्री जिसे तपेदिक़ हो गया था और जिसके जीवन की घड़ियाँ गिनी जा रही थीं इस प्रयोग से अच्छी हो गई। अच्छा होना या न होना तो विधि के हाथ में है, पर इस सरल और स्वाभाविक रीति की परीक्षा करने में अगर लाभ न भी हो, तो भी हानि तो हो ही नहीं सकती। कष्टसाध्य रोगों में यह विशेष उपयोगी है। इस पुस्तक में सभी प्रकार के स्नान की विधि, किस बीमारी में किस प्रकार का स्नान करना चाहिए, पथ्यापथ्य आदि सभी आवश्यक बातों की चर्चा कर दी गई है। पुस्तक बहुत उपयोगी है।

प्रेमचंद

× × ×

काकली—लेखक, श्रीयुत कौशलेंद्र राठौर; प्रकाशक, श्रीरामसिंह राठौर, राजसदन, मैनपुरी; पृष्ठ-संख्या ५२; मू०।।)

'काकली' में कौशलेंद्रजी की प्रकाशित तथा अप्रकाशित कविताओं का संग्रह है। विभिन्न ३१ शीर्षकों के अंतर्गत इस पुस्तक में आपकी कविताएँ विभक्त हैं। खड़ीबोली और व्रजभाषा, दोनों में रचनाएँ हैं! पद्य सरस, सरल और मुहावरेदार भाषा में लिखे गए हैं। किसी-किसी रचना में एकदम नई सूझ है। मुझे 'जिज्ञासा', 'प्रेम के छींटे,' 'वधिक से', 'हृदयोद्गार', 'करुणा-कादंबिनी', 'प्रेमी' और 'आशा' अधिक पसंद आईं। संग्रह पढ़ने से इस बात में कोई संदेह नहीं रह जाता कि राठौरजी की कविताओं में माधुर्य, प्रसाद और हृदय को गुदगुदा देनेवाला प्रवाह है। हम इस पुस्तक के लिये ठाकुर साहब को बधाई देते हैं। साथ ही काव्यप्रेमियों से इस पुस्तक को पढ़ने का आग्रह करते हैं। पुस्तक अच्छे सफ़ेद काग़ज़ पर रंगीन स्याही से छापी गई है। इसमें एक ही खटकने वाली बात है, और वह है पुस्तक का मूल्य। यदि इसका दाम कुछ कम रक्खा जाता, तो इसका अधिक प्रचार होता। आशा है, प्रकाशक महाशय इस पर विचार करेंगे।

× × ×

परिमल—लेखक, श्री पं० सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'; प्रकाशक, गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय, लखनऊ; साइज़, क्राउन सोलहपेजी; पृष्ठ-संख्या २४७; मू० सादी १।।), सजिल्द २); काग़ज़ तथा छपाई बढ़िया।

हिंदी-संसार 'निरालाजी' से भली भाँति परिचित है। खड़ीबोली में उनका एक विशेष स्थान है। प्रस्तुत पुस्तक उन्हीं की कृति है। पुस्तक काव्यदृष्टि से तीन खंडों में विभक्त की गई है। यह प्रसन्नता का विषय है कि खड़ीबोली की ओर हिंदी-प्रेमियों का ध्यान दिन दूना रात चौगुना बढ़ता जा रहा है। साथ ही हिंदी-भाषा के कोष को विविध साहित्यिक मणिमुक्ताओं से भरने का भी सफल प्रयास हो रहा है। हम किसी बोली के काव्य-मर्मज्ञ तो हैं नहीं, पर इतना हमें विश्वास है कि 'परिमल' हिंदी-जगत् में एक नई लहर, नई स्फूर्ति देर-सबेर से ज़रूर पैदा करेगा और हिंदी-साहित्य की स्थायी सामग्री में परिगणित होगा।

'परिमल' में 'खोज और उपहार', 'पतनोन्मुख', 'यमुना के प्रति', 'तुम और मैं', 'रास्ते के फूल से', 'शेफालिका' और 'पंचवटी-प्रसंग'-शीर्षक रचनाएँ बड़ी ही सुंदर बन पड़ी हैं। उनमें भाव है, भाषा का ओज है, और नेत्रों के सामने पढ़ते-पढ़ते एक तद्जनित चित्र-सा खिंच जाता है। निरालाजी के गीतों में चित्र-काव्य का पूरा मज़ा है। आशा है, इस पुस्तक का काफ़ी आदर होगा। हम निरालाजी को उनके इस परिश्रम के लिये शुद्ध हृदय से बधाई देते हैं। पुस्तक प्रकाशक से प्राप्त हो सकती है।

× × ×

शिशु-पालन—लेखिका, श्रीमती दुर्गादेवी और श्री मायादेवी; प्रकाशक, इंडियन-प्रेस लिमि०, प्रयाग; पृष्ठ-संख्या २४०; सफ़ाई-छपाई अच्छी।

पुस्तक का विषय नाम से ही प्रकट है। इसमें गर्भावस्था से लेकर प्रारंभिक शिक्षा की अवस्था तक की प्रत्येक आवश्यक बातें दी हुई हैं। विषय से संबंध रखनेवाले कई चित्र भी दिए गए हैं। शिशु-पालन की ऐसी कोई भी बात छूटने नहीं पाई जिसकी कि एक गृहस्थी में ज़रूरत पड़ती हो। हमारा अनुरोध है कि प्रत्येक महिला को 'शिशु-पालन' पढ़ना चाहिए। पुस्तक काफ़ी परिश्रम और छानबीन के साथ लिखी गई है, इसके लिए दोनों देवियाँ धन्यवाद पाने की अधिकारिणी हैं। बहुत ढूँढ़ने पर भी पुस्तक का मूल्य हमें कहीं पर भी दिखलाई न पड़ा। उत्सुक सज्जन प्रकाशक से पूछकर मँगा सकते हैं।

× × ×

वार-वधू-विवेचन—प्रकाशक, साहित्यसदन, अमृतसर; पृष्ठ ३३६; मू० साधारण संस्करण ३); छपाई-सफ़ाई साधारण है।

इस पुस्तक में वेश्याओं का ऐतिहासिक दृष्टि से वर्णन किया गया है। साथ ही वेद, पुराण बाइबिल, क़ुरान आदि प्रामाणिक ग्रंथों द्वारा उनका प्रत्येक युग और काल में होना साबित किया गया है। उनकी महत्ता और उनका समाज में क्या स्थान था और है, यह भी बतलाया गया है। पुस्तक में अन्वेषण की अच्छी सामग्री है। कुछ वर्तमान प्रसिद्ध गायिकाओं का भी वर्णन है। आरंभ में मैनका का जो चित्र दिया गया है, वह भद्दा है। उसे निकाल देना चाहिए। भाषा में अशुद्धियाँ हैं, कहीं-कहीं बेमुहाविरे भी हो गई हैं। पुस्तक का मूल्य भी अधिक है। जो लोग मँगाना चाहें, प्रकाशक को पत्र लिखकर मँगा सकते हैं।

रामसेवक त्रिपाठी

कृषि, शिल्प और वाणिज्य

१. भारतवर्ष में विद्युत् द्वारा कृषि

कृषि ही किसी देश की, विशेषतः भारतवर्ष की, सबसे महान् संपत्ति है—यह बात दुर्भाग्यवश हम लोगों के ध्यान में भली भाँति अब तक नहीं आई है। हमारे यहाँ के विद्वान् तथा उत्साही नवयुवकगण और कृषिगण इस विषय पर उतनी महत्त्व-पूर्ण दृष्टि नहीं डाल रहे हैं। विचारणीय यह है कि किस प्रकार हमारे कृषि-विभाग की उन्नति हो तथा आधुनिक नए उपाय उसे लाभप्रद सिद्ध हों। वैज्ञानिक खेती एक ऊसर भूमि को धन-धान्य-पूर्ण कर देती है। जहाँ पूर्व धान की एक बाली लगती थी, वहाँ दो-दो बालियाँ लहलहाने लगती हैं। आधुनिक वातावरण में विद्युत्-शक्ति नित्य अपने नवीन-नवीन आश्चर्यों का प्रदर्शन कर रही है। इसलिये हम लोगों का यह अविरल प्रयत्न होना चाहिए कि इससे हम कृषि-विभाग में भी पूर्ण लाभ उठावें।

जिस स्थान पर प्रांतीय इलेक्ट्रिक कंपनी के विद्युत्-वाही तार बहुत समीप हैं, वहाँ कृषकगणों को उनसे लाभ उठाने में थोड़ा भी संकोच न होना चाहिए। किंतु दुर्भाग्यवश भारतवर्ष में अभी इतने बृहत् विद्युत्-केंद्र बहुत थोड़ी ही संख्या में हैं, जिनसे छोटे-छोटे प्रांतों में भी विद्युत्-शक्ति पहुँचाई जा सके। यदि हम लोग थोड़ा भी प्रयत्न करें, तो पंजाब के Mandi-Hydro-Electric-project-जैसे विद्युत्-केंद्र (Central Power Stations) समस्त भारतवर्ष में विद्युत्-शक्ति प्रदान कर सकते हैं। अथवा सुयोग्यरूप से निर्मित वाष्प द्वारा संचालित इंजिन भी केवल कुछ ही बुद्धिमान् मनुष्यों की देखरेख में बहुत सस्ते दर से भारतवर्ष के हरएक कोने में विद्युत्-शक्ति का प्रचार कर सकता है।

सामयिक कृषि केवल दो बातों पर निर्भर हो रही है—१ सस्ती मजूरी, और २ समय की अनुपयोगिता। समस्त दिन काम करके एक हल चलानेवाला एक एकड़ भूमि से अधिककदापि नहीं जोत सकता। स तरह उसका ख़र्चा अर्थशास्त्र की दृष्टि से ३ रु० रोज़ से कम नहीं लग सकता। किंतु विद्युत्-शक्ति यही काम उसके लिये कुछ ही घंटों में तथा कुछ ही आने पैसे में कर देगी। ६ इंच गहरी हलाई (Furrow) रखने पर, १४ से १६ किलोवाट आवर (K. W. H.) विद्युत्-शक्ति एक एकड़ भूमि के लिये पर्याप्त होगी। यदि भारतवर्ष की कृषि-प्रजा और देशों से नीचा नहीं देखना चाहती, तो उसे कृषि-विभाग में नए-नए तरीक़ों का आवाहन करना ही होगा। पुराने तरीक़ों का बहिष्कार अतीव आवश्यक है। बाज़ार में विशेषतः किसानों के ही लिये बनाए गए Squirrel cage electric motors मिलते हैं तथा Ball Bearings पर चलनेवाले हलों की भी कमी नहीं है। ये हल इन्हीं मोटरों द्वारा चलते हैं तथा मोटरों के लिये विद्युत्-शक्ति विद्युत्वाही तारों से ली जाती है। यदि इनका उपयोग किया जाय, तो बहुत सस्ते में ही अच्छा काम हो जायगा।

यह दो दिन में उतना ही काम करेगा, जितना अच्छे हृष्ट-पुष्ट बैलों की जोड़ी १० दिन में करेगी। और इसी

प्रकार फ़सल काटने तथा दवाँने में भी इसकी सहायता से मज़दूरी तथा समय की बचत हो सकती है। अकाल में भी विद्युत्-शक्ति द्वारा संचालित पंपकुओं से उन हरे-भरे पौदों की रक्षा करेंगे, जो अब तक कभी के काल-कवलित हो चुके होते। पंप भी एक साल के लिये एक एकड़ भूमि के वास्ते २५ रु० या उससे भी कम में तैयार किए जा सकते हैं।

पंप द्वारा द्रव-खाद काम में लाने से खेती अच्छी होती है। Electro-culture से खेती में बहुत लाभ होता है। भूमि के जल्दी विस्तृत न होनेवाले पदार्थों (Soil colloids) में ऋणविद्युत् वर्तमान रहती है। यदि एक ऋणविद्युत् द्वारा आच्छादित ताम्रपत्र अथवा लौहपत्र भूमि में गाड़ दिया जाय, तो उस पर कुछ जल जमा हो जाता है। यह उस पत्र के लिये चिकनाहट (Lubricant) का काम देता है। इस प्रकार हल के फार को ऋणविद्युत् द्वारा आच्छादित करके खेती करने से हल के नुकीले मुँह जल्दी बेकार तथा नष्ट नहीं होते। इससे एक एकड़ भूमि जोतने के लिये निर्दिष्ट कार्य में भी बहुत कुछ कमी हो जाती है। सूखी घास धूप से अच्छी बनती है। किंतु कृत्रिम ढंग से सुखाकर भी हम वैसी ही घास तैयार कर सकते हैं। चावल और अन्य अन्न दुधिया अवस्था (Milk Stage) में ही काटे जाते हैं, और फिर कृत्रिम तरीक़े से सुखाए जाते हैं। इस प्रकार उसी क्षेत्र में उसी फ़सल में हम एक से अधिक बार अन्न उत्पन्न कर सकते हैं तथा भूसी भी जानवरों के खाने के लिये अधिक मिल सकती है। कहा जाता है कि विद्युत्-शक्ति की सहायता से हम २० टन अन्न को काटकर, दवाँकर, साफ़ करके २० घंटे में एक स्थान से दूसरे स्थान को भेज सकते हैं। इसमें केवल १ आदमी काटने के लिये, ४ आदमी सफ़ाई आदि करने के लिये, तथा ३ या ४ आदमी लारी पर ढोने के लिये चाहिए।

किंतु धन का अभाव एक बड़ी समस्या है। छोटे-छोटे प्रांतों में विद्युत् के प्रचार के लिये धन की आवश्यकता है। ब्रिटिश गवर्नमेंट का, इसमें हस्तक्षेप कर, धन की सहायता देकर उत्साहित करना धर्म है। एक बार यह चल जाने पर स्वयं अपनी सहायता कर लेगा तथा कुछ दिनों बाद धन भी देने लगेगा। विद्युत्-प्रचार का ख़र्च ३५० से ४०० रु० तक एक एकड़ भूमि के लिये, जो विद्युत्-केंद्र से अधिक दूरी पर नहीं है, अनुमानित किया जाता है। इस देश की आर्थिक उन्नति के लिये विद्युत् द्वारा कृषि का होना एक बड़ी आवश्यकता है। कृषि-विभाग के मंत्रीगण विद्वान् तथा निपुण कृषक होने चाहिए, जो आधुनिक उपायों को कार्यरूप में परिणत करने में पूर्ण समर्थ हों।

हमारे देश के कृषक बड़े सुस्त तथा पुरा-प्रथावलंबी हैं। थोड़े-बहुत कार्यकुशल कृषकों को भी यह मालूम नहीं है कि विद्युत्प्रवाह किसी प्रकार की सहायता प्रदान कर सकता है। इस बात की अत्यंत आवश्यकता है कि Electrical Engineers हमारी स्थिति का अध्ययन कर किसानों को विद्युत्-शक्ति से होनेवाले लाभों को समझावें। किसानों का जीवन कृषि पर ही निर्भर है। वे सदा अनिश्चित ऋतु के साथ जुआ खेला करते हैं। बहुत दिनों के अनुभव ने उन्हें परंपरागत—लकीर के फ़क़ीर बना डाला है। उनके पास इतना रुपया भी नहीं है कि वे नए-नए प्रयोग इस संबंध में करें। उनके लिये ऋतु से जुआ खेलना ही बहुत है। ज़मींदारों को ही, न कि कृषकों को इंजीनियर्स की मदद से नए-नए प्रयोगों का करना उचित है। मुझे विश्वास है कि एक मर्तबा यह बात यदि वे अच्छी तरह से समझ जायँ कि इससे कितना लाभ होता है, तो वे सदा विद्युत्-शक्ति की सहायता लेने के लिये तैयार रहेंगे ; क्योंकि वे देखेंगे कि क्षेत्र सदा जोतने के लिये ही केवल बेकार रहता है। इसके बाद जो मशीनें काम में लाने के लिये बनाई जायँ, उनके कल-पुर्ज़े जहाँ तक साधारण हो सकें, रक्खे जायँ। इससे एक साधारण किसान भी छोटी-मोटी मशीन की मरम्मत स्वयं कर लेगा; नहीं तो उसे बनवाने में अधिक ख़र्च के भय से वह डरता है।

गवर्नमेंट से सहायता न मिलने पर हमें स्वयं इस विषय में आपस में चंदा कर किसानों की मदद करनी चाहिए। यदि इस ओर किसी प्रकार का यत्न न किया गया, तो अधिकतर कृषिगण उसी पुरानी लीक पर चलते रहेंगे। यदि हम उन्हें समझाना चाहें, तो हमें भली भाँति तैयार रहना चाहिए; क्योंकि ये लोग सबसे अधिक लकीर के फ़क़ीर-दिमाग़वाले हैं और केवल अकाट्य-प्रमाण तथा धन की बचत दिखाने से ही अपनी पुरानी प्रथा कदाचित् बदल सकते हैं।

इसके पश्चात् किसानों की शिक्षा का प्रबंध भी आवश्यक है। शिक्षा का अर्थ केवल किताबें रटा देना न होना चाहिए। अपने कार्य में चतुर एक कृषक एक ग्रेजुएट से कहीं श्रेष्ठ है। हरएक विषय की अभ्यास-संबंधी शिक्षा अवश्य होनी चाहिए। भारतवर्ष की उन्नति उसके लालों की उचित शिक्षा पर ही निर्भर है। एक कृषक के पुत्र के लिये कृषि-शिक्षा तथा किस प्रकार विज्ञान के आश्रय से कृषि में उन्नति होगी, यह बतलाना अधिक उपयोगी सिद्ध होगा, न कि उसे मिल्टन (Milton) के बाप-दादों का नाम बतलाया जाय। शेक्सपियर स्वयं कहता है— "World can not subsist on literature alone." अर्थात् संसार केवल साहित्य पर ही निर्भर नहीं रह सकता।

अमेरिका सबसे महान् कृषि-संबंधी देश है। अरबों रुपयों की उसकी संपत्ति केवल कृषि में ही है। भारतवर्ष को भी उसी श्रेणी तक पहुँचने का उद्योग करना चाहिए।

विज्ञान के समस्त विभागों से उपयोगी बातें लेकर हमें अपनी खेती के ढंग को सुधारना चाहिए। *

देवराज सारद

× × ×

* अनुवादक राजकृष्ण गुप्त

२. कृषि-कमीशन

(आषाढ़ की संख्या से संबद्ध)

ऐसी सोसाइटियों में अवैतनिक काम करनेवालों ने और भी लुटिया डुबोई है। यदि अवैतनिक पदाधिकारी दिल से काम करें, तो सोसाइटी थोड़े ख़र्च में ही किसानों को सहायता पहुँचा सके। अगर यह सब कुछ न हो, तो उनके ज़िम्मेवार अफ़सर तो सब प्रकार से योग्य नियुक्त होने चाहिए, जो अपने को इस आंदोलन में लगा दें।

सरकार ने आरंभ में इस आंदोलन को सहायता पहुँचाने के लिये पूँजी के रूप में बहुत बड़ी रक़म दी थी; अब सने देना बंद कर दिया है। पर इसे तो कमीशन भी स्वीकार करता है कि अभी ऐसी अवस्था नहीं हो गई है कि सरकार सहायता बंद कर दे। उसे इस रूप में तो अवश्य सहायता देनी चाहिए—

(१) अवैतनिक कार्यकर्ता जब शिक्षा प्राप्त करते हों या खेत में काम करते हों, तब उन्हें जेबख़र्च दे।

(२) सरकार उन संस्थाओं की सहायता करे जो इस प्रकार की शिक्षा का प्रचार करती हों।

(३) सरकार सहकारी आंदोलन की वृद्धि के लिये— इस प्रकार खुलनेवाली संस्थाओं की सहायता करे, जो छोटे-छोटे किसानों की सहायता करें, किसानों के बालकों में शिक्षाप्रचार करें और उन्हें खेती-बारी में सहायता पहुँचावें। सरकार को शिक्षा-प्रचार में बहुत कुछ ख़र्च करना चाहिए।

(४) जिन स्थानों पर लोग पिछड़े पड़े हुए हैं, उन्हें ऊपर उठाने के लिये और उनकी ख़राब ज़मीन में सुधार करने के लिये सरकार को सहायता देनी चाहिए।

कमीशन की यह राय उचित प्रतीत होती है कि ज़िले और तहसील के ख़ज़ानों को जो सहूलियतें सरकार ने दे रक्खी हैं, वे आगे से सब सहकारी सोसाइटीज़ को मिलनी चाहिए, जो अपने आंदोलन द्वारा किसानों को रुपए से सहायता करने में समर्थ हों।

कमीशन को अपनी जाँच से यह पता लगा है कि छोटी-छोटी सोसाइटीज़ बड़ी रक़म नहीं दे सकतीं। हमारे विचार से उन्हें बड़ी रक़म देने के फेर में पड़ना भी नहीं चाहिए। इसके लिये तो देश में पिछले वर्षों में ज़मीन बंधक रखनेवाले बैंकों की योजना सामने आई है। ये बैंक भी सभी प्रांतों में को-आपरेटिव सोसाइटीज़ के क़ानून के आधार पर खुल सकते हैं। बड़े स्केल पर खेती करनेवालों को सहायता पहुँचाने के लिये इनका खुलना भी अत्यंत उपयोगी है। लैंड इंप्रूवमेंट-लोंस-एक्ट के अनुसार ये बैंक खुल सकते हैं। और सरकार और कोई सहायता न देकर डिबेंचर के ब्याज की गारंटी दिलाने की सहायता काफ़ी कर सकती है। यह भी ध्यान में रक्खा जाय कि बाज़ार में प्रतिद्वंद्विता के लिये छोटे-छोटे बैंक नहीं खुलने चाहिए। इसके लिये सरकार को केंद्रीय संस्था खोलकर, उसे नियंत्रण का भार सौंपना चाहिए। देश में ऐसे बैंकों की बड़ी आवश्यकता है। ये तो सब क्रेडिट सोसाइटीज़ हैं, जो किसानों की मिलकियत पर रक़म देती हैं। पर देश में अवस्था तो ऐसी है कि किसान ऋण से—सिर से पैर तक—डूब गए हैं। अपने उद्धार के लिये उनके पास कुछ भी नहीं रह गया है। ऐसी भयंकर और पीड़ित अवस्था में ये सोसाइटीज़ और सहकारी मंडल क्या कर सकते हैं। फिर ऋण के भार से डूबे रहने के कारण वे न तो बीज पा सकते हैं, और न अपनी पैदावार ही उठा सकते हैं। इसके लिये कहा जाता है कि देश में किसानों का बोझ हलका करने के लिये क्रय-विक्रय-सोसाइटीज़, बीज-सोसाइटीज़, पशु-बीमा-सोसाइटीज़ और दूसरे प्रकार की नानक्रेडिट सोसाइटीज़ भी खुली हैं। और उनमें सफलता भी मिली है। पर अभी जैसी उन्नति और उनकी वृद्धि होनी चाहिए, वैसा कुछ नहीं हुआ है। फिर एक सोसाइटी एक ही काम करे, तो अच्छा है। कारण, सब ओर दौड़ने से एक काम भी पूरा नहीं पड़ता है। सारांश यह कि किसानों को ऊपर उठाने के लिये सहकारी मंडल के हर एक रूप की अत्यंत आवश्यकता है। पंजाब की फ़ार्मिंग सोसाइटी, सेल सोसाइटीज़ बंबई और पंजाब की तथा इरीगेशन-सोसाइटीज़ बंगाल की—ये इस संबंध में विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। सरकार को को-आपरेटिव-डिपार्टमेंट द्वारा भी सोसाइटीज़ को उत्तेजन देना चाहिए।

किसानों के हित के काम सरकार को इन्हीं के द्वारा करने चाहिए। और किसानों के संबंध में कोई क़ानून भी इन्हीं के द्वारा सरकार बनावे, तो ज़ुल्म और अत्या-

चारों की भी कमी हो सकती है। कारण, को-आपरेटिव-डिपार्टमेंट का संचालन किसी चाके के द्वारा न होकर किसानों की संगठित सोसाइटियों द्वारा होने पर—किसानों के हित के सब काम होंगे। को-आपरेटिव सोसाइटीज़ के रजिस्ट्रार भी अनुभवी हों। उनके सहयोग के लिये कृषि-विशेषज्ञ डिप्टी डायरेक्टर हों, जो सहकारी मंडलों के प्रचार में सहायता पहुँचावें।

सड़कों के संबंध में यह बतलाया गया है कि आज-कल मोटरों का व्यवहार बढ़ जाने से आम सड़कें उनके चलने लायक़ नहीं रह गई हैं। सेना की सड़कें छोड़कर अधिकतर सभी प्रांतों में सड़कों का नियंत्रण हस्तांतर-विभाग के अधिकार में है। रोडस्-संबंधी एक कमेटी भी सरकार ने बिठाई है, जिसके संबंध में हम फिर कभी लिखेंगे। पर कमीशन का कहना है कि किसानों के गाँवों की सड़कों में सुधार होने चाहिए। सड़कें होने पर ही किसान सुबीते से अपनी पैदावार शहरों में ला सकेंगे। पानी के संबंध में बहुत कुछ सुबीता तो हो चुका है। पर अभी सभी प्रांतों में यथेष्ट सुधार के लिये यह आवश्यक है कि एग्रीकल्चर-रिसर्च की कौंसिल द्वारा पूर्ण रूप से अनुसंधान और उसकी सिफ़ारिशों को पूरा करने में सरकार सहायता पहुँचावे।

यह पता चला है कि कृषि-विभागों के प्रयत्न से किसी अंश तक किसानों की पैदावार की क़िस्म और वृद्धि में उन्नति हुई है। पर वस्तुतः कृषि-विभागों का प्रयत्न नगण्य है। इसी से तो कमीशन को भी पूरी-पूरी रिपोर्ट नहीं प्राप्त हो सकी। कृषि-विभाग ख़ूब सहायता देने लगें और पैदावार अच्छी और अधिक होने लगे, तो फिर किसान क्यों ऋणी रहने लगे? किसानों को अपनी पैदावार बेचने का भी संगठित आयोजन देश में कहीं पर नहीं है। अच्छे-अच्छे बाज़ार हो सकते हैं। पर किसान उनसे कुछ भी लाभ नहीं उठा पाते। आढ़तिए और सटोरिए जो लाभ उठाते हैं, उससे किसान वंचित रहते हैं। यह बात ठीक है कि किसान व्यापार में नहीं पड़ सकते; किंतु फिर भी वे उससे जुदा नहीं रह सकते कि वे उसके प्रभाव से एकदम दूर रहें या वे दाल में नमक के बराबर लाभ उठावें। बाक़ी का सब लाभ व्यापारी लेवें। बंगाल की पाट की पैदावार से व्यापारी करोड़पति और अरबपति बने फिरते हैं; पर किसानों के पास झोपड़ी भी नहीं है, खाने को पूरा अन्न नहीं है, मलेरिया के समय दवा-दारू के लिये दो पैसे नहीं हैं! यदि बाज़ारों का संगठन उनके अनुकूल हो, तो वे अपनी पैदावार से अधिक से अधिक लाभ उठा सकते हैं। बरार में बंबई के क़ानून द्वारा रुई बेचने का जो आंदोलन हुआ है, वह प्रशंसनीय प्रयत्न कहा जा सकता है।

ज़मीन की छोटी-छोटी मालकियत के संबंध में कमीशन का कहना है कि इससे पैदावार को नुकसान पहुँचता है। हिंदू और मुसलमानों दोनों में पैतृक संपत्ति सभी पुत्रों को बराबर बटती रहने से ज़मीन का सुधार नहीं हो पाता है। पर इस विषय में हो ही क्या सकता है। हाँ, सहकारी मंडल द्वारा खेती करने से इस त्रुटि को दूर किया जा सकता है। पंजाब के सहकारी मंडल ने आशातीत उन्नति की है, पर मध्यप्रदेश में क़ानून द्वारा यह त्रुटि दूर की गई है। बंबई-प्रांत में क़ानून बनने-वाला है।

ज़मीन पर रुपया देने के संबंध में कमीशन की सिफ़ारिश है कि उसकी मुद्दत अधिक होनी चाहिए और साथ ही जो थोड़ी रक़म दी जाती है, उसमें भी भारी इज़ाफ़ा होना चाहिए। पंजाब, बुंदेलखंड और बंबई प्रांत में इस प्रकार के भी क़ानून बने हैं, जो खेती-बारी न करनेवालों को ज़मीन ख़रीदने का अधिकार नहीं देते हैं।

बाहर से देखने पर तो ये क़ानून अच्छे हैं। पर उनका उपयोग वस्तुतः हानिकारक हुआ है। उदाहरण के लिये पंजाब का क़ानून हिंदुओं के लिये घातक सिद्ध हुआ है। वे मुसलमान, जो खेतीबारी नहीं करते हैं, ज़मीन बंधक रख सकते हैं; पर वे हिंदू-व्यापारी उससे वंचित कर दिए गए हैं, जो खेती-बारी भी करते हैं। परिणाम यह हुआ कि हिंदुओं के लिये देवपूजा के मंदिर आदि के लिये भी ज़मीन मिलना कठिन हो गया है।

ज्वाइंट स्टाक बैंकों से छोटे-छोटे किसानों को किंचित् सहायता नहीं मिलती है। उनसे तो बड़े-बड़े ज़मींदार और दूसरे लोग ही ऋण ले सकते हैं, जिनका बाज़ार में लेन-देन रहता है। पर जहाँ किसानों को ज़मीन जोतने को दी जाती है, उसकी उन्नति नहीं हो पाती है। न किसान ही अधिक लाभ उठाते हैं और न ज़मीन में ही अच्छी फ़सल होती है। इस कठिनाई को दूर करने के लिये

कमीशन ने कोई क़ानून बनाने की सिफ़ारिश की है। ऐसा क़ानून बनाना आवश्यक बतलाया गया है जिससे ऐसी ज़मीनों में बिना कठिनाई के रुपया लगाया जा सके। दूसरों को ज़मीन जोतने के लिये देने के बजाय विदेशों में व्यवहार में आनेवाली होम-फार्म्स-पद्धति बड़ी उपयोगी है।

ज़मीन सुधारने के लिये एक लैंड-इंम्प्रूवमेंट-लोन-एक्ट है। कमीशन का कहना है कि उसने अच्छा काम किया है। पर अभी तक उसकी उपयोगी शर्तें साधारण किसानों के समक्ष में ही नहीं आई हैं। मगर जब इस क़ानून के द्वारा लैंड-मार्गेज बैंक संगठित रूप में सर्वत्र खुल जायँगे, तब साधारण लोग भी इस क़ानून से लाभ उठाने लगेंगे। किसानों के ऋण के संबंध में भी कमीशन को लिखना पड़ा है। उसने यह स्वीकार किया है कि ग़रीब किसानों पर ऋण का भार बढ़ता चला जाता है। कमीशन के सदस्य असली उपाय जानते थे, पर उन्होंने अपनी कमज़ोरी से उसका उल्लेख नहीं किया। कमीशन ने यह तो कहा कि किसान अशिक्षित हैं। उन्हें भविष्य की आमदनी और पूँजी तक गिरवी रख देनी पड़ती है, और महाजन उससे लाभ उठाते हैं। महाजन क़ानून और अदालत के बल पर अपनी शक्ति बढ़ाते जाते हैं, इसे कमीशन को भी स्वीकार करना पड़ा है। कमीशन को यह भी स्पष्ट कहना पड़ा है कि किसानों की ऋण-समस्या को हल करने के लिये सरकार ने जो क़ानून बनाए हैं वे नाकामयाब हुए हैं। कमीशन से किसी स्थान पर यह सिफ़ारिश की गई थी कि सिविल प्रोसीजर कोड से चौपाए, औज़ार और पैदावार बेचने से मुक्त किया जाय। बिहार और उड़ीसा का The Kamiauti Agreements Act भी किसी काम का नहीं रहा। दक्षिण का रिलीफ़ एक्ट भी इसी प्रकार का है। Usurious Loans Act का कहीं कुछ विचार नहीं हो रहा है। ज़रूरत है कि सभी प्रांतों में इस पिछले क़ानून के संबंध में विचार हो, पंजाब का साहूकारा क़ानून, और अँगरेज़ी साहूकारा क़ानून १९२७, इन सबमें भी सुधार होने चाहिए। किसानों के दिवालिया क़ानून की भी जाँच होना ज़रूरी है।

भिन्न-भिन्न तौल और माप की कमी का दूर करना भी अत्यावश्यक है। भिन्न-भिन्न माप प्रांतों में ही नहीं है। पर एक ज़िले के ही कई गाँवों में जुदी-जुदी तौल देखी गई है। इस सबसे किसानों के ही हित में बाधा पहुँचती है, गाँव में तो ऊँची तौल होती है, और शहरों में कम। इससे व्यापारी ख़ूब लाभ उठाते हैं। इसलिये सारे देश में क़ानून द्वारा एक तौल होना अत्यंत उपयोगी है। इस संबंध का क़ानून बनना किसानों के हित के लिये पूर्ण रूप से वांछनीय है। न-मालूम सरकार ने इस संबंध की १९१३ की कमेटी की सिफारिशों के संबंध में क्या विचार कर रक्खा है। पर अब वर्तमान अवस्था को देखते हुए फिर इस संबंध की जाँच होनी चाहिए और इस बात का पूर्ण प्रयत्न किया जाय कि सारे देश में एक तौल हो जाय। माप भी सारे भारतवर्ष में एक हो। भिन्न-भिन्न माप होने से भी बड़ी कठिनाई उठानी पड़ती है। यदि यह त्रुटि दूर हो जाय, तो सरकार और प्रजा दोनों का ही हित है।

किसानों की पैदावार सुबीते से बेचने का प्रश्न अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। गाँवों के साधारण किसान पढ़े-लिखे होने पर भी कुछ ज्ञान नहीं रखते हैं। यदि सभी प्रांतों के कृषि-विभागों में पैदावार बेचने के लिये एक-एक अफ़सर की नियुक्ति हो और वे किसानों को समस्त घटनाएँ और परिस्थितियों से सूचित करते रहें, तो निश्चय ही बड़ा सुधार हो सकता है। योरप में भारतीय पैदावार की माँग बढ़ती चली जा रही है। इसलिये भारतवर्ष की तनख़्वाह से रहनेवाले लंदन में ट्रेडकमिश्नर और कलकत्ते का कमरशियल इंटेलीजेशन डिपार्टमेंट भी सहायक हो सकते हैं। ट्रेड कमिश्नर और कमरशियल डिपार्टमेंट योरप की सच्ची माँग और परिस्थिति के समाचार सभी प्रांतों के किसानों को दे सकते हैं। व्यापार बढ़ने पर अन्य देशों में भी ट्रेड कमिश्नरों की नियुक्ति की जा सकती है।

खेतीबारी के अनुसंधान का प्रश्न किसी से कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। इसमें कभी सच्चे दिल से प्रयत्न नहीं हुआ। भारतीय पैदावारों की जाँच बिगड़े दिल से ही सदा हुई है। पूसा में रिसर्च इंस्टीट्यूट भारत-सरकार के ख़र्च से चलता है। अनुसंधान का काम ज़ोरों पर चलाने के लिये इसकी शाखाएँ सभी प्रांतों में खुलनी चाहिए, या कमीशन की सिफ़ारिश के अनुसार कृषि-विभागों से इसका संबंध रहे? रिसर्च के विशेषज्ञों की

संख्या बढ़ाना भी आवश्यक है। इस डिपार्टमेंट को रिसर्च में विशेषज्ञ बननेवाले छात्रों के वज़ीफ़े अपने फंड से देने चाहिए। यदि अच्छे विशेषज्ञ सच्चे दिल से काम करने के लिये जुट पड़ें, तो पैदावार सुधारने में बड़ी सहायता हो और जिन पैदावारों के दाम नहीं उठते हैं या किसी काम की न समझकर वह नष्ट कर दी जाती हैं, उनसे भी किसान लाभ उठाने लगें। कमीशन ने सिफ़ारिश की है कि एग्रीकल्चरल रिसर्च कौंसिल की स्थापना हो, जो भारतवर्ष-भर में कृषि-संबंधी खोजों के लिये उत्तेजना और नियंत्रण रक्खेगी। यह कौंसिल प्रांतीय और भारतीय रिसर्च विभागों का न तो शासन करेगी और न नियंत्रण ही रक्खेगी। यह तो एक स्वतंत्र संस्था होगी। इस संस्था से प्रांतीय और भारतीय रिसर्च संस्थाएँ सलाह ले सकती हैं। उनके रिसर्च प्रोग्राम की यह कौंसिल आलोचना करेगी और अपनी स्वीकृति देगी। कमीशन ने इस संस्था के लिये बहुत ज़ोर दिया है। पर हमारे विचार से इस कौंसिल के कर्मचारी भारतीय हों। विदेशियों के रहने से कोई लाभ नहीं हो पाता। कृषि और विज्ञान की योग्यता प्राप्त करने में अनेक भारतीयों ने ख्याति प्राप्त की है। इसलिये सरकार को उन्हें ही काम में लगाने का प्रयत्न करना चाहिए। कमीशन ने इस कौंसिल के अंतर्गत प्रांतीय कमेटियाँ खोलने की भी सिफ़ारिश की है, और कर्मचारियों की नियुक्ति के संबंध में राय प्रकट की है कि पोस्ट ग्रेजुएट की योग्यता प्रांतीय कमेटियों के लिये मानी जाय।

कमीशन का कहना है कि युनिवर्सिटियों को एक नए विषय के लिये छात्रों को तैयार करने का अवसर प्राप्त होगा। ये ऐसे छात्र तैयार होंगे, जो देश के लिये बहुत उपयोगी होंगे, जिन्हें काम भी शीघ्र ही मिला करेगा। किसी पैदावार के संबंध में व्यापारिक दृष्टि से सरकार रिसर्च करे, तो अच्छा है; नहीं तो व्यापारिक संस्थाओं को रिसर्च-विशेषज्ञों की सहायता से प्रतिवर्ष अनुसंधान कराने के उद्योग करना चाहिए। भारतीय सेंट्रल काटन कमेटी का कार्य इस संबंध में अनुकरणीय है। पाट के संबंध में तो यह सबसे अधिक आवश्यक है कि किसानों के हित के लिये खेतों से फ़ैक्टरी तक के व्यापार पर पूर्ण लक्ष्य दिया जाय। एग्रीकल्चरल रिसर्च कौंसिल का अध्यक्ष सेंट्रल जूट कमेटी का अध्यक्ष हो। सरकार इस कमेटी को प्रतिवर्ष पाँच लाख रुपए की सहायता दिया करे।

पशुओं की देखभाल के लिये २५ हज़ार पशु पीछे एक सहायक, विशेषतः सर्जन, की नियुक्ति की राय दी है। इसके अलावा एक अफ़सर ज़िले में रक्खा जाय। वह भी विशेषज्ञ सर्जन हो, उसकी देखभाल ६ लाख पशुओं के अतिरिक्त अपने चार्ज की सारी ज़मीन पर रहेगी। ब्रिटिश भारत में २७२ ज़िले हैं, इसलिये समस्त प्रांतों में क़रीब ३०० अफ़सर नियुक्त होंगे। सहायक सर्जनों की संख्या इससे चौगुनी होगी। अर्थात् वे क़रीब ६००० हज़ार होंगे। देशी राज्यों का भी सहयोग लिया जाया करेगा। इस प्रकार वर्तमान सर्जनों के अलावा नए सर्जनों की संख्या ४०० और सहकारी सर्जनों की क़रीब ७५०० और बढ़ जायगी।

गाँवों के स्वास्थ्य के लिये भी कमीशन ने सरकार का ध्यान आकर्षित किया है। सरकार की उपेक्षा से गाँवों का स्वास्थ्य भयंकर होता जा रहा है। सरकार की अपेक्षा तो प्रजा की संस्थाएँ यथाशक्ति काम कर लोगों को प्राण-रक्षा में सहायता देती हैं। पूने की सेवा-सदन सोसाइटी, बंगाल की को-आपरेटिव एंटीमलेरिया सोसाइटी और दक्षिण-भारत में ईसाइयों के एसोसिएशन ख़ूब काम कर रहे हैं।

बंगाल से यदि मलेरिया का निर्वासन हो जाय, तो बंगाली यही समझेंगे कि उन्हें स्वराज्य मिल गया। वर्तमान तालाबों के रूपांतर पर न तो कमीशन ने कुछ सोचा और न बंगाल-सरकार ही कुछ प्रयत्न करती है। बंगाल के गाँवों में तालाबों की प्रथा रोकने का उपाय करना चाहिए। तालाबों के जिस पानी को बंगाली बंधु गंदा कर डालते हैं, उसे ही वे पीते हैं। इसके अलावा ताड़ की पत्तियों से आच्छादित होने के कारण पानी पहले से ही सड़ा और कीटाणुओं से भरा होता है, काई भी होती है। इन्हीं कारणों से गरमी के दिनों में बंगाल में भयंकर मलेरिया का प्रकोप प्रतिवर्ष होता है।

शिक्षा के संबंध में कमीशन की यह सलाह बड़ी उपयोगी है कि अनिवार्य शिक्षा ब्रिटिश भारत में कर दी जाय। जो स्त्री और पुरुष न पढ़ें, उन्हें सरकारी क़ानून से पढ़ने के लिये बाध्य किया जाय। वर्तमान समय में अशिक्षा के कारण कृषकवर्ग नए-नए साधनों से

लाभ नहीं उठा पाते हैं। किसानों को इंजीनियरिंग की शिक्षा भी उनके उपयोग की देना वांछनीय है। जहाँ कमीशन ने किसानों को अपने बल पर खड़े होकर काम करने की सिफ़ारिश की है, वहाँ उसने सरकार से भी दो-चार बातें साफ़-साफ़ कह डाली हैं। सरकार को चेतावनी देते हुए कमीशन ने बतलाया है कि उसने किसानों की अवस्था सुधारने में बड़ी लापरवाही की है। कमीशन कहता है कि भारत-सरकार और प्रांतीय सरकारें—सबों को अपने अन्नदाता किसानों की चिंता सबसे पहले करनी चाहिए। उनकी अवस्था सुधारने की ओर सरकार को संगठित आयोजन द्वारा प्रयत्न करना चाहिए। सरकार को अपनी शक्ति-भर यथाशीघ्र वे सब प्रयत्न करने चाहिए, जिनसे किसान गिरी हुई अवस्था से ऊपर उठें। शताब्दियाँ गुज़र गईं, किसानों की अवस्था के संबंध में कभी कुछ अनुसंधान नहीं हुआ, और न उनके सुधार के लिये कभी कुछ सोचा ही गया।

सरकारी डिपार्टमेंट बेकार हैं, यदि वे सब प्रकार से किसानों की सहायता नहीं करते। उसी प्रकार वायसराय को भी ख़ास तौर पर कृषि के मामलों में दिलचस्पी लेनी चाहिए, जो भारतवर्ष का सर्व-प्रधान उद्योग है। पर वायसराय से भी अधिक गवर्नरों का कर्तव्य है कि वे किसानों की अवस्था सुधारें, और कृषि में उन्नति करें; क्योंकि उनका अपने-अपने प्रांत के लोगों से सीधा संबंध होता है। कृषि-विभाग के मंत्रियों पर तो पूर्ण रूप से ज़िम्मेदारी है। प्रत्येक प्रांत के सेक्रेटेरियट डिपार्टमेंट को किसानों की भलाई में पूर्ण अनुराग दिखलाना चाहिए।

जी० एस्० पथिक

× × ×

२. भारतीय वस्त्र-व्यवसाय और जापानी प्रतियोगिता

एक लेख में इस बात पर विचार किया जा चुका है कि भारतीय वस्त्र-व्यवसाय की उन्नति के मार्ग में जापानी प्रतियोगिता किस प्रकार दिनानुदिन भीषण रूप धारण कर रही है। इस लेख में उन कारणों पर विचार किया जायगा जिनके फलस्वरूप जापान, इस प्रकार की प्रतियोगिता में, सक्षम हो रहा है। भारत में जो कपास पैदा होती है, उसका एक तिहाई से अधिक भाग सिर्फ़ जापान ख़रीद करता है। इसके सिवा जापान आफ़्रिका और अमेरिका से भी कपास ख़रीद करता है। जापान की मिलों में विशेषत: भारतीय कपास का ही व्यवहार होता है, अतएव यहाँ पर सहज में ही यह ख़याल उठता है कि जापान भारत में कपास ख़रीदकर, फिर जहाज़-भाड़ा देकर उसे अपने देश को ले जाता है और तब उस कपास से कपड़ा तैयार करके भारत के बाज़ारों में बिकने के लिये भेजता है। भारत के बाज़ार में जापानी माल पहुँचने के पूर्व ही उसे सैकड़े ११) कर देना पड़ता है। किंतु इन सब असुविधाओं के होते हुए भी वह किस प्रकार भारतीय वस्त्रों के साथ प्रतियोगिता में आगे बढ़ रहा है ? इससे तो यही सिद्ध होता है कि भारतीय मिलों में कपड़ा तैयार करने में जितना ख़र्च पड़ता है, उसकी अपेक्षा जापानी मिलों में बहुत कम ख़र्च पड़ता है। इसके सिवा यह बात भी अवश्य माननी पड़ेगी कि जापानी मिलों के मज़दूर भारतीय मिलों के मज़दूरों की अपेक्षा विशेष श्रमशील होते हैं एवं जापानी मिलें भारतीय मिलों की तुलना में कम ख़र्च में चलाई जाती हैं जिससे ५० लाख तकुए (Spindles) की सहायता से ही जापान तो वर्ष में २० लाख गाँठ सूत तैयार करने में सफल होता है और भारत ८० लाख तकुए (Spindles) चला कर भी केवल १५ लाख गाँठ सूत तैयार कर सकता है। किंतु इसके साथ-साथ यह बात भी स्वीकार करनी पड़ेगी कि जापान के मिलमालिक वहाँ की सरकार और जहाज़ के मालिकों से भी सहायता प्राप्त करते हैं।

वस्त्र-व्यवसाय में जापान के मिलमालिक भारतीय मिलमालिकों के साथ प्रतियोगिता करने में किस प्रकार सक्षम हुए हैं, इस संबंध में निम्नलिखित कारणों पर विचार करने से अनेक बातें स्पष्ट हो जाती हैं—

(१) १९१९ ईसवी में अमेरिका के वाशिंगटन शहर में, Inter-National Labour Conference के अधिवेशन में, यह स्थिर हुआ था कि प्राच्य देशों के मिल-मज़दूर दिन में, १२ घंटे तथा सप्ताह में ६० घंटे से अधिक काम नहीं कर सकते। इस प्रस्ताव के अनुसार १९२० में Indian Factories Act की रचना हुई थी। जापान के प्रतिनिधि उक्त वाशिंगटन कान्फ़्रेंस में उपस्थित थे, किंतु उसके प्रस्तावानुसार अब तक भी जापान की मिलों में काम नहीं हो रहा है। १९२३ ईसवी के मई मास तक जापानी मज़दूर सप्ताह में १३२ घंटे काम करते थे और उसके बाद से सप्ताह में १२० घंटे काम कर रहे हैं जिसके फलस्वरूप जापानी मिलमालिक दिनरात कल चलाकर अधिक वस्त्र एवं सूत तैयार करने में सफल होते हैं।

१९२५ के मई मास में जेनेवा में International Labonr Conference की जो बैठक हुई थी, उसमें वाशिंगटन कान्फ़्रेंस के प्रस्तावानुसार कार्य न करने का कारण जापान से पूछा गया, तो उसके प्रतिनिधि ने उत्तर दिया कि १९३० के पूर्व जापान उक्त प्रस्ताव को कार्यान्वित नहीं कर सकता।

(२) इस समय भारतीय मिलों में बालक और स्त्रियाँ रात में काम नहीं करने पातीं, किंतु जापान में बिना किसी बाधा के बालक और स्त्रियाँ रात में मिलों में काम करती हैं। बालक और स्त्री-मज़दूरों की मज़दूरी वयस्क पुरुष-मज़दूरों की मज़दूरी की अपेक्षा कम पड़ती है, जिससे जापान के मिलमालिकों को भारत के मिल-मालिकों की अपेक्षा मज़दूरी भी कम देनी पड़ती है। रात में मिलों में स्त्रियों को नियुक्त करने से अनेक अनाचार एवं व्यभिचार फैलते हैं और बालक-मज़दूरों को भरती करने से उनके स्वास्थ्य को भयंकर हानि पहुँचती है। अतएव किसी भी सभ्य देश में बालक और स्त्रियों को मिलों तथा कल-कारख़ानों में नियुक्त नहीं किया जाता। किंतु जापान ने स्पष्ट रूप से यह घोषणा कर दी है कि आगामी तीन वर्ष तक वह रात में भी कलकार-ख़ानों में बालक एवं स्त्रियों को नियुक्त करता ही रहेगा।

(३) संप्रति यह बात ज्ञात हुई है कि प्राच्य देशों के जहाज़मालिकों ने संघबद्ध होकर यह निश्चय किया है कि वे भारत से जापान को नाम-मात्र भाड़ा लेकर कपास ले जायँगे तथा जापान से जापानी वस्त्र नाम-मात्र

भाड़ा लेकर भारत ले आवेंगे। उनके इस निश्चय का परिणाम यह हुआ है कि कलकत्ते से सिंगापुर कपड़ा भेजने में जो जहाज़-भाड़ा लगता है, उसकी अपेक्षा बंबई से जापान कपास भेजने में बहुत कम भाड़ा लगता है। इस प्रकार जापान तो बहुत थोड़े ख़र्च में भारत से कपास ख़रीदकर, फिर उसका वस्त्र तैयार करके भारत में बेच सकता है और भारत अतिरिक्त जहाज़-भाड़ा तथा वस्त्र प्रस्तुत करने में अधिक ख़र्च होने के कारण पूर्वी देशों के बाज़ारों में जापान के साथ प्रतियोगिता करने में अक्षम हो जाता है।

(४) इस समय जापान ने चीन के बाज़ार को संपूर्णरूप से अधिकृत कर लिया है। अपने देश के सन्निकट ही चीन-जैसे बृहत् देश के बाज़ार को संपूर्णरूपेण अधिकृत कर लेने से जापान के मिलमालिकों को अपने देश में प्रस्तुत वस्त्रों के लिये विशेष चिंतित नहीं होना पड़ता। उल्लिखित कारणों से यह सहज में ही अनुमान किया जा सकता है कि वस्त्र-व्यवसाय में जापान के मिलमालिकों को भारत के मिलमालिकों की तुलना में अनेक सुविधाएँ प्राप्त हैं तथा वाशिंगटन कान्फ़्रेंस के प्रस्ताव को अमान्य करके, रात्रि में स्त्री एवं बालक-मज़दूरों को नियुक्त करके जापान भारत के साथ अन्याय रूप में प्रतियोगिता कर रहा है।

सन् १९२१ के अक्टूबर महीने में भारत-सरकार ने वाणिज्यनीति के संबंध में जाँच करने के लिये एक कमेटी नियुक्त की थी। उक्त कमेटी के निश्चयानुसार जो भारतीय मिलें विदेशी प्रतियोगिता से रक्षा पाने का दावा करेंगी, उनके दावे के औचित्य के संबंध में जाँच करने के लिये टैरिफ़बोर्ड (Tariff Board) प्रथमतः इस बात की परीक्षा करेगा कि वे निम्नलिखित शर्तों का पालन करने में समर्थ हैं या नहीं—(१) वस्त्र-व्यवसाय को प्रयोजनीय स्वाभाविक सुविधाएँ प्राप्त हैं या नहीं, (२) विना सरकारी संरक्षण के इस व्यवसाय का या तो सर्वथा विकास नहीं हो सकता अथवा यदि हो सकता है तो उस प्रगति में नहीं जैसा कि वांछनीय है, (३) अंततः संसार की प्रतियोगिता के सामने यह व्यवसाय टिक सकेगा या नहीं? (देखो इंडियन फ़िसकल-कमीशन की रिपोर्ट, पैरा ९७) जैसा कि इस लेख में विचार किया गया है, टैरिफ़बोर्ड ने भी इस बात को स्वीकार किया है कि भारतीय वस्त्र-व्यवसाय की वर्तमान दुरवस्था का प्रधान कारण जापानी प्रतियोगिता है और इसके साथ हम यह भी कह सकते हैं कि टैरिफ़बोर्ड की उल्लिखित शर्तों के पालन करने की सामर्थ्य भारतीय वस्त्र-व्यवसाय में मौजूद है। प्रथम शर्त के अनुसार भारत में कपास पर्याप्त रूप में पैदा होती है और कपड़े की माँग भी भारत में यथेष्ट मात्रा में मौजूद है। अतएव वस्त्रव्यवसाय की उन्नति के लिये प्रयोजनीय स्वाभाविक सुविधाएँ भारत में वर्तमान हैं। दूसरी शर्त के अनुसार यदि इस समय भारतीय वस्त्र-व्यवसाय की जापानी प्रतियोगिता से रक्षा नहीं की जायगी, तो बहुत संभव है कि भारत के इस सर्वश्रेष्ठ व्यवसाय का सर्वनाश हो जाय। तीसरी शर्त के मुताबिक यदि भारतीय वस्त्र-व्यवसाय को सरकार की ओर से इस समय यथेष्ट संरक्षण प्राप्त हो, तो यह निश्चय है कि यह व्यवसाय भविष्य में विदेशी प्रतियोगिता के सामने टिके रहने में समर्थ होगा। किंतु भारत-सरकार ने इन सब कारणों पर विचार न करके, टैरिफ़बोर्ड के सभापति के इस प्रस्ताव को कि जापानी वस्त्र तथा सूत पर आयात-कर सैकड़े चार रुपया और बढ़ा दिया जाय, यह कहकर अमान्य कर दिया कि—

"An increased duty on yarn will prejudicially affect the hand-loom industry of India."

अर्थात् इससे भारत के हस्तवस्त्र-शिल्प—Hand-loom industry—को क्षति-ग्रस्त होना पड़ेगा। किंतु बंगाल-प्रांत के शिल्प-वाणिज्य-अध्यक्ष मि० हाग ने टैरिफ़बोर्ड के समक्ष गवाही देते हुए इस युक्ति का इस प्रकार खंडन किया है—

"The hand-loom weaver may himself buy Indian spun yarn which is tax free. If he prefers imported duty paid yarn, then he must do so because he finds it more profitable. I would therefore must permit the existence of the hand-loom weaver to stand in the way of giving protection to this industry."

अर्थात् भारतीय जुलाहे यदि चाहें, तो निःशुल्क देशी सूत का व्यवहार कर सकते हैं। यदि वे इससे महँगे विदेशी सूत का व्यवहार करते हैं, तो इसका कारण यह है कि इसमें उन्हें अधिक लाभ होता है। अतएव मैं वस्त्रव्यव-

साय के संरक्षण के मार्ग में देशी जुलाहे का अस्तित्व किसी प्रकार भी बाधाजनक नहीं मानता। उधर टैरिफ़-बोर्ड के सदस्य राजा हरिकृष्ण कौल तथा मि० सुब्बाराव के इस प्रस्ताव को कि विदेशी वस्त्रों पर सैकड़े चार रुपया कर बढ़ाकर भारतीय मिलों में प्रस्तुत ३० नंबर से ऊपर के सूत पर एक आना प्रति पाउंड के हिसाब से साहाय्य दिया जाय, सरकार ने यह कहकर अग्राह्य कर दिया कि—

"A long established industry should not need stimulus for spinning higher counts of yarns by the grant of a bounty at the cost of the general taxpayer."

अर्थात् इस चिरप्रतिष्ठित व्यवसाय को अधिक नंबर का सूत कातने के लिये सर्वसाधारण करदाताओं के रुपए से आर्थिक साहाय्यरूप में उत्तेजन दिए जाने की आवश्यकता नहीं है।

सो, देखा पाठक आपने, आज हमारी दयालु सरकार हम ग़रीब करदाताओं के स्वार्थरक्षार्थ इतनी चिंतित है कि वह भारतीय वस्त्र-व्यवसाय की रक्षा करने में सर्वथा असमर्थ है; किंतु वही सरकार जब नमक-कर बैठाने चली थी, उस समय हम ग़रीब निरन्न भारतवासियों की दुःख-कथा वह बिलकुल भूल गई और उस समय हमारी स्वार्थ-रक्षा का ख़याल उसके दिल में पैदा ही नहीं हुआ! हमारे प्रभुओं से कोई यह प्रश्न करे कि जब टैरिफ़बोर्ड की सिफ़ारिशों को इस प्रकार अमान्य ही करना था, तो फिर इसके लिये हम ग़रीबों का डेढ़ लाख रुपया ही क्यों फूँका गया? असल बात तो यह है कि इँगलैंड इस समय जापान को असंतुष्ट नहीं करना चाहता। कारण, वर्तमानकालिक चीनदेशीय संकट में उसका एकमात्र सहायक पूर्वी देशों में जापान ही है। इसके सिवा यदि विदेशी कपड़े पर आयात-कर बढ़ाया जाता है, तो विलायत के व्यापारी अलग ही आंदोलन करने लगेंगे। अस्तु, ऐसी स्थिति में भारत-सरकार ने टैरिफ़बोर्ड के दोनों ही प्रस्तावों को अग्राह्य कर दिया, तो इसमें आश्चर्य ही क्या है। पराधीन देशों के वाणिज्य-व्यवसाय, शिल्प आदि की विदेशी प्रभुओं के स्वार्थरक्षार्थ इस प्रकार पददलित किया जाना सर्वथा स्वाभाविक है। इसमें दुःख एवं विस्मय प्रकट करने का कोई कारण नहीं है।

जगन्नाथप्रसाद मिश्र

बाल-महिला-मनोरंजन

१. बालक-वांछा

नहीं चाहता सुखद राज्यपद,
नहीं विश्ववैभव-भंडार ;
नहीं गगन का चंद्र-सूर्य बन,
भोगूँ स्वर्गिक सुख-शृंगार।
नहीं दिव्य मणिमाला-भूषित,
कंठ बनाऊँगा अपना ;
नहीं स्वार्थ का यत्किंचित् भी
देख सकूँगा मैं सपना।
नहीं देख बाधा-विपदाएँ,
हृदय ज़रा भी तुम कँपना ;
नहीं कर्म करने में प्यारे !
नयन बंधुओ ! तुम झपना।
* * *
तत्पर रहूँ देश-सुख-साधन
में, चाहे दुख हो भारी ;
कुछ भी होवे भारतसेवा-
हित मैं बनूँ—भिखारी।

गौरीशंकर नेमा 'शांत'

× × ×

२. युगुल कुमार

(१)

पुण्यसलिला अंतःधवला कांतिविमला भगवती भागीरथी के किनारे दो वल्कलवस्त्रधारी सप्तवर्षीय बालक खेल रहे थे। विशाल नेत्र, आकर्णविस्तृत भृकुटियाँ एवं आजानु बाहु-द्वय उनके वीरत्व के परिचायक थे। पुष्पगुच्छकयुक्त काकपक्ष सिर पर सुशोभित थे। चितवन चंचलताहीन, पर बड़ी ही मर्मस्पर्शिनी थी। मुख पर सौम्यता एवं सरलता का अखंड राज्य था। सांसारिकता के दूषित भाव उस पर नहीं अंकित हो पाए थे। ओठों पर हास्य की हलकी रेखा खिंची हुई थी तथा दशनपंक्ति से चंद्रकिरण की-सी तापनाशिनी प्रभा प्रस्फुटित हो रही थी। जो देखते थे, वे उन धनुर्बाणधारी युगुल बालकों पर मानो न्योछावर हो जाते थे। वन के पशुपक्षी भी उनके देखने को इच्छुक थे और समस्त पार्थिव चिंताओं को भुला चंद्र-चकोर की नाईं उनकी रूप-सुधा का पान करने लगते थे। नहीं जानते, उस रूप में अमृत था या हलाहल ; पर कोई आकर्षण अवश्य था।

(२)

वसंत का सुप्रभात था। भगवती जह्नुतनया के उभयकूलस्थ हरित-श्यामवर्ण दूर्वादल नेत्ररंजक सुकोमल

चादर की नाईं बिछा हुआ था। जल-विहंग आ-आकर उस पर सुख से बैठते तथा स्वस्थ हो जाने पर पुनः कलरवयुक्त अविराम नृत्य में सम्मिलित हो जाते थे। शीतल जल के थपेड़े आ-आकर उनके चरणों को चूम लेते थे और वे भी हर्षोत्फुल्ल मन से कृतज्ञतापूर्ण अज्ञात शब्दों में मानों उन्हें शुभाशीर्वाद देते थे। चतुर्दिक्-स्थित वृक्षावलियाँ प्रतिबिंबित और तरंगित होती थीं तथा भगवतीजी मानों सुंदर-मनोहर हरितवर्ण साड़ी पहन अपने सुविशाल वक्ष के भीतर से सलज्जा नवोढ़ा वधू की नाईं झाँकने लगती थीं! वृक्षों पर बैठे हुए पक्षी उनके लिये मंगलगीत गाते थे और सुदूर स्थित जलप्रपात आनंदोन्मत्त हो मानो स्वर्गीय भेरी बजाते थे। मयूरगण उसे वास्तविक मेघ-गर्जन समझ मत्त हो नाचने लगते थे और पपीहे पी-पी की रट लगा देते थे। यह बेचारे अवैतनिक बंदीजन भगवतीजी के वंश-गुण-गान में इस प्रकार तन्मय रहते थे कि संसार में होनेवाले अत्याचारों की उन्हें तनिक भी सुध न थी। शीतल-मंद वायु के झकोरे उन्हें विश्राम के लिये विवश करते थे, किंतु जीवन का एकमात्र व्रत, महालक्ष्य एवं प्रण उन्हें कर्तव्य से विचलित न होने देता था। कीरगण एक बार सुपक्व-स्वादिष्ट फलों से लदे हुए वृक्षों की ओर देखते, फिर प्रकृति की उस सुश्रृंखलित-सुमार्जित अभिनव प्रेम-क्रीड़ा पर दृष्टि डाल हाथ मलने लगते थे। न तो फल छोड़े जाते थे, न वह स्वर्गीय आनंद ही।

मकरंदविलसित सुगंधित पुष्पराज उनकी ओर देखकर हँस देते थे, और भ्रमर चुटकियाँ लेते थे। उसी समय दो स्वर्ण के-से उज्ज्वल सुंदर एवं कांतिवान् मृगों को दौड़ाते हुए युगुल कुमार वहाँ आए और एक कर्णधार-हीन क्षुद्र नौका की ओर देख उल्लसित स्वर से बोले— "मल्लाह!"

वायुदूत ने प्रतिध्वनि के साथ मिलकर कहा— "मल्लाह!" किंतु वहाँ कोई नहीं था।

(३)

युगुल कुमार ने अग्निवर्षक सरोष नेत्रों से ऊपर की ओर देखा। गूलर के पेड़ पर एक दीर्घकाय भयानक बंदर बैठा हुआ था, उसने गूलरों को चबाते-ही-चबाते दोनों को दाँत दिखाकर चिढ़ा दिया। यह देख बालकों का क्रोध भभक उठा। एक ने धनुष पर बाण चढ़ा, उसे उस विकट बंदर पर छोड़ देना चाहा। इतने में दूसरे छोटे बालक ने मुसकिराकर कहा—"यह क्या करते हो लव! बदला लेना क्षत्रियों का काम है। ब्राह्मणों को तो सर्वदा क्षमा ही करना चाहिए। क्या गुरुजी के उन वाक्यों को भूल गए?"

निशाना ठीक बैठा। लव ने झुँझलाकर धनुष एक ओर फेंक दिया और रूठकर अलग जा खड़े हुए। कुश ने फिर ललकारकर कहा—"तुम दुःखिनी माता के दुःख को बढ़ानेवाले कुल-कलंक हो। गूँगे पशुओं को मारकर क्या करोगे? मारना ही है, तो शेर को मारो, शृगाल के मारने से क्या लाभ होगा?"

शाखा पर बैठे हुए वीर बंदर ने वज्रवत् घोर निर्घोष किया और तमककर निकट आ गया। दोनों बालक क्षण-भर के लिये विस्मित हुए, किंतु शीघ्र ही सम्हलकर सामना करने के लिये खड़े हो गए। बंदर ने जवाकुसुमवत् लाल-नेत्र दिखला दाँत पीसते हुए कहा—"तुम दोनों अभी-अभी क्या कह रहे थे?"

कुश सिकुड़ गए, किंतु लव ने लपककर कहा—"कह रहे थे तुम्हारे विषय में, और क्या कहेंगे? तुमने हमारा अपमान किया है, इसका भरपूर बदला लेकर ही रहेंगे।" बंदर हँसने लगा। उसने कहा—"पहचानते हो, मैं कौन हूँ?"

लव—कोई भी हो, बंदर हो। हम और अधिक नहीं जानना चाहते।

बंदर बिगड़ पड़ा। उसने कहा—"तुम दुधमुहे बालक क्या हमारी बराबरी करोगे, एक-एक तमाचा मारकर गिरा दूँगा।"

सुनते ही लव का चेहरा तमतमा उठा। कुश भी मारे क्रोध के काँपने लगे। ललाट पर स्वेद-बिंदु झलक आए। क्रोध-कंपित स्वर से बोले—"गुरुजी की आज्ञा होती, तो अभी तुझे इसका मज़ा चखा देते।" वानर हठ पकड़ गया। बोला। "यही है तो आओ, होड़ लगा लो। तुम अभी मल्लाह को पुकार रहे थे न?" लव ने उत्तर दिया—"हाँ।"

बंदर—किसलिये?

लव—उस पार जाने के लिये।

बंदर—बस, इसी बल के भरोसे धनुष-बाण धारण किए हुए हो? इन "धनुहियों" को तोड़ डालो और मेरा पुरुषार्थ देखो। मैं बिना नौका के अभी एक छलाँग में उस पार जा सकता हूँ।

बालक खिलखिलाकर हँस पड़े। उन्हें वानर का वाक्य एक मिथ्यावादी अभिमानी मनुष्य के प्रलाप के समान बोध हुआ। क्षण-भर वे दोनों उसके मुख की ओर देखते रहे। फिर कुश ने कहा—"अच्छा तो जाओ बच्चा, कूदो नदी में और बह जाओ।"

वानर ने अट्टहास किया। वह "जय कौशलाधीश की" कहकर एक ही छलाँग में नदी के उस पार हो रहा।

बालक चकित-विस्मित दृष्टि से उसकी ओर देखने लगे। लज्जा, क्षोभ और ग्लानि के कारण उनके सिर झुक गए। फिर वे उस विजयी वानर की ओर देखने का साहस न कर सके और धीरे से खिसक गए।

(४)

महर्षि वाल्मीकि के पवित्र शांतिकुटीर में सती-शिरोमणि जगजननी जनकनंदिनी अपने निष्ठुर और निर्मम पति कौशलेंद्र रामचंद्रजी के चरणों में ध्यान लगाए बैठी थीं। एक छोटा-सा सुंदर मृगशावक उनकी ओर मुँह उठाए खड़ा था और वह मानों किसी अज्ञात मूक भाषा में अपने मन की व्यथा उसे सुना रही थीं! उनके उस असीम दुःख, निदारुण अपमान का साथी—सहानुभूति-प्रदर्शक—वहाँ और कौन हो सकता था? उनके मन में नाना प्रकार के संकल्प-विकल्प उठते थे, वे पर प्रियतम प्राणाधिक पति के अनुकूल ही थे। प्रतिकूल भावों को कभी उनके पवित्र, निष्पाप हृदय में स्थान नहीं मिला। वह सदैव अपने ही को अपराधिनी समझती थीं। प्राणेश्वर के विरुद्ध कभी कोई प्रश्न उनके मन में नहीं उठा, न उठ सकता था। भगवती सच्ची भगवती की नाईं मुनिवर के पवित्र स्थान को दिव्य स्वर्गीय प्रकाश से आलोकित करती रहती थीं। उन्हें अब भी यदि कोई आशा थी, तो वह उन्हीं अन्यायी-अत्याचारी पति की थी। उनके सिवा महारानी जनकतनया ने कभी किसी का ध्यान नहीं किया—किसी की आशा नहीं की। धन्य है!

विषण्ण-मुख युगुल कुमार आ माता के चरणों में प्रणत हुए। माता ने वात्सल्यपूर्ण दृष्टि से उनकी ओर देखा और उनकी मलिन मुद्रा पर करुण हो सशंकित हृदय से सहमकर बोलीं—"तुमको किसने सताया वत्स!" लव ने तड़ित कंठ से उत्तर दिया—"एक बंदर ने मा!"

सीता—बंदर ने क्या किया लालन?

लव—उसने पहले हमको धमकाया, फिर होड़ लगा एक ही छलाँग में वह गंगा के उस पार पहुँच गया!

सुनकर सीताजी सन्न हो गईं। उन्होंने मुसकिरा कर मुनिवर वाल्मीकि की ओर उँगली से संकेत किया और चुप हो गईं।

(५)

तपोवन में स्फटिक शिला पर बैठे हुए ध्यानावस्थित महर्षि वाल्मीकि के निकट जा लव रोने लगे। कुश ने भी उनका अनुकरण किया। वाल्मीकि ने नेत्र खोलकर देखा, तो दोनों कुमारों को सामने खड़े पाया! करुण दृष्टि से उनकी ओर देखते हुए महर्षि बोले—"इस मानव-अत्याचार-शून्य शांति-धाम में दुःख-कीट का प्रवेश क्यों?"

रोते-रोते लव ने कहा—"महाराज! हम माता की आज्ञा से आपके निकट आए हैं, हमारे दुःख को दूर करो भगवन्!"

वाल्मीकि—तुम्हारी मूर्खता ही तुम्हारे दुःख का कारण तो नहीं है, स्पष्ट कहो।

लव—हमारी मूर्खता नहीं, कुश की मूर्खता से ऐसा हुआ।

वाल्मीकि—वह क्या?

लव—मैंने अपने एक शत्रु को मारने के लिये बाण चलाना चाहा, किंतु कुश ने वैसा न करने दिया!

वाल्मीकि—वह शत्रु कौन था?

लव—एक दीर्घाकृति वानर। उसने हमें दाँत दिखाकर चिढ़ाया था।

वाल्मीकि—अच्छा तो तुमने क्षत्रियकुमार होकर क्यों उस अपमान को चुपचाप सह लिया?

लव—महाराज! कहा तो कि कुश ने रोक दिया।

वाल्मीकि ने भर्त्सना करते हुए कुश से कहा—"तुमने बदला क्यों न लेने दिया?"

कुश—महाराज की आज्ञा से। आप ही ने न कहा था विभो, कि प्रतिहिंसा का विचार घोर पाप है। क्षमा ही ब्राह्मण का भूषण है।

वाल्मीकि—किंतु तुम ब्राह्मण नहीं, क्षत्रिय हो।

सुनकर दोनों एक दूसरे की ओर देखने लगे। लव ने खिसियाकर कहा—तब महाभाग! आपने यह बात अभी तक क्यों छिपा रक्खी?

वाल्मीकि—उसका समय नहीं आया था वत्स! पर अब तैयार रहो। धनुषबाण ले भाथा बाँध उद्यत हो जाओ।

अब तुम्हें शीघ्र ही अपने शत्रुओं का सामना करना पड़ेगा, तभी तुम वानर के इस अपमान का बदला ले सकोगे। और ठहरो—देखो, वह दूर पर्वत पर क्या दिख रहा है?

युगुल कुमार देखने लगे। सहसा कुश चिल्ला उठे—"भयानक बंदर की मुखाकृति।"

उसी समय वज्रपात की नाईं एक भयंकर शब्दाघात हुआ, जिससे समस्त वनस्थली काँप उठी। किंतु कुटीर अब भी शांतिपूर्ण था। वनदेवियों ने आ उसे चतुर्दिक् शीतल जल से सींच दिया था!

आत्माराम देवकर

× × ×

३. निकम्मे हाथ *

कीर्ति-करणी को करने में जो कसर करें,
कर-कर कायरता 'कर' रहे नाम के;
खाके माल मुफ़्त का जो माँस लाद लिया तो क्या
देते हैं दिखाई मानों बंडल हैं चाम के।
देश के क्या काम आएँ, बनें सुखधाम कैसे,
काम ने बनाए हैं गुलाम जिन्हें वाम के?
पाटें न समर-सर डाटें न प्रबल वार,
काटें नहीं शत्रु को वे हाथ किस काम के?

'रसिकेंद्र'

× × ×

४. सत्य की महिमा

एक चोर चोरी करते-करते बूढ़ा हो गया था। अब उसे बुढ़ापे का ध्यान आया। उसने सोचा कि अब तक तो मैंने अपनी सारी ज़िंदगी पाप करने में ही गँवा दी, परलोक के लिये कुछ भी नहीं किया, ईश्वर को कैसे मुँह दिखाऊँगा। यह सोचकर वह एक महात्मा के यहाँ गया और कहा—भगवन्! मैं जन्म-भर चोरी करता रहा और कोई भी सुकर्म नहीं किया, मेरा पाप कैसे कटेगा? कोई उपाय बताइए।

महात्मा ने कहा—अब से भी चोरी करना छोड़ दो, तो बहुत कुछ सुधार हो सकता है।

चोर बोला—महाराज! यह तो लड़कपन की लत है—छूटना कठिन है। कोई दूसरा उपाय बताइए।

महात्मा बोले—अच्छा, सच बोला करो।

चोर ने कहा—बहुत अच्छा, अब से झूठ कभी न बोलूँगा।

* अप्रकाशित 'अग्नि-शिखा'-नामक पुस्तक से।

—लेखक

एक दिन वह चोर राजा के घर में चोरी करने की नियत से निकला। उसी रात को राजा भी वेश बदलकर घूम रहा था। संयोगवश राजा की चोर से भेंट हो गई। उसने पूछा—तुम कौन हो और इतनी रात को कहाँ जा रहे हो?

चोर बोला—मैं चोर हूँ और राजा के महल में चोरी करने जा रहा हूँ। तुम कौन हो?

राजा ने कहा—मैं भी चोर हूँ। मुझे भी साथ ले लो, तुम्हारी सहायता करूँगा।

दोनों साथ-साथ गए। खिड़की पर राजा को बिठाकर चोर राजा के सोने के कमरे में घुस गया। थोड़ी देर बाद लौटा, तो राजा ने पूछा—कुछ हाथ लगा?

चोर ने कहा—हाँ, वहाँ टेबुल पर तीन लाल थे। उनमें से मैंने केवल दो लिए हैं, जिसमें बाँटने में सुबीता हो। लो, एक लाल तुम लो।

राजा ने लाल ले लिया और दूसरे दिन फिर चोर से साथ देने का वादा करके चला गया। घर जाकर देखा, तो सचमुच एक ही लाल टेबुल पर पड़ा हुआ था। राजा चोर की सचाई पर बहुत ख़ुश हुआ। लाल को वहीं छोड़ दिया और मंत्री से जाकर कहा—सुना है, रात मेरी अनुपस्थिति में मेरे कमरे में चोरी हो गई है, जाकर देखो तो, कौन-कौन-सी चीज़ें चोरी गई हैं।

मंत्री ने कमरे में जाकर देखा कि सब सामान ज्यों-का-त्यों है, केवल टेबुल वाले तीन लालों में से दो ग़ायब हैं। उसने वह तीसरा लाल भी उठा कर अपने पास छिपा लिया और राजा से जाकर कहा—श्रीमन्! सब सामान तो ठीक है, परंतु टेबुल वाले तीनों लाल ग़ायब हैं।

राजा ने चोर को ढुँढ़वा बुलाया। उसने सब कुछ सच-सच कह सुनाया। तब राजा ने झूठे मंत्री

को निकाल बाहर किया और सच्चे चोर को इनाम देकर बिदा किया।

देखा बालको! सत्य की महिमा कितनी बड़ी है। सत्य से क्या नहीं मिलता? सच बोलनेवाले को ईश्वर भी मिल जाता है।

कहा भी है—

साँच बरोबर तप नहीं, झूठ बरोबर पाप;
जाके हिरदय साँच है, ताके हिरदय आप।

श्रीजगन्नाथप्रसादसिंह

× × ×

५. चिड़ियों का नाच

संध्या की अँधियारी जब हरियाली पर छाई थी,
दिन-भर घूम-घामकर चिड़ियाँ नीड़ों में आई थीं।
खा-पी दिन की क्लांति मिटाने बाद, सभी वे आईं,
बुढ़िया दादी तक, जिसने यों उनको कथा सुनाई।
उस उद्यान बीच बरगद का एक विशाल वृक्ष था,
घनी, बिंधी शाखाएँ ले चिड़ियों का बना कक्ष था।
मोटी, घनी एक शाखा पर संध्या-प्रथम पहर में,
एकत्रित हो, वे बहती थीं कोई कथा-लहर में।
जिसे सुनाती बुढ़िया दादी रुक-रुक मीठे स्वर में,
"फिरक्या हुआ?" "कहोतुमआगे" होता पंचम स्वरमें।
प्रेम, विरह, सौंदर्य, सत्य की कह-कह मधुर कहानी,
बुढ़िया दादी कर देती चिड़ियों को पानी-पानी।
अब, सदैव की भाँति, सभी ने दादी को आ घेरा,
देखा एक नए जोड़े का उसके यहाँ बसेरा।
"बच्चो, तुमको आज सुनाती हूँ मैं एक कहानी,
बिलकुल सच्ची, राजा ने ज्यों पाई अपनी रानी।
उच्च वंश की कोयल को मेरा कोकिल वर लाया,
प्रतिद्वंद्वी को परास्त कर सौंदर्य-पुरस्कृत आया।
आज कहानी तुम्हें सुनाऊँ उसके प्रेम-विजय की,
किंतु करो स्वागत पहले, हो रागिनि पंचम स्वर की।"
बुढ़िया दादी का कहना भी ख़त्म नहीं हो पाया,
सब चिड़ियों ने पंचम स्वर में स्वागत-गीत उठाया—
"स्वागत राजा का, जो ऐसी सुंदर रानी लाया,
स्वागत रानी का, जिसकी है भुवन-मोहिनी काया।
स्वागत राजा का, विजयी प्रेमी की वरमाला का ;
स्वागत रानी का, मीठी कुहुकिनि वसंतबाला का।
स्वागत राजा, स्वागत राजा, विजय-गान करते हैं ;
स्वागत रानी, स्वागत रानी, प्रेम-पुष्प चढ़ते हैं।"
स्वागत-गीत समाप्त हुआ, पंचम की तान रुकी जब,
बूढ़ी दादी ने बच्चों से कहना शुरू किया तब—
"प्रेम-कहानी अब कहती हूँ ; चुप्प, न कोई बोले;
सुनो उसे तुम तन्मय होकर; हिले न कोई डोले।
एक दिवस बरसात हो चुकी कुंज प्रफुल्ल खड़े थे;
पेड़ों की पत्ती, वृक्षों के फूल सभी बिखरे थे;
उषा-काल था, मंद-सुरभिमय मलयानिल बहता था;
मुग्ध दृष्टि से बालारुण उस सुषमा को तकता था।
ऐसे मनहर समय बीच मेरा कोकिल निकला था,
अंतरिक्ष में चक्कर भर, यह शोभा निरख रहा था;
सहसा प्रेम-गीत की पंचम स्वर में तानें सुनकर,
उतरा एक कुंज में, भूला सुषमामयी निरखकर।
मेरे बच्चो, उसी कुंज की कोमल, हरी टहनिया—
पर बैठी गाती थी मेरी रानी प्रेम-कहनिया।
तुम्हें बताऊँ कैसे, कितनी थी यह लोनी लगती,
सघन कुंज की हरी पत्तियों में छिप तानें भरती।
वार दिया मेरे कोकिल ने उस छवि पर अपने को,
लगा देखने मधुर-मिलन के अति मीठे सपने को।
"कौन ? यहाँ तुम क्यों आए हो ? मेरा गाना रुकता,"
मेरी कैलिया ने पूछा; पर उत्तर ही क्या मिलता ?
मेरा कोकिल बेसुध था, इकटक सौंदर्य निरखते;
खीझ उठी मेरी कोयलिया, "क्या न कान तुम रखते ?
गीत रुका; कहती हूँ जाओ; क्यों तुम कष्ट सहोगे ?
वह कोकिल, वह प्रेमी मेरा, आता; पछताओगे।"
अंतरिक्ष की ओर देखकर कुछ तीखी चितवन से,
मेरा कोकिल बोला बीणा-निंदित मीठे स्वर से—
"आता है, आने दो उसको; मुझे न उसका डर है ;
डरता तेरी कोप-दृष्टि से वह तो अति निर्बल है।
जिस प्रकार तुम कहो—गीत गाकर या सम्मुख लड़कर,
उसे पराजित कर दूँ मैं, हो प्रेम-दृष्टि, पर, मुझ पर।
उसकी मेरी तुलना कर लो सुंदरता, सुषमा में।
बढ़ा-चढ़ा पाओगी मुझको तुम प्रत्येक दिशा में।
'वह कोकिल-वह प्रेमी मेरा', कहती क्यों उसको ही ?
मैं भी सेवक तेरा, सेवा में ले लो मुझको ही।"
था समाप्त अनुनय ज्यों ही मेरा कोकिल कर पाया।
त्यों ही प्रतिद्वंद्वी कोकिल उस लता-कुंज में आया।
"क्यों है यहाँ ? काम क्या तेरा ? तुरत यहाँ से भग जा।
लताकुंज की यह रानी है, मैं हूँ इसका राजा।
मेरी रानी तक आने का कैसे साहस आया ?
अब भी ख़ैर; यहाँ से भग जा," वह कोकिल चिल्लाया।
बोले-बोले मेरा कोकिल, तब तक कोयल बोली—
"ठहरो; यों न भगाओ उसको; बनो न तत्ती होली।
तुम प्रेमी मेरे, पर कैसे मैं भी रानी तेरी ?
अब तक चुना न मैंने राजा; सब इच्छा पर मेरी।
आज चुनूँगी अपना राजा; तुम दोनों ही गाओ।
छोटे-से गाने में अपना सब कौशल दिखलाओ।
जिसका गाना—जिसका कौशल मैं उत्तम समझूँगी,

उसको ही मैं अपना राजा आज तुरत कह दूँगी।"
जो कुछ चाह रहा था, मेरे कोकिल ने वह पाया;
पर उस कोकिल को तो यह सब तनिक भी न था भाया।
मेरा कोकिल हर्षभरे स्वर में बोला—"स्वीकार"
प्रतिद्वंदी कोकिल को कहना पड़ा "न अस्वीकार।"
मेरी रानी—मेरी कोयल—बोली उससे यों फिर—
"पहले के प्रेमी तुम मेरे; देती पहला अवसर।
गाओ ऐसा गीत, प्रेम भरपूर भरा जिसमें हो;
मादक, लोनी सुषमा का मोहक वर्णन उसमें हो।"
आधे मन से उस कोकिल ने तब यह गीत उचारा—
इच्छा थी न, किंतु रानी पाने का यही सहारा—
"भुवनमोहिनी उस काया पर हूँ अपने को वारे,
जिसकी सुंदरता से विधि है अपना विश्व सँवारे।
उसकी एक झलक से अन्वित चमकें शशि औ' तारे;
उसकी तनिक लुनाई ले बन गए फूल सब प्यारे।
उसके सुख की एक झलक से है जग की मादकता;
उसकी एक तान सुन अति विह्वल माधुर्य उमड़ता।"
गीत समाप्त हुआ, बोली कोयल मेरे कोकिल से—
"नूतन प्रेमी, अब तुम अपना गीत सुनाओ दिल से।"
हर्ष, प्रेम, विह्वलता भरकर अपने पंचम स्वर में,
मेरा कोकिल कूज उठा जो भाव भरे थे मन में—
"रानी की पहली आज्ञा है, उसको गीत सुनाऊँ;
मन में उमड़ी प्रेम-भावना को मैं उससे कह जाऊँ।
किंतु आज कंठावरोध है; कैसे आज्ञा पालूँ?
मैं न तनिक भी गा पाता, तो क्या निज शीश झुका लूँ?
यही ठीक है; चुप रह जाऊँ; स्वयम् समझ वह लेगी।
प्रेमी की अव्यक्त भावना स्वयम् प्रभाव करेगी।"
अंतिम तान गीत की अब भी गूँज रही थी नभ में,
मेरा कोकिल बेसुध था—बहता था प्रेम-लहर में,
अपनी पूर्ण पराजय का निश्चय कर तब निज मन में,
प्रतिद्वंदी कोकिल आ टूटा विजयी पर क्षण-भर में।
मेरे कोकिल को न ध्यान था किंचित् भी धावे का;
मेरी कोयल ने न कभी सोचा यह क्षण आने का।
सम्हले-सम्हले तब तक सहने पड़े घाव दो-चार;
पर न बाद में प्रतिद्वंदी कर पाया सफल प्रहार।
तीक्ष्ण चोंच से, त्वरित वेग से, घायल कर कुछ क्षण में,
दीं समाप्त कर प्रतिद्वंदी की घड़ियाँ इस जीवन में।
रण-मुहूर्त में कोयलिया स्तंभित, चकित खड़ी थी;
हिल-डुल-बोल न सकी, किंतु कोकिल पर आँख गड़ी थी।
एक-एक आघात-शत्रु पर उसका हृदय उछलता;
मेरे कोकिल के प्रहार पर था उल्लास उमड़ता।
रक्त-बिंदु से पूर्ण, वीर-बाने में मेरा कोकिल
अपनी रानी—कोयलिया ढिग आया, बोला यों फिर—
"रानी अब क्या आज्ञा होती, क्या मैं तेरा सहचर?"
कोयल बोली—"अब तुम मेरे राजा; मैं हूँ अनुचर।"
जीव-विहीन परों के ऊपर एक दृष्टि को डाल,
कोयल से कोकिल फिर बोला—"ऐ मेरी हिय-माल,
यहाँ न ठहरो; उड़ो; चलें हम किसी घने वट ऊपर;"
दोनों उड़े और आ उतरे, बच्चो, इसी वृक्ष पर।"
इतना कह बुढ़िया दादी रुक गई एक क्षण-भर को;
चिड़ियाँ सब चह-चहा पड़ीं उल्लास प्रकट करने को।
वह कलरव धीमा पड़ते ही दादी फिर यों बोली—
"दुंद मचाया आज न तुमने; बीच न कोई बोली।"
"दादी, तुमने आज सुनाई एक कहानी सच्ची,
मीठी बड़ी, न बोली कोई, लगी बड़ी ही अच्छी।
अब मिठास भर गया बहुत है, मन करता है नाचें;
आज न दुंद मचाया; अब तो कह दो, मन-भर नाचें।"
बूढ़ी दादी मुसका दी; फिर बोली—"अच्छा नाचो,
मेरे राजा-रानी आए; देखेंगे वे, नाचो।"
सुनते ही उड़ गईं फुर्र वे सभी उसी क्षण वट से,
था उल्लास—मिठास भरा, वे लगीं नाचने चट से।
ऊपर-नीचे, सीधे-तिरछे और गोलाई भरकर,
क्षण-क्षण पंख चला, न चलाकर, लगीं नाचने मन-भर।
मीठे कलरव में उछाह भर कहती जातीं—"नाचो—
नाचो; राजा-रानी आए; देखेंगे वे, नाचो।"

बालकृष्ण बलदुवा

× × ×

६. कर्तव्यहीन

मुक़ाम राजापूर में ठाकुर महादेवसिंह रहते थे। घर में ज़मींदारी बहुत थी। स्त्री का नाम मैना था। मैना ख़र्चीली थी। महादेव बाबू हर रोज़ यही उपदेश देते—'देखो मैना रुपए को पानी की तरह नहीं ख़र्च करना चाहिए।'

मैना—मुझसे तो बहुत किफ़ायत नहीं हो सकती। फिर मैं क्या फ़िज़ूलख़र्ची करती हूँ, जिसको रोक दूँ? फिर जब तक आदमी ज़िंदा है, तभी तक तो ख़र्च करेगा। मरने पर कोई साथ तो लेता नहीं जाता।

महादेव बाबू (हँसकर)—तो क्या तुम्हारी राय है मरने पर साथ ले जाने की ?

इसी तरह की बातें होती रहती थीं। कई लड़कों में एक लड़का शिवनाथ था। आँगन में बैठे खेल रहा था। मैना ने उसे गोद में उठा लिया। ठाकुर साहब दरवाज़े चले गए।

ठाकुर साहब की कंजूसी से मैना बड़ी दुःखित रहती थी। कंजूस आदमी की स्त्री भी सुखी नहीं रहती। शिवनाथ की उम्र १२ साल की है। मैना पढ़ने को कहती है तो ठाकुर साहब कहते हैं, उसे पढ़ने की ज़रूरत क्या है ? उसे खाने को बहुत है।

इसी तरह करते-कहते दो-चार वर्ष और बीत गए। शिवनाथ की उम्र सोलह साल की हो गई, पर पढ़ा-लिखा कुछ भी नहीं। मैना को साल-भर मरे हुआ। शिवनाथ की शादी इस साल रामसिंह वकील की लड़की से लखनऊ में लगी है। लड़की पढ़ी-लिखी है। लड़की में सीरत है, मगर सूरत नहीं। महादेव बाबू रुपए के लालच में पड़कर जानकी से शादी कर रहे हैं। शिवनाथ एक बहुत ख़ूबसूरत जवान है।

हमारे यहाँ जो आदमी बदसूरत लड़की के रहते हुए ख़ूबसूरत लड़का ढूँढ़ते हैं—लड़की बदसूरत और लड़का ख़ूबसूरत—इसी को बेवक़ूफ़ी कहते हैं। इसी विचार के आदमी रामसिंह भी हैं। माघ में जानकी की शादी शिवनाथ बाबू से हो गई।

जानकी जब अपनी ससुराल आई, तब पतिदेव के दर्शन हुए। जानकी पति को देखकर तो बहुत सुखी हुई, मगर शिवनाथ बाबू ख़ुश नज़र नहीं आते। लोकलज्जा निबाहने के लिये घर में आते-जाते हैं, मगर जानकी ने कभी पति को ख़ुश नहीं देखा। जब हृदय ही नहीं, तो हृदयेश कहाँ ?

इसी तरह एक साल बीता। साल-भर के बाद महादेव बाबू का स्वर्गवास हो गया।

घर के मालिक शिवनाथ बाबू हुए। जब से वह घर के मालिक हुए, घर शोहदों का अड्डा हो गया। मुहब्बतजान की पाँचों घी में हैं, क्योंकि जो कुछ है मुहब्बतजान ही है। महादेव बाबू का दीवानख़ाना चकलाख़ाना बन गया। रात-दिन रागरंग रहता है। शिवनाथ बाबू को फ़ुरसत नहीं कि घर की सूरत देखें। खाना खाने भी अंदर नहीं जाते। शिवनाथ बाबू के एक लड़का भी है, जिसकी उम्र चार साल है। वह अपनी मा के पास दिन-रात रहता है। शिवनाथ बाबू को उससे भी प्रेम नहीं है कि इसी बहाने भीतर आएँ-जाएँ।

शिवनाथ बाबू को घुड़दौड़ का भी शौक़ है, बहुत-सा रुपया घुड़दौड़ में भी हारे। अब क़र्ज़ ही होता जा रहा है। क़र्ज़ का सूद-दरसूद चढ़ रहा है। जब लोगों ने क़र्ज़ा देना बंद कर दिया, ज़मींदारी बिकने की बारी आई।

मनुष्य की जो आदत पड़ जाती है, उसे छोड़ना मुशकिल हो जाता है। जब इसी तरह कई साल बीत गए, तो ज़मींदारी भी साफ़ हो गई। अब क्या करते ? धीरे-धीरे नौकरों ने भी अपने-अपने घर की राह ली। जिस घर में पहले दिन-रात चहल-पहल रहती थी, वह अब सुनसान पड़ा हुआ है। जो मुहब्बतजान इशारों पर नाचती थीं, अब वह बुलाने से भी नहीं आतीं।

आज कई दफ़े मुहब्बतजान को बुलाने के लिये आदमी भेजा, पर वह जब नहीं आईं, तो ख़ुद ही गए। भादों की अँधियारी रात। शिवनाथ बाबू ने मुहब्बतजान के घर की राह ली। थोड़ा-थोड़ा पानी बरस रहा है। वहाँ जाकर शिवनाथ बाबू क्या देखते हैं कि मुजरा हो रहा है, कई सेठ बैठे हुए मुजरा सुन रहे हैं। आज मुहब्बत बीबी ने ऐसा मुँह बना लिया मानों उन्हें पहचानती ही नहीं हैं। शिवनाथ बाबू ने दिल में सोचा कि कई आदमी हैं, इसलिये बीबीजान की निगाह मेरे ऊपर नहीं पड़ी। पहचाना न होगा। इसीलिये सबके जाने की राह देखने लगे। उन्होंने पाँच घंटे बड़ी मुशकिल से काटे। जब सब लोग चले गए, तो मुहब्बतजान के पास जाकर बोले—"आज तो आपने बड़ी इंतज़ारी करवाई। मैंने कई दफ़े अपना आदमी भेजा और अब मैं ख़ुद ही हाज़िर हूँ। ये पाँच घंटे आज मैंने आपके लिये बड़ी मुशकिल से काटे। जो अपराध हुआ हो, उसके लिये क्षमा चाहता हूँ।"

अभी तक तो मुहब्बतजान ख़ामोश थीं, जैसे-जैसे शिवनाथ बाबू ख़ुशामद करते थे, वैसे-वैसे वह रुखाई करती थीं। जब वह बहुत ख़ुशामद से परेशान हो गईं, तो ग़ुस्से से काम लेना चाहा। बोलीं—तुम कौन हो ? चले जाओ यहाँ से। तुम्हारी बातें सुनते-सुनते सिर में चक्कर आने लगा। तुम आदमी हो या शैतान ? जाओ

नहीं तो अभी निकाल बाहर करवा दूँगी। तुम्हारा मुँह मुहब्बत से बात करने का नहीं है। गँवार कहीं के, तू मुझसे बात करके अपना दिल दिखलाना चाहता है, पहले दिल अपनी बीबी को दिखा। पीछे मुझे दिखाना। जिसको ब्याह करके लाया है, जब तू उसका न हुआ, तो मैं तेरी नहीं हो सकती। मैं तो दौलत की चेरी हूँ। मेरा तो पेशा ही यही है। तू मेरे रूप पर मोहित था। मैं तेरी दौलत पर रीझी थी। मुहब्बत तो न तेरे दिल में थी न मेरे। यहाँ से चला जा; नहीं तो बुरी तरह से ख़बर लूँगी।

शिवनाथ बाबू सब सुन सकते थे, पर एक वेश्या के मुँह से उपदेश सुनकर चुप नहीं रह सकते थे। बोले—बीबी जान, तुम्हारे लिये मैंने क्या नहीं किया। अपना सारा धन, सारी ज़मींदारी मिट्टी में मिला दी। फिर भी तुम मेरी न हुईं और मुझे उपदेश देती हो! अपनी ब्याही हुई बीबी की सूरत भी नहीं देखी और न कभी बात पूछी। उसी का फल तुम देती हो। कहती हो, अपनी बीबी को दिल दिखा। अपनी बीबी को क्या दिखलाऊँ, जब तुम, जिन्हें मैंने इतना सुख दिया है, मेरा दिल नहीं देखती हो, तो बीबी क्या देखेगी?

मुहब्बत—सुन बे, तेरे ऐसे बहुत...। तुम्हारे ऐसे बहुत-से घर ख़राब हुए हैं और होंगे। भला चाहते हो तो जाओ, फिर कभी न आना; क्योंकि मैं पतिव्रता स्त्री नहीं हूँ कि तुम्हारे दुःख-सुख में साथ दूँगी। मैं वेश्या हूँ। फिर तू सब मज़ा चाहता है। रूप-रंग और सुगंध—आज तक किसी को नहीं मिला, तू कहाँ का भाग्यशाली है जो सब तुझको मिलेगा, जा मुँह काला कर।

शिवनाथ बाबू फिर उलटकर मुहब्बत का मुख न देख सके।

उसी अँधेरी रात में अपने घर न जाकर और कहीं चले गए।

जब सवेरा हुआ और जानकी उठी, मरदाना कमरा देखा, उसे ख़ाली पाया। गाँव में ढुँढ़वाया, कहीं पता न लगा। सामान ज्यों-का-त्यों पड़ा हुआ था।

जानकी ने हारकर वकील साहब को तार दिया। दूसरे ही दिन वकील साहब आ गए। घर की हालत देखकर जानकी से पूछा—बेटी क्या हुआ था, तुमसे क्या कुछ झगड़ा हुआ था?

जानकी—नहीं पिताजी, मुझसे कुछ नहीं हुआ था, न मुझे मालूम ही है कि क्यों गए। हाँ, मेरी तक़दीर खोटी है

रामसिंह—तक़दीर का हाल कौन जानता है, मुझे क्या मालूम था कि लड़का इस क़दर बदमाश निकलेगा।

जानकी सब सुन सकती थी, पर पति की निंदा न सुन सकती थी।

रामसिंह—तुम मेरे साथ चलो।

मगर जानकी चलने पर राज़ी न हुई। ख़र्च देने के लिये कहा उसको भी नामंज़ूर किया। वह बेचारे हारकर वापस चले गए।

जानकी तक़दीर के रोने के सिवा करती क्या। अपने घर में बैठी रोती है, और वश ही क्या है।

* * *

शिवनाथ बाबू तीन दिन चलकर चित्रकूट पहुँचे। दूसरे दिन बाबा योगानंद के दर्शन हुए।

शिवनाथ बाबू ने योगानंद के पैरों गिरकर कहा—बाबाजी! मैं आपका सत्संग चाहता हूँ, अब आप मुझे शरण दीजिए।

बाबाजी—तुम्हारा नाम क्या है? क्या तुम्हारे कोई बाल-बच्चे भी हैं?

शिवनाथ—नहीं बाबा, मेरे कोई नहीं है।

बाबाजी—क्या तुम्हारे माता-पिता भी हैं?

शिवनाथ—नहीं बाबा, मेरे कोई नहीं है।

बाबाजी—बच्चा! तेरी उम्र अभी बहुत कम है, तू अभी योग करने क़ाबिल नहीं, अभी तुमको चाहिए कि गृहस्थ-आश्रम में जाकर सांसारिक जीवन बिताओ।

शिवनाथ—नहीं बाबाजी, मुझे तो आपकी सेवा चाहिए।

बाबाजी—योग करना बुड्ढों का काम है, बच्चों का नहीं। अच्छा बच्चा, अगर तू नहीं मानता, तो मैं आज रात को सोचूँगा और बतलाऊँगा कि तुमसे मेरी सेवा हो सकती है या नहीं। तुम जाओ और कल आना।

शिवनाथ—बाबाजी! मैं कहाँ जाऊँ इस वक़्त?

बाबाजी—नहीं बेटा, मैं इस तरह किसी को अपने साथ नहीं रखता।

शिवनाथ—क्या मैं सचमुच चला जाऊँ?

बाबाजी—हाँ बेटा, जाओ।

शिवनाथ चला गया। बाबाजी ने अपने हृदय में सोचा—स्वभाव का चंचल है, सूरत-शकल से भलेमानस है, ऐसा तो हो नहीं सकता कि इसके बाल-बच्चे न हों। यह मुझसे झूठ बोलता है, ऐसे आदमी को मैं अपना चेला नहीं बनाऊँगा, उसके बाल-बच्चे रोते होंगे।

जब प्रातःकाल शिवनाथ आया, तो बाबाजी बोले—बेटा, आज सुबह व्रत रहो, दिन-भर व्रत रहना है।

शिवनाथ—बहुत अच्छा बाबाजी।

बाबाजी—कल फलाहार होगा।

शिवनाथ चले गए।

बाबाजी ने अपने दूसरे चेले को बुलाकर कहा—शिवनाथ नाम का जो आदमी आया है, मैं सोचता हूँ कि इसकी स्त्री इसे बहुत चाहती है और यह दुष्ट उसको छोड़कर चला आया है, इसके बच्चा भी है; पर यह कर्तव्यहीन मुझसे झूठ बोलता है और कहता है कि मेरे कोई नहीं है।

गंगानंद—बाबाजी, यह आपको कैसे मालूम हुआ कि इसके स्त्री और बच्चा है?

बाबाजी—बेटा! यह सब बातें योगबल से मालूम होती हैं। तुम जाओ और इसका पता लगाओ कि इसने कुछ खाया है या नहीं। तुम उसको देखो और वह न पहचाने।

जब गंगानंद बाज़ार पहुँचे, तो उन्होंने देखा कि शिवनाथ बाबू बाज़ार में पूड़ी और मिठाई लेकर खा रहे हैं। गंगानंद यह दृश्य देखकर लौट आए और बाबाजी से कहा—बाबाजी! वह मनुष्य पूड़ी और मिठाई लेकर हलवाई की दूकान पर खा रहा था।

बाबाजी—क्या तुमने यह अपनी आँखों देखा है?

गंगानंद—जीहाँ, मैंने दूर ही से देखा कि वह हलवाई की दूकान पर पूड़ी और मिठाई खा रहा था, तब मैं लौट आया।

बाबाजी—बेटा! मैं तो पहले ही जानता था।

गंगानंद चले गए।

जब शाम को शिवनाथ बाबू आए, तो बाबाजी ने पूछा—क्यों बेटा, कैसी तबियत रही?

शिवनाथ—बाबाजी! मुझे तो भूख से सुस्ती मालूम होती है।

बाबाजी—योग साधना बड़ी हिम्मत का काम है, तुझ-जैसे लड़के योग नहीं साध सकते। मैंने तुझको योगबल से देखा है कि तू बाज़ार में पूड़ी और मिठाई खा रहा था। तेरे स्त्री और बच्चा भी है, तू भोगप्रिय भी है, और तू मुझसे झूठ बोलता है, तू मेरा चेला होने योग्य नहीं है, जाकर अपने बाल-बच्चों में रह। तू कर्तव्यहीन है, पहले अपना कर्तव्य पूरा कर। जा और फिर कभी यहाँ न आना।

शिवनाथ चल दिए।

* * *

शिवनाथ को गए दो वर्ष बीत गए। रामसिंह ने कई बार रुपया भेजा, मगर जानकी ने वापस कर दिया।

कर्णसिंह—अम्मा! तू रुपया क्यों लौटा देती है?

जानकी—बेटा! अपमान की घी-पूड़ी से मान का ज़हर भी अच्छा है।

कर्णसिंह—अम्मा! वह तो आपके बाप ही हैं।

जानकी—मेरे बाप तो हैं पर तुम्हारे बाप का अपमान है।

कर्णसिंह—तो ख़र्च कैसे चलेगा? मैं काम खोजूँ?

जानकी—बेटा, ईश्वर मालिक है। तुम अभी पढ़ो।

आज जानकी को मालूम हुआ कि लखनऊ के महिला-विद्यालय में एक अध्यापिका की जगह ख़ाली है। जानकी ने दरख़्वास्त दी। एक हफ़्ते के बाद मंज़ूरी आ गई।

कर्णसिंह—अम्मा! देखिए एक लिफ़ाफ़ा आया है—महिला-विद्यालय से।

जानकी ने उसको खोलकर पढ़ा, उसे मालूम हुआ कि मेरी अर्ज़ी मंज़ूर हो गई है; १२०) की जगह है।

जानकी—(कर्ण से) बेटा! मुझे महिला-विद्यालय में १२०) की जगह मिल गई है।

कर्ण—तो अम्मा, क्या हम लोग अभी चलेंगे?

जानकी—हाँ बेटा, दूसरे हफ़्ते में चार्ज लेना है।

कर्ण—तो अम्मा, ख़ूब अच्छा होगा हम भी लखनऊ चलेंगे।

जानकी—हाँ बेटा, हम लोग सब चलेंगे, वहाँ तुम्हारे पढ़ने का भी इंतज़ाम हो जायगा।

जानकी ने ईश्वर को धन्यवाद दिया।

कर्णसिंह—अम्माजी, अगर अब पिताजी आवें, तो मैं उनको दरवाज़े से भगा दूँ।

जानकी—तुमको उनसे चिढ़ क्यों है?

कर्णसिंह—इसलिये कि उनके कारण हम लोगों को बहुत-सी तकलीफ़ें झेलनी पड़ी हैं।

जानकी—तुम्हें क्या तकलीफ़ हुई ?

कर्णसिंह—अगर वह होते, तो आपको कुछ काम न करना होता।

जानकी—बेटा ! यह उनका दोष नहीं, मेरे कर्मों का दोष है। वह तुम्हारे पिता हैं, तुम्हारे हृदय में उनकी इज़्ज़त होनी चाहिए। हम आर्य-हिंदू हैं, हम लोगों में बड़ों के अवगुण नहीं देखे जाते। फिर तुमको कोई तकलीफ़ भी तो नहीं हुई।

कर्ण—अम्मा! क्या तुमको उनके ऊपर क्रोध नहीं आता ?

जानकी—नहीं बेटा, वह मेरे देव हैं, आज अगर वह आ जायँ, तो मैं उनके चरणों पर अपना मस्तक रख दूँ, और अगर फिर तुमने कभी ऐसी बात कही, तो तुम्हारा मुँह न देखूँगी। मैं भारतीय नारी हूँ; जो कुछ भी हो मैं उनकी दासी हूँ। फिर, किसी के दिन एक-से नहीं जाते, जो मुसीबत आए उसको हमेशा सिर पर लेने के लिये तैयार रहना चाहिए, क्रोध करना मूर्खों का काम है। भारत की देवियाँ क्रोध किसी पर नहीं करतीं। हर मनुष्य का काम है कि अपनी बुराई को देखे, दूसरे की बुराई देखना हो, तो आँख बंद कर ले—

बुरा जो देखन मैं चला बुरा न दीखा कोय ;
जो दिल खोजा आपना मुझसा बुरा न कोय।

* * *

जानकी को लखनऊ में रहते-रहते ६ साल हो गए, मगर यह सोचकर अपने पिता के घर नहीं गई कि कहीं वे लोग अपने दिल में यह न सोचें कि यह कुछ मदद चाहती है।

कर्णसिंह—अम्माजी ! चलो अब एक दिन नानाजी को देख आवें।

जानकी—नहीं बेटा।

कर्ण—क्यों अम्मा, आप क्यों नहीं चलतीं ?

जानकी—मनुष्य को दुःख-सुख में अपने ही घर पर रहना चाहिए।

कर्ण—क्यों अम्माजी, वह तो आपके पिता हैं ?

जानकी—हाँ बेटा, वह मेरे पिता हैं, पूज्य हैं, मगर मैं अपने स्वार्थ के लिये अपने पतिदेव को अपमानित नहीं करना चाहती।

कर्ण—तो अम्मा, क्या आप इसीलिये नहीं जाती हैं ?

जानकी—आज कार्तिक मास का पहला दिवस है, चलो अब की साल चित्रकूट हो आवें, लखनऊ में तो हमेशा रहना ही है।

कर्ण—जब आप कहें, तब मैं कालेज से छुट्टी ले लूँ।

जानकी—दसवीं तारीख़ से छुट्टी ले लो।

कर्ण—अच्छा, तो मैं कल छुट्टी के लिये दरख़्वास्त दूँगा, परसों दस तारीख़ है।

यह कहकर कर्ण पढ़ने लगा, जानकी उसी के पास बैठी न-मालूम क्या सोच रही थी, और बार-बार कर्ण को देखती जाती थी।

अब की साल कर्ण का बीसवाँ साल है, शादी के समय शिवनाथ बाबू की भी २० वर्ष की उम्र थी, सूरत-शकल शिवनाथ ही की-सी है। वह अपने भाग्य को मन-ही-मन सराहती हुई बोली—बेटा, दिवाली में तो चित्रकूट में ख़ूब ही चहल-पहल रहती है।

कर्ण—अम्मा ! आज मुझे कालेज से छुट्टी मिल गई।

जानकी—बेटा, कै रोज़ की छुट्टी ली है ?

कर्ण—पंद्रह रोज़ की। अब तैयारी करनी चाहिए।

जानकी—हाँ, अब तो तैयारी होनी ही चाहिए। कल सुबह की गाड़ी से चलना होगा।

कर्ण—अम्माजी ! मैं नानाजी को भी बुला लाऊँ, वह भी चलेंगे।

जानकी—नहीं बेटा, वह नहीं जायँगे।

कर्ण—नहीं अम्मा, वह ज़रूर चलेंगे।

जानकी—तो जाओ, कह आओ।

कर्ण चला गया। जानकी ने सब सामान बाँध-बूँधकर तैयार कर लिया।

कर्ण—नानाजी ! आप भी चलिए।

रामसिंह ने कर्ण को बड़े प्यार से गले लगा लिया और पूछा—कहाँ चलना है बेटा ?

कर्ण—माताजी की चित्रकूट चलने की राय है।

रामसिंह—कब जाओगे ?

कर्ण—कल सुबह की गाड़ी से जायँगे और आपको भी चलना होगा।

रामसिंह—पहले यह तो बतलाओ कि तुम इधर इतने दिनों तक आए क्यों नहीं ?

कर्ण—नानाजी, फ़ुर्सत नहीं मिलती थी।

रामसिंह—अरे बेटा, झूठ क्यों बोलते हो ?

कर्ण—नहीं नानाजी, आपसे झूठ नहीं बोलता हूँ ।

रामसिंह—तुम झूठ नहीं बोलते । यह कैसे हो सकता है कि तुम लखनऊ में रहते हुए, एक मुहल्ले से दूसरे मुहल्ले में नहीं आ सकते ? जानकी तो कुशल से है ?

कर्ण—आपकी कृपा से सब कुशल से हैं ।

रामसिंह—मैंने कई दफ़े रुपए भेजे उसको वापस क्यों किया ?

कर्ण—रुपया लेना अम्माजी मेरे पिता की बेइज़्ज़ती समझती हैं ।

रामसिंह—क्यों ?

कर्ण—यह तो मुझे मालूम नहीं ।

रामसिंह—बेटा, मेरे और कौन बैठा है, मेरी ज़िंदगी में भी तुम्हीं हो और मरने पर भी तुम्हीं हो ।

कर्ण—आप भी तो नानाजी ! कभी नहीं आए ।

रामसिंह—मैं तो ग़ुस्से में था कि मेरी लड़की होकर मेरी बात न माने । मैं रंज में तुम्हारे पिता को दो-एक भली-बुरी कह गया था, वही उसको बुरा लगा । तुम लोगों को बड़े आदमियों की बात से रंज नहीं होना चाहिए, बच्चों को हमेशा बड़े लोग डाँटते हैं, बच्चों को ख़फ़ा होकर नहीं बैठना चाहिए ।

कर्ण—अच्छा, तो आपको कल चलना होगा नानाजी ।

रामसिंह—और अगर न चलूँ, तो क्या करोगे ?

कर्ण—मैं आपके पास आकर रोने लगूँगा, तो आप मजबूरन् चलेंगे ।

रामसिंह—ख़ैर भाई चलो, जाओ और जानकी को बुला लाओ ; यहीं से सब लोग साथ-साथ चलेंगे ।

कर्णसिंह ने माता से सब हाल कह सुनाया ।

जानकी—तो फिर चलो, एक गाड़ी मँगवा लो ।

गाड़ी आई और सब लोग रामसिंह के यहाँ पहुँचे ।

आज १० वर्ष की रूठी हुई जानकी अपने पिता की गोद में सिर रखकर रो रही है । जब बाप-बेटी दोनों रो चुके, तो रामसिंह बड़े प्यार से उसके सिर पर हाथ फेरते हुए बोले—बेटी, मेरा यही आशीर्वाद है कि तुम सदा प्रसन्न रहो ।

सब लोगों ने खाना खाया, रात-भर सोए, सुबह की गाड़ी से चित्रकूट चले । पंडे के यहाँ पहुँचकर कुछ देर आराम करके, सुबह के वक़्त उठकर रामसिंह बोले—चलो भाई, अब सब लोग दर्शन करने चलें ।

जानकी—हाँ, अब तो चलने का वक़्त हो गया है ।

सब लोग पैदल ही चले । पयस्विनी का स्नान, सब देवतों का दर्शन करके जब लौटे, तो लक्ष्मण-पहाड़ी पर आए ।

रामसिंह—तो चलो भाई, अब इसी पहाड़ी पर कुछ खाना-पीना हो ।

सब लोग बिस्तर बिछाकर बैठ गए ।

रामसिंह—(कर्ण से) बेटा, नौकर को साथ ले लो और कुछ खाने का सामान ले आओ ।

जानकी से थोड़ी ही दूर पर एक बाबाजी बैठे माला फेर रहे थे और बार-बार जानकी की तरफ़ देखते भी जाते थे, जानकी भी बड़े ध्यान से उन्हें देख रही थी । जब कर्ण खाना लेकर आया, तो जानकी के सामने उसे रखते हुए बोला—अम्माजी ! अब हम लोगों को खाना दीजिए ।

जानकी तो अपने ही ध्यान में मस्त थी । उधर बाबाजी की दृष्टि कर्ण पर पड़ी, कर्ण की सूरत अपनी से मिलती-जुलती पाई ।

बाबाजी—(कर्ण से) बेटा ! तुम लोग कहाँ से आ रहे हो ?

कर्ण—लखनऊ से बाबाजी ।

बाबाजी—ये तुम्हारे साथ कौन हैं बेटा !

कर्ण—यह मेरी माता हैं ।

बाबाजी—ये तुम्हारे साथ और कौन हैं ?

कर्ण—यह मेरे नाना हैं । बाबाजी ! आप कहाँ के रहनेवाले हैं ?

बाबाजी—क्या करोगे बेटा ?

मगर बाबाजी की आँखों में न-जाने क्यों आँसू भर आए । भरी आवाज़ से कहा—मेरे बेटा, कोई नाम-गाँव नहीं है, मैं एक कर्तव्यहीन प्राणी हूँ । इतना कहना था कि जानकी उनके पैरों पर गिर पड़ी और कहा—आप मेरे आराध्य देव हैं ।

रामसिंह—जानकी लो, तुम्हारी तक़दीर खुल गई ।

जानकी ने फिर चाहा कि शिवनाथ बाबू के पैर पकड़कर रोऊँ, पर शिवनाथ बाबू पीछे खिसक गए और बोले—तुम देवी हो, मैं पापी हूँ, मेरे चरण तुम्हारे छूने योग्य नहीं हैं ; तुम भारत की देवी हो, भारत में इसी तरह की देवियाँ होती आई हैं, उसी भारत की तुम भी एक देवी हो, मुझे तो अपनी सूरत न दिखानी चाहिए । जो

उस समय उस दोष का संशोधन करने के हेतु यथाशक्ति प्रयत्न करना चाहिए।

गृहस्थी के गृह की स्त्रियों को अतिथि की सेवा करना, बिना किसी रोक-टोक और झिझक के खाने-पीने की वस्तुओं से शुश्रूषा करना, सरल भाव से मिलना-जुलना और आदर-सत्कार करना परम उचित है; फलतः इस कारण अतिथि को अधिक सुख और आराम मिलता है। स्त्रियों के पवित्र एवं सरल व्यवहारों में एक नवीन प्रकार की शक्ति है, जिसके द्वारा हृदय और मन, दोनों उन्नत होते हैं। परंतु ध्यान रहे, अतिथि की शुश्रूषा करते समय पवित्र भाव तथा हार्दिक अनुराग का होना परमावश्यक है। वस्तुतः जहाँ पवित्र प्रेम नहीं है, उस स्थान में अतिथि का एक निमेष भी रुकना दुस्तर हो जाता है।

देखिए, एक समय कर्मयोगी श्रीकृष्णचंद्र ने महाराज दुर्योधन का आतिथ्य स्वीकार किया। वहाँ पर सच्चे अनुराग के स्थान पर अभिमान पाया, तत्काल वहाँ के षट्-रस भोजन का परित्याग कर महात्मा बिदुर का गृह पवित्र किया और क्षुधा-निवृत्ति के अर्थ भोजन-याचना की। महात्माजी के उपस्थित न होने के कारण उनकी धर्मपत्नीजी प्रेम-विह्वल हो कदलीफल खिलाने बैठीं। हृदय के पवित्र अनुराग की सरल सरिता में प्रवाहित हो उन्होंने गूदे को न दे छिलका ही खिलाया और अंतर्यामी भगवान् प्रेमवश उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा कर उसे खाने लगे।

ठीक, यही अवस्था मनुष्य-समाज की भी है। अतः सच्चा, पवित्र एवं हार्दिक अनुराग ही अभ्यागत का मुख्य आतिथ्य है। जैसी अपनी अवस्था हो, अतिथि को उससे बढ़कर दिखलाने का प्रयास करना अनुपयुक्त है। इससे मन में एक प्रकार का संकोच रहता है और व्यय भी अधिक होता है जिसके कारण शीघ्र ही अतिथि की ओर से भला भाव रहने की असंभावना है। प्रायः ऐसा भी होता है कि अतिथि को गृह में वास देने से गृहस्थी की आत्मा के उच्च भाव की हानि होती है। विशेषतः जब मन तो यह कहता है कि यदि यह पुरुष घर से जितना शीघ्र चला जाय उत्तम है, किंतु मुख से उसको ठहरने के लिये ज़ोर दिया जाता है। और, फिर स्त्री के समीप बैठकर उसके ठहरने में अप्रसन्नता और अतिथि की विडंबना की जाती है। यह नितांत मूढ़ता है, ऐसा कुविचार स्वप्न में भी अनुचित होगा। ऐसा न होना चाहिए कि कभी तो अतिथि की बड़ी-बड़ी सामग्री आदि से शुश्रूषा हो और कभी उसे साधारण वस्तु भी न दी जा सके। इस प्रकार बर्ताव में परिवर्तन होते देख उसका मन दुखता है। अपनी दशा और सामर्थ्य को न समझकर कार्य करने से यही परिणाम होता है। गृहस्थी की अवस्था को समझकर आतिथ्य स्वीकार करना जैसे अतिथि का कर्तव्य है, वैसे ही अपनी अवस्था से बढ़कर सेवा करना गृहस्थी को अनुचित है। आर्य-गृहस्थी अतिथि-सत्कार के लिये सदा से प्रसिद्ध है। वस्तुतः यह सद्गुण न रहने से जन-समाज में आकर्षण-शक्ति अत्यल्प हो जाती है।

यदि एक मनुष्य मैदान की अत्यंत तीव्र धूप से संतप्त हो रहा हो और ऐसे समय में उसे वृक्षों की छाया मिले, तो जैसा सुख वह अनुभव करता है, वैसे ही यदि परदेश अथवा अपरिचित मनुष्यों में जाकर किसी व्यक्ति को एक ऐसा परिवार प्राप्त हो, जहाँ क्षुधा-निवृत्ति के लिये कुछ अन्न और श्रम-निवारण के हेतु एक शय्या मिले, तो वह कैसा आनंद प्राप्त करता है। साथ ही यदि गृहस्थी का सरल सद्भाव, स्त्रियों की प्रेमपूर्ण सेवा और बालक-बालिकाओं की सरल एवं प्रसन्नतापूर्ण क्रीड़ा भी भोगने को प्राप्त हो, तो उसका हृदय आह्लाद से परिपूर्ण हो जाता है।

अतएव प्रत्येक भद्र पुरुष-स्त्री अथवा यों कहिए बालक, वृद्ध, वनिता का यह अनिवार्य कर्तव्य है कि जो अपने गृह को चरणरज से पवित्र करे, उसे देव-तुल्य समझकर उसकी तन-मन से शुश्रूषा करे और उसे प्रतिक्षण प्रसन्न रखने की चेष्टा करे। इस व्यवहार द्वारा एक दूसरे के प्रति पवित्र अनुराग उत्पन्न होता है, प्रेम का प्रसार होता है, और इस भाँति के स्वागत का परिणाम यह होता है कि ऐसे सद्व्यवहारों द्वारा वही अतिथि पवित्र प्रेमवश उस गृहस्थी का एक अंग हो जाता है। ऐसा हो कि धार्मिक गृहस्थी का द्वार अतिथि के स्वागत के लिये सदैव प्रतिक्षण खुला रहे और हार्दिक अनुराग निशिदिन अतिथि के सत्कार करने की तीक्षा करता रहे।

राधेदेवी खरे

उत्कंठिता

N. K. Press, Lucknow.

साहित्य और विज्ञान

१. क्रोध नहीं, निर्वेद

न्यक्कारो ह्ययमेव मे यदरयस्तत्राऽप्यसौ तापसः ?
सोऽप्यत्रैव निहन्ति राक्षसकुलं जीवत्यहो रावणः।
धिक् धिक्छक्रजितं प्रबोधितवता किं कुम्भकर्णेन वा ?
स्वर्गग्रामटिकाविलुण्ठनवृथोच्छूनैः किमेभिर्भुजैः ?
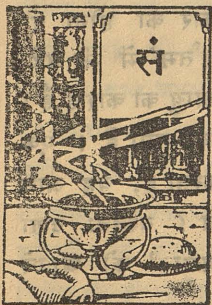
संस्कृत साहित्य में यह पद्य-रत्न बहुत प्रसिद्ध है। मालूम नहीं, यह पद्य किस महाकवि का है। हनुमन्नाटक में यह उद्धृत मिलता है। तथा 'दशरूपक' और 'साहित्य-दर्पण' आदि साहित्य-ग्रंथों में इस पर ख़ूब विचार किया गया है। सभी आचार्यों ने इस पद्य में निर्वेद की ध्वनि मानी है। इस प्रधान ध्वनि की पुष्टि पद्य के अक्षर-अक्षर और मात्रा-मात्रा से होती है। इधर हाल के कुछ 'आचार्य' इस पद्य में निर्वेद की ध्वनि न मानकर क्रोध की मानने लगे हैं और उन निर्वेद-वादियों को ख़ूब ही खरी-खोटी सुनाई हैं।

हमारे बहुत-से शिष्यों ने तथा कितने ही प्रतिष्ठित मित्रों ने हमसे इस विषय में पूँछ-ताँछ की। इन सबको अलग-अलग उत्तर देना कठिन है, अतएव इस लेख द्वारा हम इस विषय में अपना मत स्पष्ट करते हैं, जिससे सबका समाधान हो जायगा।

भगवान् रामचंद्र ने लंका पर चढ़ाई कर दी है। घोर संग्राम हो रहा है। रावण के प्रधान सेनानायक कुंभकर्ण और मेघनाद आदि के किए भी कुछ नहीं होता। स्वयं रावण की भी बल-बुद्धि इस समय कुंठित हो रही है। वह घबड़ा गया है। इस भारी आपत्ति में वह विह्वल हो गया है और कहता है—न्यक्कारो ह्ययमेव मे यदरयः' इत्यादि। वह कहता है कि शत्रुओं का जीवित रहना ही मेरा तिरस्कार है, क्योंकि मैं रावण हूँ—वही रावण, जिसने स्वर्ग को भी एक गामड़े के समान लूट लिया था। पद्य के 'मे' पद में अर्थान्तरसंक्रमितवाच्य ध्वनि है—रावण का पूर्व-पौरुष (अलौकिक वीर्य-शालित्व) ध्वनित होता है, जो यहाँ निर्वेद का बड़ा भारी पोषक है। "हाय! मैं वही रावण हूँ, जिसने वरुण और कुबेर को भी कुछ न समझा, जिसने इंद्र के नेत्रों से न-जाने कितनी बार आँसू गिरवाए और जिसने अपने पुरुषार्थ से कैलास

पर्वत को भी मिट्टी के ढेले के समान उठा लिया ! (यह सब 'मे' पद से ध्वनित है ।) उसी रावण की आज यह दशा है कि उसके शत्रु सिर पर होला भून रहे हैं और सो भी यह तापस ! और, यहीं लंका में राक्षस-वंश का सत्यानाश हो रहा है ! तिस पर भी रावण जी रहा है ! कितने दुःख की बात है ! मर जाने की, डूबकर मर जाने की, बात है । कुंभकर्ण का बड़ा भरोसा था । परंतु इस मुसीबत में उससे भी कुछ न बन पड़ा । मेघनाद से भी कुछ न हो सका । और दूसरे की बात क्या कहूँ, ये मेरी जो व्यर्थ फूली हुई भुजाएँ हैं, इनसे भी क्या लाभ ? व्यर्थ हैं ! हाय ! ये वही भुजाएँ हैं, जिन्होंने एक दिन स्वर्ग को भी आसानी से लूट लिया था । मैं क्या करूँ? कहाँ जाऊँ ? कुछ सूझता नहीं है !" रावण के न्यक्कारो ह्ययमेव' वाक्य का यही अर्थ है । इससे ईर्ष्या और आपद् से संभूत रावण का निर्वेद व्यक्त है । आचार्य धनंजय ने अपने 'दशरूपक' में ईर्ष्या-जन्य निर्वेद के उदाहरण में यह पद्य दिया है ।

इस पद्य में 'मे' पद से जो रावण का लोकोत्तर-बलशालित्व ध्वनित है, जिससे उसने पूर्व काल में वे-वे लोकोत्तर काम किए थे, वह इस निर्वेद का बड़ा पोषक है । जब इस दुर्दशा के समय उसे अपने वे पहले दिन याद आते हैं, तो हृदय फट जाता है । जैसे कोई करोड़पति सेठ काल-गति से दरिद्र हो जाय और दुःखी होकर कहे कि हाय ! मैं वही हूँ, जो लाखों के जमा-ख़र्च रोज़ करता था, जो हज़ारों रुपए दीन-दुखियों को देता था; उसी 'लक्ष्मीचंद' की आज यह दशा ! सेठ के इस वाक्य से जो दैन्य ध्वनित होता है, उसकी पुष्टि पूर्वावस्था के चिंतन से होती है । जब उस समृद्ध पूर्वावस्था का स्मरण आता है, तो वर्तमान दारुण दशा बड़ा विकराल रूप धारण कर लेती है । यही बात प्रकृत पद्य में है ।

एक महाशय का कहना है कि "यहाँ वास्तविक तिरस्कार नहीं है, बल्कि शत्रु-सत्ता में तिरस्कारत्व का आरोप या अध्यवसान है । जिस प्रकार मुख में चंद्रत्व का आरोप या अध्यवसान कर लेने पर भी वह (मुख) वास्तविक चंद्रमा नहीं हो सकता ।"

पहले तो इन महाशय को इस बात का ही ठीक-ठीक पता नहीं कि यहाँ शत्रु-सत्ता में तिरस्कारत्व का आरोप [illegible] अध्यवसान ! वस्तुतः अध्यवसान नहीं, आरोप है; क्योंकि विषय (अरयः) निगीर्ण नहीं है, उसका साक्षात् शब्द से उपादान है । ख़ैर, अब आपके 'मत' पर विचार करते हैं । आपका यह कहना ग़लत है कि जहाँ आरोप या अध्यवसान होता है, वहाँ वास्तविकता रहती ही नहीं । आपने यहाँ एक और भद्दी ग़लती की है कि प्रकृत पद्य में गौणी लक्षणा समझ ली है और इसीलिये उदाहरण 'मुख-चंद्र' का दिया है ! वस्तुतः यहाँ 'गौणी' नहीं, 'शुद्धा' लक्षणा है । सादृश्य-संबंध से ही गौणी लक्षणा होती है, जैसे 'मुख-चंद्र' आदि में । सादृश्य से इतर कोई जहाँ संबंध (कार्य-कारण भाव आदि) हो, तो वहाँ 'शुद्धा' लक्षणा होती है, जैसे 'आयुर्घृतम्' आदि में। यहाँ शत्रु-सत्ता में तिरस्कारत्व का आरोप किया गया है, जो 'शुद्धा' लक्षणा का विषय है, 'गौणी' का नहीं; क्योंकि शत्रु-सत्ता और तिरस्कारत्व में कुछ भी सादृश्य नहीं है । हाँ, इनमें हेतु-हेतुमद्भाव-संबंध ज़रूर है, जिससे 'शुद्धा' लक्षणा है । और इसीलिये इन आधुनिक परीक्षित 'आचार्य' महोदय का दिया हुआ 'मुख-चंद्र'वाला दृष्टांत ग़लत है ।

'आचार्य'जी का कहना है कि यहाँ शत्रु-सत्ता में तिरस्कारत्व का आरोप है, अतएव तिरस्कार यथार्थ नहीं है । आपका यह भ्रम है ! यहाँ तिरस्कार यथार्थ है—और यथार्थ है । हाँ, शत्रु-सत्ता ही तिरस्कार नहीं है, बल्कि शत्रु-सत्ता तिरस्कार का हेतु है । इसी कारण (शत्रु-सत्ता) में कार्य (तिरस्कार) का आरोप है । विलक्षण रीति से और अवश्यंभावितया तिरस्कार का होना ही यहाँ लक्षणा का प्रयोजन है । 'आयुर्घृतम्' में भी यही बात है । घी ही आयु नहीं है, किंतु आयु का कारण है । अतएव उसमें आयु का आरोप किया गया है । एक 'आचार्य' ऐसी बे-सिर-पैर की बातें करता है, यह जान कर किसे दुःख और आश्चर्य न होगा ? वस्तुतः दशा दयनीय है । मालूम होता है, 'अध्यवसान' को आपने 'अध्यास' समझ लिया है !

सो, यहाँ शत्रु-सत्ता में तिरस्कारत्व का आरोप है । शत्रु-सत्ता ही तिरस्कार नहीं है, पर तिरस्कार का हेतु है । संसार में शत्रुओं का रहना ही मेरे तिरस्कार का कारण है, इस बात को यों कह दिया है कि शत्रुओं का रहना ही मेरा तिरस्कार है । इस आरोप से वाक्य ज़बर्दस्त बन गया है और शत्रु-सत्ता में तिरस्कारत्व का

हेतु-हेतुमद्भाव अव्यभिचरित रूप से प्रतीत होता है। ऐसी दशा में कौन मूर्ख इस बात को कह सकता है कि तिरस्कार यहाँ वास्तविक है ही नहीं ? हाँ, विषय ही विषयी नहीं बन जाता, यह दूसरी बात है ; पर विषयी की सत्ता कौन मिटा सकता है ? मतलब यह कि यहाँ तिरस्कार को अयथार्थ कहना ही अयथार्थ है। तिरस्कार वास्तविक है और वह शत्रु-सत्ता से है। अतएव शत्रु-सत्ता में उसका आरोप किया गया है। शत्रु-सत्ता ही तिरस्कार नहीं है, किंतु तिरस्कार का कारण है। इस बात को साहित्य-शास्त्र के मामूली विद्यार्थी भी जानते हैं। अतएव अधिक लिखने की ज़रूरत नहीं।

कहते हैं, "एक बाँके हेकड़ का कहना है कि अगर किसी ने मेरी तरफ़ उँगली उठाई, तो मैं इसे अपना तिरस्कार समझता हूँ और उँगली उठानेवाले का हाथ काट लेना ही उचित समझता हूँ। उँगली उठाने में यह तिरस्कार का आरोप क्यों करता है ? क्या दीनता के कारण, अथवा गर्व के कारण ?"

अवश्य ही इस वाक्य में उँगली उठाने में तिरस्कारत्व का आरोप गर्व के कारण है, दीनता के कारण नहीं ; क्योंकि वह उँगली उठानेवाले की उँगली काट लेने की ज़ुर्रत रखता है और गर्व ही यहाँ प्रधान है। परंतु प्रकृत पद्य में यह बात नहीं है। रावण अपने पूर्व विक्रम का स्मरण करके शत्रु-सत्ता में तिरस्कारत्व का आरोप करता है, जो प्रधानतः व्यज्यमान निर्वेद का अंग है—पोषक है। गर्व की प्रधानता तो तब होती, जब इस 'बाँके हेकड़' की तरह रावण भी राम के भुज-दंड काट लेने की बात कहता और वाक्य का सारा ज़ोर उसी पर होता। परंतु इस बात का पद्य में कहीं पता भी नहीं—रावण के इस वाक्य में कहीं भी इस बात का उल्लेख नहीं कि राम को मैं मार डालूँगा, या इसकी भुजाएँ काट लूँगा। अतएव प्रकृत पद्य में गर्व की नहीं, निर्वेद की ही ध्वनि प्रधान है। आपका दिया हुआ दृष्टांत असंगत है ; क्योंकि उसमें 'उँगली काट लेने' की बात कही है, जिसके बल से गर्व प्रतीत होता है। हाँ, अगर वह यों कहता कि "हाय ! मैं वही हूँ, जो बड़े-बड़ों के छक्के छुड़ाता था, जिससे लोग थर-थर काँपते थे ; परंतु कितने दुःख की बात है कि आज दो-दो कौड़ी के आदमी मेरा अपमान करते हैं", तो कभी कोई अनुन्मत्त पुरुष इस वाक्य से गर्व की ध्वनि न निकालता। यहाँ तो फिर 'दैन्य' ही निकलता।

इसके बाद एक और उदाहरण दिया गया है, यू० पी० के एक प्रसिद्ध नवाब का। इन नवाब साहब को नाचने का शौक़ है। आप जब नाचते हैं, तो नौकरों को हुक्म कर देते हैं कि कोई मेरे मुख की ओर न देखे—सब पैरों की ओर ही देखें। फिर यदि किसी ने इनकी आज्ञा का उल्लंघन किया और भूल से मुख की ओर देख दिया, तो वह नवाब साहब उस बेचारे पर कोड़े चपकवाते हैं। 'आचार्य' का कहना है कि इन नवाब साहब ने नौकर पर जो कोड़े बरसवाए, सो दैन्य के कारण नहीं, किंतु अपनी शान को अत्यंत उच्च समझने के कारण। इसी प्रकार विवादास्पद पद्य में भी रावण की शान ही व्यंजित है, दैन्य या निर्वेद नहीं।

हमारी समझ में नहीं आता कि यहाँ यह उदाहरण भी 'आचार्य' ने क्या समझकर दे दिया ! न तो प्रकृत पद्य में रावण बेचारा राम पर कोड़े बरसवा रहा है और न वैसा करने की कुछ प्रतिज्ञा ही कर रहा है और न कुछ ! वह तो मुसीबत में पड़ा किंकर्तव्य-विमूढ़ हो रहा है। तब फिर वहाँ किस प्रकार प्रधानततः गर्व या क्रोध ध्वनित हो सकता है ? 'आचार्य' महोदय दृष्टांत भी बड़े बढ़िया देते हैं !

'आचार्य' महोदय ने यह भी कहा है कि 'निर्वेदः स्वावमाननम्' के अनुसार स्वकर्तृक स्वविषयक अवमान ही निर्वेद है, स्वकीयों का अवमान नहीं। परंतु प्रकृत पद्य में अपना और अपनों का भी अवमान किया गया है, अतएव निर्वेद नहीं। समझ का कैसा फेर है ! वस्तुतः इस पद्य में रावण ने अपनी ही भर्त्सना की है—अपने ही जीवन को धिक्कारा है—'जीवत्यहो रावणः !' आत्मीय मेघनाद और कुंभकर्ण आदिकों की भर्त्सना (अवमानना) नहीं की है, सिर्फ़ उनकी अकिंचित्करता ही बतलाई है। उसका कहना यही है कि मेरी मुसीबत को मेघनाद और कुंभकर्ण भी दूर नहीं कर सकते ! यह निःसहाय अवस्था दैन्य की परम पुष्टि करती है। कहने का मतलब यह कि रावण ने इस पद्य में 'स्व' अपनी ही भर्त्सना की है, अपनों की नहीं।

'आचार्य' का कहना है कि इस पद्य में तिरस्कार-वाच्य होने पर भी गर्व व्यंग्य है ! परंतु आपने यह बत-

लाने की कृपा नहीं की कि कैसे ? यों आप 'आचार्य' हैं। जो चाहें सो व्यंग्य निकालें—"समरथ को नहिं दोष गुसाईं।"

आपका कहना यह भी है कि रावण-जैसे गर्वीले के हृदय में कभी दैन्य या निर्वेद का प्रवेश हो ही नहीं सकता! मालूम होता है, मनोभावों की भी आपके मत में रजिस्ट्री हो जाती है! भाई, परिस्थिति के अनुसार मनोभाव परिवर्तित होते रहते हैं। ध्यान से देखिए और सोचिए।

यह भी आप कहते हैं कि कवियों ने रावण का चरित्र जैसा कुछ अंकित किया है, उसके अनुरूप दैन्य और निर्वेद नहीं। परंतु आपको ध्यान रखना चाहिए कि भिन्न-भिन्न कवियों ने भिन्न-भिन्न प्रकार से रावण का चरित्र अंकित किया है। वाल्मीकि, तुलसी और केशव के रावण साफ़ भिन्न-भिन्न प्रतीत होते हैं। फिर जिस कवि या काव्य का प्रकृत पद्य है, न-जाने उसका रावण कैसा होगा ?

सारांश यह कि इस पद्य में क्रोध नहीं, निर्वेद और दैन्य की ध्वनि है। क्रोध और गर्व की ध्वनि मानना भ्रममात्र है।

देखिए, गर्व की ध्वनि ऐसी होती है। क्रोध से भरे हुए कर्ण अश्वत्थामा से कहते हैं—

धृतायुधो यावदहं तावदन्यैः किमायुधैः ;
यद्वा न सिद्धमस्त्रेण मम तत्केन साध्यताम् ।

जब तक मैंने शस्त्र धारण कर रक्खा है, तब तक दूसरे शस्त्रधारियों से क्या प्रयोजन ? उनकी कुछ भी ज़रूरत नहीं है। और, जो मेरे अस्त्र से सिद्ध न हुआ, उसे फिर सिद्ध कर दिखानेवाला कोई है भी नहीं।

यहाँ है गर्व की ध्वनि। यहाँ गर्व-ध्वनि बतलाने के लिये किसी को क़सम खाने की कुछ ज़रूरत नहीं। अक्षर-अक्षर से गर्व टपकता है। क्या रावण ने भी उस पद्य में कुछ ऐसी ही बात कही है ? वहाँ तो वह साफ़-साफ़ अपनी भुजाओं को भी व्यर्थ फूली हुई बता रहा है! ऐसी दशा में कौन सज्ञान पुरुष उसके वाक्य से गर्व की ध्वनि निकाल सकता है ?

क्रोध की ध्वनि भी देख लीजिए। अश्वत्थामा द्रोणाचार्य का वध सुनकर उत्तेजित हो गए हैं और भभककर कहते हैं—

कृतमनुमतं दृष्टं वा यैरिदं गुरुपातकं
मनुजपशुभिर्निर्मर्यादैर्भवद्भिरुदायुधैः ;
नरकरिपुणा सार्द्धं तेषां सभीमकिरीटिना-
मयमहमसृङ्मेदोमांसैः करोमि दिशां बलिम् ।

जिन मर्यादारहित नर-पशुओं ने यह भीषण पाप (द्रोण-वध) किया है, या इसके करने की आज्ञा दी है, अथवा इसे देखा है, कृष्ण, भीम और अर्जुन के साथ ही उन सबके ख़ून, चर्बी, और मांस के द्वारा यह मैं आज दिशाओं को बलि देता हूँ।

इस वाक्य में क्रोध की ध्वनि स्थापित करने के लिये किसी को कुछ लिखने की ज़रूरत नहीं। क्या रावण ने भी उस पद्य में कुछ ऐसी ही बात कही है, जिससे क्रोध की लपटें निकलती हों ? क्या रावण भी कह रहा है कि मैं राम को अभी ऐसा किए देता हूँ ? यदि नहीं, तो फिर उसके वाक्य से कैसे क्रोध की ध्वनि निकल सकती है ? गर्व और क्रोध ही ध्वनि ऊपर दिए हुए पद्यों में स्पष्ट है। रावण के उस वाक्य में—विचारणीय पद्य में—दशा इसके विपरीत है ; अतएव वहाँ दैन्य-संवलित निर्वेद की ही ध्वनि है।

किशोरीदास वाजपेयी

× × ×

२. प्राचीन भारत में विज्ञान

(पूर्ण संख्या ८० से संबद्ध)

इसका भी विज्ञान, और मुख्यतः वस्तुतत्त्व, के अंतर्गत कम महत्त्व नहीं है—और

शब्द

आर्यों को इस विषय पर थोड़ा ज्ञान नहीं था—प्रमाण तो यह बतलाते हैं कि भारतवासी आजकल के विज्ञानवेत्ताओं से कहीं भी अधिक जानते थे। गान तथा वाद्यविद्या में आज भी भारतवासी योरप के गुरु तुल्य हैं—यदि उनकी (भारतवासियों की) गानविद्या तथा वाद्यविद्या एक सुंदर तथा कोमल पुष्प हो तो योरप की वही विद्या एक नीम के वृक्ष का तना। केवल गायनकला ही में नहीं, किंतु शुद्ध वैज्ञानिक विचार से भी इन लोगों ने लंबे हाथ मारे थे। उन्हें यह ज्ञात था कि 'शब्द' है क्या, इसकी उत्पत्ति कैसे होती है, तथा इसकी यात्रा कैसे होती है ? कणाद का कथन है कि "शब्द" एक स्थान से दूसरे में क्यों सुना जाता है ? इसका हेतु बताने के लिये यह ज्ञात होना चाहिए कि 'शब्द'

तरंगों द्वारा परिचालित होता है। एक केंद्र से चारों ओर तरंगों के बाद तरंगें चलती हैं, वस्तुतः वायु का सहयोग अथवा इसकी शांतता केवल समवर्ती है, क्योंकि प्रतिकूल वायु इसका प्रतिघात करती है। फिर श्रीयुक्त सील कहते हैं कि "कट्टर मीमांसा का मत मीमांसा-पंडित सावर स्वामी का है। उनका कथन है कि नाद (शब्द का स्थूल कारण) वायुतरंग ही है, वायु के छोटे-छोटे कणों के संयोग तथा वियोग ही की यात्रा है, तरंग की उत्पत्ति पहले ही संघर्ष से होती है। तदुपरांत उनका अनुक्रमण उन छोटे-छोटे कणों द्वारा ही होता है"। पुनः वाक्यपदीय के प्रथम कांड का १०६वाँ श्लोक ऐसे चलता है—

लब्धक्रियः प्रयत्नेन वक्तुरिच्छानुवर्तिना
स्थानेष्वभिहतो वायुः शब्दत्वं प्रतिपद्यते ;
तस्य कारणसामर्थ्यात् वेगप्रचयधर्मिणः
संनिपातात् विभज्यन्ते सारवत्योऽपि मूर्तयः।

इससे यह स्पष्ट है कि आर्यगण यह भली भाँति जानते थे कि सब प्रकार के शब्द केवल वायु की एक प्रकार की तरंगों द्वारा उत्पन्न होते हैं। गंगेश, चिंतामणि में, यह लिखते हैं कि "शब्द का प्रसार एक कण से दूसरे कण द्वारा नहीं होता, परंतु वे जलतरंगों के समान सदैव परिवर्द्धित वृत्तों द्वारा चलते हैं, कदाचित् वायु के दबाव से गोल स्तरों ही में चलते हैं ; और ये वायुतरंगें, जो शब्द के यान हैं, अत्यंत तीव्र होती हैं। इससे शब्द की गति के तात्पर्य का स्पष्टीकरण हो जाता है।" पुनः प्रतिध्वनि शब्द का प्रतिबिंब ही थी और शब्द का तीन ही कारणों से भिन्न होना माना गया है। प्रथम तो "तारमंदादि भेद, द्वितीय तीव्र मंदादि भेद और तृतीय असाधारण भेद"। मीमांसा-पंडित सावर ने यह बताया है कि शब्द का महत्त्व नादवृद्धि (अर्थात् भिन्न-भिन्न शब्दतरंगों का सम्मिलित होना) ही के कारण से है, वे सब तरंगें अपने सांयोगिक संघर्ष से कान के अधिक विस्तृत भाग पर प्रभाव डालती हैं। यह सब विचार प्राचीन भारतीयों द्वारा निकाले जाने पर अब भी अछूते रक्खे हैं। इन सहस्रों वर्षों का अंतर होने पर भी उनमें कोई शुद्ध करनेवाली वस्तु मिली ही नहीं। तंत्री के तारों में श्रुति की कोटि (Pitch) तार की लंबाई के विप्रति (Inverse) होती है, यह सब बातें घोर विज्ञान से संबंध रखनेवाली हैं; परंतु इसका प्रयोग और भी कई विषयों में हुआ है। गोल्डसरकर ने अपनी पुस्तक 'पाणिनि, उसका संस्कृत-साहित्य में स्थान' में लिखा है कि "हम सबको यह न भूलना चाहिए कि सबसे वैज्ञानिक व्याकरण ने, जिसे इस पृथिवी ने जन्म दिया है और जिसकी वर्णमाला का मूल पूर्णतया ध्वनिविहित है, भारतवर्ष में ईसा के पूर्व ७-८ शताब्दी पूर्व जन्म लिया।" केवल भाषा ही में इसका प्रयोग नहीं किया गया, वरन् व्याधियों में भी इसका उपयोग हुआ है। संगीत के समस्त ग्रंथों में अनेक प्रमाण हैं कि विशेष रागरागिणियों के गाने से विशेष-विशेष रोग दूर हो जाते हैं। केवल व्याधि ही नहीं, आधिव्याधि दोनों ही दूर हो जाती हैं। श्रोताओं को हँसाना-रुलाना, श्रोता के शोक-मोहादि को दूर करना इस प्रकार के अनेक कार्य विशेष-विशेष रागरागिणियों के गाने से किए जा सकते हैं। ये सब बातें केवल कपोल-कल्पित नहीं, किंतु विज्ञान तथा प्रमाणसिद्ध हैं।

आजकल का समस्त वैज्ञानिक चमत्कार, रसायन को छोड़कर, विद्युत् तथा चुंबक ही पर निर्भर है। लोगों का कहना है कि कदाचित् 'चुंबक' पुरानी वस्तु हो, परंतु

चुंबक तथा विद्युत्

'विद्युत्' को वे किसी भी प्रकार से प्राचीन मानने में सहमत नहीं हैं—परंतु भवसागर में एक उज्ज्वल बिंदु भी है। बिजली को नई माननेवाले नक्कारख़ाने में तूती की एक आधी आवाज़ है और वही क्षीण शब्द कह रहा है और सब शास्त्रों के समान इस शास्त्र के सूर्य ने भी भारतवर्ष को अड्डा मानकर अपना प्रकाश यहीं से फैलाया। यह सब बातें औपन्यासिक नहीं हैं, परंतु प्रमाणसिद्ध सत्य हैं। चुंबक में शंकर मिश्र की बड़ी पहुँच थी। तृण तथा काग़ज़ का तृणमणि (Amber) द्वारा आकृष्ट होना, चुंबक पत्थर द्वारा सुई का चलना यह सभी 'अदृष्ट' के कारण थे। फिर यह पुस्तकों द्वारा पता चलता है कि भोज ने जलयान बनवाने के समय इस बात का प्रबोधन दिया था कि उस यान के पेंदे के पटरे लोहे की कीलों से न जोड़े जायँ—उन्हें इस बात का भय था कि कहीं उनके लोहे के होने से वह यान चुंबक की शक्ति के क्षेत्र में न आ जाय और फिर बड़ी गड़बड़ में पड़ जाय। पुनः डाक्टर राधाकुमुद मुकर्जी ने

अपनी पुस्तक "प्राचीन भारत में जलयान का निर्माण" में लिखा है कि आर्यों के जलयानों में एक दिशासूचक यंत्र रहता था, जिसमें चुंबक का एक टुकड़ा रहता था। यह तेल की एक कटोरी में तैरता था और सदैव उत्तर की ओर इंगित किया करता था। यह सब दशा उस समय की थी, जब योरप में ईसा का जन्म भी न हुआ था, और विद्युत् का ज्ञान भी हिंदुओं को थोड़ा नहीं था। डाक्टर वम्मन आर० कोकटनूर ने अभी थोड़े दिन हुए अन्वेषण करके यह सिद्ध किया है कि विद्युत्-उत्पत्तिकारी यंत्र (Battery) पहले वाल्टा (Volta) ने नहीं बनाया है, परंतु अगस्त्य मुनि ने। उसके निर्माण करने के नियम भी अगस्त्य मुनि ने दिए हैं—यह सब अन्वेषण सामग्री (Materials of Investigation) एक चार पृष्ठ की हस्तलिखित पुस्तक है, जो उज्जैन के किसी राजा के पुस्तकालय से मिली और जिसका काल ईसा के बाद १५५० ई० निर्द्धारित किया गया है। डा० कोकटनूर लिखते हैं—"एक बिलकुल स्वच्छ ताम्रपत्र लेकर एक मिट्टी के पात्र में रक्खो—यह पहले तूतिया (Blue Vitriol) से आवृत्त होना चाहिए और पुनः लकड़ी के भीगे हुए बुरादे से। तब पारे से रगड़ा हुआ जस्ते का पत्र उसके ऊपर रखना चाहिए। उन दोनों के छुआने से एक प्रकाश उत्पन्न होगा, जो मित्र वरुण (अथवा विद्युत्) कहा जायगा—इससे जल के दो भाग हो जाएँगे, जिनके नाम क्रमानुसार ऊर्द्ध्वमुख तथा जीवनदायी —ऐसे-ऐसे यदि एक शत पात्र जोड़े जायँ, तो वे एक बड़ी शक्ति के आगार हो जाएँगे।" उस सम्मेलन में जितने रसायनज्ञ थे, वे सभी-के-सभी इसे सुनकर भौंचक रह गए। और फिर, इससे यह भी मालूम होता है कि उन लोगों को मालूम था कि जल मूल-पदार्थ नहीं है, वरन् वह टूटकर दो वायुओं में परिवर्तित हो जाता है। फिर उन्हीं डाक्टर महोदय ने यह भी दिखाया कि अगस्त्य मुनि को बिजली द्वारा क़लई करना मालूम था—"विद्युत् उत्पत्तिकारी यंत्र के निर्माण करने के नियम बताने के उपरांत अगस्त्य मुनि विद्युत्-द्वारा क़लई करने की रीति भी बताते हैं।" यह अद्भुत ज्योति ताँबे को अम्लजल की उपस्थिति में चाँदी अथवा सोने से क़लई करती है। वहाँ उस धातु का (सोना या चाँदी) शोरे से मिली हुई होना आवश्यक है। अभी-अभी थोड़े दिन हुए, इटली के काउंट मैटी (Count Mattie) ने यह सिद्ध किया है कि मनुष्य के शरीर के भिन्न-भिन्न भाग भिन्न प्रकार की बिजलियों के केंद्रस्थल होते हैं। प्राचीन आर्यगण इन सब बातों को इतना अधिक जानते थे कि उनके गुण-दोषों का विचार करके उनको धार्मिक तत्त्वों में मिला दिया था। इसी विषय को इंगित करके स्वामी दयानंद बी० ए० लिखते हैं—"देवमंदिर के ऊपर अष्टधातु का चक्र अथवा त्रिशूल आदि लगाने की जो विधि है, वह विद्युत्-विज्ञान की उन्नति ही का चिह्न है। आजकल की विज्ञान-दृष्टि से यह प्रमाणित हो चुका है कि अष्टधातु वज्रपात को निवारण करता है, इस कारण मंदिरों पर वह स्थापित किया जाता है। उसी प्रकार उत्तर सिर होकर सोने से कुस्वप्न देखने की संभावना है; क्योंकि पृथ्वी की स्वाभाविक तड़ित् का प्रभाव दक्षिण से उत्तर की ओर प्रवाहित होता है, इस कारण उस रीति पर सोने से शोणित की गति पद की ओर से मस्तक की ओर अधिक वेग से हो सकती है। इसी कारण शारीरिक तड़ित् द्वारा तभी अपक्व फल दूषित हो जायगा, जब उसकी ओर उँगली उठाई जायगी। इसी कारण शूद्र में तमोगुण अधिक होने से उसका छुआ हुआ अन्न भी उसकी दूषित तड़ित् द्वारा दोषयुक्त हो जाने पर श्रेष्ठ तड़ित्युक्त ब्राह्मण की देह के लिये अहितकारी ही है। पृथ्वी सदा जीव शरीरांतर्गत तड़ित् को खींचा करती है, उपासना करते समय मनुष्य-शरीर में सात्त्विक तड़ित् का बढ़ना संभव है; परंतु पृथ्वी पर बैठकर उपासना करते समय वह तड़ित्-संग्रह पृथ्वी द्वारा नाश को प्राप्त हो सकता है, किंतु चैल, अजिन, कुश और कंबल में तड़ित् ग्रहण करने की शक्ति नहीं है, वे Non-conductor (अप्रवाहक) हैं। इस कारण उन पर बैठकर साधन करने से क्षति नहीं होगी। सुवर्ण आदि धातु तड़ित्शक्ति-वृद्धि-कारक हैं, तड़ित्शक्ति की वृद्धि से शारीरिक इंद्रियों में विशेष स्फूर्ति होती है। इंद्रियों में विशेष स्फूर्ति होने से स्त्रियाँ सुसंतान उत्पन्न कर सकती हैं; इसी कारण आर्य-सदाचार में सधवा स्त्रियों को धातुमय और रत्नमय अलंकार धारण करने की आज्ञा दी गई है। तड़ित्-विज्ञानपूर्ण इन आचारों को सुनकर साधारण बुद्धियुक्त मनुष्य भी समझ सकते हैं कि प्राचीन आर्यों ने इस

सूक्ष्म विज्ञान को किस उन्नत अवस्था में पहुँचा दिया था।"

भारतवर्ष में विज्ञान की उन्नति में कदाचित् रसायन का हाथ ज्योतिष से भी अधिक रहा है। सारी की सारी ओषधियाँ, जिनके कारण आयुर्वेद का मुख आज तक लोगों के बुरा कहने पर भी उज्ज्वल है, रसायन द्वारा ही निकली हैं। उनके गुण-दोषों की जाँच करना, उन्हें खोज निकालना, यह समस्त गौरवपूर्ण कार्य रसायन द्वारा ही संपादित किए गए थे। इसमें आर्यों का ज्ञान केवल प्रयोगज्ञान-मात्र ही न था, बरन् बहुत-से उज्ज्वल-से-उज्ज्वल सिद्धांतों द्वारा परिवेष्टित था। उनका समस्त वस्तुओं के आदि-स्वरूपा क मत, उनका जलने का सिद्धांत, उनकी रासायनिक कलाएँ, ये सभी-की-सभी अत्यंत परिपक्व अवस्था में थीं। कणाद का जो सब पदार्थों के आदिवरूप-विषयक सिद्धांत था, वह अभी तक अपने से बढ़कर किसी और सिद्धांत को उसी विषय पर नहीं पाता है। कणाद कहते हैं—"एक कणिका, जो केवल सूर्यरश्मियों में देख पड़ती है, दृष्टव्य पदार्थों में सबसे क्षुद्र होती है। यह एक पदार्थ तथा एक तत्त्व है, यह अपने से छोटी वस्तुओं द्वारा गठित होगा, और उसी प्रकार यह भी एक पदार्थ तथा तत्त्व है; क्योंकि किसी पदार्थ का भग्नांश जिसमें परिमाण होता है, वह एक तत्त्व कहलाता है। पुनः फिर यही छोटी-छोटी वस्तुओं द्वारा बना होता है और ऐसी सबसे छोटी वस्तु 'कण' कही जाती है। यह अति-शय शुद्ध है और भग्नांश न होनेवाली है, अन्यथा यह क्रम अनंत हो जाय, और यही प्रथा अनंत की जाय, तो अंततः एक पर्वत, गज तथा सर्षप के बीज में परिमाणा-नुसार कोई भेद ही न रह जाय, न एक गज और एक चींटी में; क्योंकि दोनों ही अनंत 'कणों' के समूह हैं।"

"सांख्य (पातंजल) के मतानुसार एक परिमाणु के, यद्यपि वह अतिशय क्षुद्र होता है, कुछ-न-कुछ परिमाण होते ही हैं, वे तन्मात्रों में विभाजित होते हैं और वे तन्मात्र स्वयं ही भूतादिकों के समूह हैं"। पुनः "जैनों के मतानुसार भिन्न-भिन्न प्रकार की आदि-वस्तुएँ सब-की-सब एक ही प्रकार के आदि-कणों द्वारा सृजित हैं"। फिर वही जैन लोग कहते हैं कि "एक पदार्थ के बनने के लिये केवल संस्थिति ही की आवश्यकता नहीं, बरन् उस पदार्थ के बनने के पूर्व कणों में परस्पर संबंध होना अनिवार्य है। साधारण रीति से पदार्थ का एक कण योगशक्ति से परिवेष्टित होगा तथा दूसरा वियोग-शक्ति से; दो कणों में दो विशिष्ट तथा परस्पर प्रतिकूल गुण होना आवश्यक है। कणों के गुणों की भिन्नता इसी संबंध पर निर्भर है।" यह सब बड़े काम के हैं। एक तो वे आजकल की Atomic theory के अनुसार हैं ही, बरन् उससे भी बढ़ जाते हैं। वे Election theory के पूर्व-परिचायक हैं। सांख्यमत में परिमाणु आधुनिक Molecules ही हो सकते हैं, तन्मात्र केवल Atoms ही है, परंतु भूतादियों की भी समानता ढूँढ़नी है। वह केवल Elections ही में मिल सकती है, फिर जैन लोग भी Atoms को एक अथवा ततोधिक और छोटे कणों का योग बताते हैं और कहते हैं कि Molecules में तथा Atoms में भी दो भिन्न-भिन्न प्रकार के कण होंगे। एक संयोगात्मक और एक वियोगात्मक (Positive and negative)। इससे भी यही ज्ञात होगा कि वे लोग Elections and protons का ज्ञान रखते थे तथा Negative and positive Radicals का भी ज्ञान था, यह सब केवल आजकल के सिद्धांतों का बालक-रूप है। फिर पदार्थों का यथार्थ आंतरिक भेद क्या है, यह भी हिंदुओं से बचा नहीं था। सील कहते हैं कि "इस विचार से एक नया पदार्थ, तात्कालिक परिवर्तन से बन सकता है अर्थात् बाहर से कोई कार्य न होने पर भीतर-ही-भीतर शक्ति के परिवर्तन से ही हो सकता है। आजकल के रसायन-शास्त्रांतर्गत एक ऐसी वस्तु है, जिसे Isomeric change कहते हैं। इसी के पीछे आजकल के वैज्ञानिक अपने को बहुत बड़ा गिनने लगे हैं।

केवल मतों ही का उन लोगों ने प्रतिपादन नहीं किया, बरन् व्यावहारिक रसायन में भी वे अद्वितीय थे। सर प्रफुल्लचंद्र राय ने लिखा है—"बारहवीं व तेरहवीं शताब्दी और कदाचित् इससे भी पहले, भारतवर्ष में व्यावहारिक रसायन का जो ज्ञान प्रचलित था और जिसका हमको 'रसार्णव' तथा ऐसे ग्रंथों से पता मिलता है, वह उसी काल के योरपीय ज्ञान से कहीं अधिक उन्नत अवस्था में था। उदाहरणार्थ, उस समय यह मालूम था कि तूतिया तथा और ऐसी ही कई प्रकार की सोना-

मक्खियों द्वारा एक ऐसा पदार्थ उत्पन्न होता था, जो ताँबा-जैसा होता है, तथा एक और खनिज से जस्ता होता था। किसी धातु के निर्णयार्थ, परीक्षा के लिये, उसकी ज्योति देखी जाती थी। धातु का शोधन, जिसका वर्णन उन ग्रंथों में दिया है, अब और उन्नति का स्थान नहीं रखता और यथार्थ में वे रसायन के किसी आधुनिक ग्रंथ में, वैसे-के-वैसे, लिखे जा सकने का श्रेय रखते हैं''। औषधि-संबंधी वार्ताओं में, जैसे उनका यथास्थान रखना, बड़ी उन्नति हुई थी। उत्तम क्षार को आर्य लोग बनाते और उसे वे लोहे के पात्रों में रखते थे, यह बड़े ही मार्के की बात है, जो आधुनिक वैज्ञानिकों को बड़े परिश्रम के बाद मिली है और इस भूमंडल पर रासायनिक ज्ञान को पहले-पहल व्याधि-हरण में प्रयोग करने का श्रेय भारतवासियों ही को है। रंगों के विषय में भी उन लोगों के सिद्धांत बड़े उत्तम थे। उन्होंने सात रंगों को अलग-अलग जाना था, परंतु उनके सम्मिश्रण करने से जो रंग बनते थे, उनसे वे अनभिज्ञ न थे, किसी पदार्थ का रंग उसके अंश के रंगों का सम्मिलन ही है। उनको यह ज्ञात था कि जब फूलों से सुगंध निकलती है, तब उनकी तौल नहीं घटती; परंतु कपूर इत्यादि में गंध के साथ तौल भी कम होती जाती है। वे लोग वृक्षों की छाल से क्षार बनाते थे और यह जानते थे कि उनका प्रभाव अम्ल द्वारा नाश किया जा सकता है। वे लोग अम्ल (Acids) बनाने की प्रथा भली भाँति न जानते थे, परंतु उनकी साखियों में बहुत-से अम्लों का नाम आया है। राजसी जल Aqua regia का पता उन लोगों को था और वे उसका सब धातुओं को गलाने में प्रयोग करते थे। रँगने की कला पारा काष्ठा तक पहुँच गई थी और बड़े-बड़े उत्तम रंगों का आविष्कार हुआ था। यह सब सर प्रफुल्ल की गवेषणा से मालूम हुआ है। यही भारतवासी धातु के पदार्थ बनाते थे और उनकी रीति आधुनिक रीति से किसी भी दशा में न्यून नहीं है। उन्हें धातु मारने की जो सिद्ध-हस्तता प्राप्त थी, वह आज दिन तक किसी और को प्राप्त नहीं हो सकी है। सील महाशय उपर्युक्त मत में योग देते हैं। वह कहते हैं—''छठी शताब्दी के पूर्वार्द्ध में ही बृहत्संहिता में वराहमिहिर ने कई एक ऐसे प्रयोग दिए, जिनसे एक प्रकार के चूर्ण बनाए जा सकते हैं। उनका नामकरण उसने 'वज्रलेप' किया है''। उनके द्वारा लिपे हुए प्रासाद तथा मंदिर सहस्रों वर्ष तक स्थायी रहेंगे। यथा—

प्रासादहर्म्यवलभीलिंगप्रतिमासु कुडयकूपेषु संतप्तो दातव्यो वर्षसहस्रायुतस्थायी—बृहत्संहिता—५६

वाराहमिहिर फिर यंत्रविदों को इंगित करता है, जिसके अर्थ वह मनुष्य हैं, जो यंत्रों के विषय में पूर्ण ज्ञान प्राप्त किए हुए थे। फिर 'रागगंधयुक्तिविदः' का भी ज़िकर आया है। इन बातों से एक ही तात्पर्य निकलता है कि ऐसे मनुष्यों का तब आविर्भाव नहीं था। ''वासवदत्ता तथा दशकुमार-चरित में, जिनका काल छठी शताब्दी है, आया है कि एक रासायनिक चूर्ण ऐसा था जिसके सूँघने से गहरी निद्रा आती है (योगचूर्ण), और फिर बिना अग्नि के प्रकाश देनेवाली एक बत्ती अथवा पलीता रसायन द्वारा बना था और एक ऐसा चूर्ण, जो शरीर को स्फूर्तिहीन कर देता है''। पुनः सुंदरकांड, एकादश सर्ग (रामायण) का १८वाँ श्लोक ऐसा है—

तत्र तत्र च विन्यस्तैः सुश्लिष्टैः शयनासनैः;
पानभूमिर्विना वह्निं प्रदीप्तेवोपलक्ष्यते।

इससे क्या यह नहीं सिद्ध होता कि जिस रेडियम को जो आजकल घड़ियों इत्यादि पर लगाया जाता है, पाकर आज के लोग मुँह नहीं सीधा करते हैं, वही प्राचीन हिंदुओं को मालूम था ? उन्हें इसका तो पता था ही, साथ-ही-साथ क्लोरोफ़ार्म और कोकेन-जैसे पदार्थों का भी ज्ञान था। तेल और चर्बी के वास्तविक मत का पता भी इन्हें था और यह मत भी पूर्णतः आधुनिक ही के समान है।

हृषिकेश त्रिवेदी

जीवन-ज्योति

भाव और रूप

श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा है—"अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्तमध्यानि भारत"—हे भारत, अव्यक्त अर्थात् जगत् का मूल-कारण ही भूतों का आदि है; अतएव जो सृष्टि पहले अव्यक्त थी, वह जन्म और मृत्यु के द्वारा व्यक्त होकर, पुनः अपनी कारणभूत प्रकृति में लीन होकर अव्यक्त हो जाती है। इस उक्ति में दो बातें मिलती हैं, एक अव्यक्त और दूसरा व्यक्त। सृष्टि उसी समय व्यक्त कहलाती है, जब किसी पदार्थ का अस्तित्व किसी रूप या आकार में प्रकट होता है, अन्यथा वह अव्यक्त या अरूप रहती है। सृष्टि की यही संसरण-संहरण-प्रणाली सत्कार्यवादी कापिल सांख्यानुमोदित भी है। अनादि और अनंत काल से निरंतर घूमते हुए चक्र के समान अव्यक्त और व्यक्त के इस परिवर्तन, इस अवस्थांतर को प्रकारांतर से भाव और रूप भी कहा जा सकता है। भाव और रूप का विनिमय ही इस सृष्टि का व्यापार है। इनके देन-लेन का परिशोध ही इस सृष्टि की कल्पांत-काल-व्यापी कठोर साधना है।

प्रथमतः और प्रधानतः वस्तु या पदार्थ से 'भाव' का ही बोध होता है। अस्तु, पहले उसी पर विचार करना उचित होगा। वेदांत का कथन है कि यह जगत् वास्तव में असत् होने पर भी सत्य के समान प्रतीत होता है; परंतु जो इसके आदि, मध्य और अंत में वस्त्र के सूत्र के समान ओतःप्रोत भाव से विद्यमान है, वह जब अकेला रह जाता है, उस समय एक अखंड अव्यक्तभाव के सिवा और कुछ नहीं रहता। भाव जिस समय व्यक्त होता है, उस समय कोई-न-कोई रूप अवश्य ही धारण कर लेता है। इस दृष्टि से यह कहा जा सकता है कि यह सारी सृष्टि भाव की ही अभिव्यक्ति है। भाव ने ही अपने को इस रूप में खड़ा किया है और समय पर यह रूप अपने कारण भाव में लीन हो जायगा।

परंतु इससे यह न समझना चाहिए कि जो कुछ है सब भाव ही है, रूप कुछ है ही नहीं। या वह भाव से अविश्लिष्ट है अथवा एक रस-विहीन शुष्क काष्ठ के समान है। भाव, रूप में रहकर अनेक प्रकार से अपने सौंदर्य

को प्रस्फुटित करने में सचेष्ट रहता है । मानो इस सौंदर्य के स्फुटन में ही उसकी संपूर्ण सार्थकता है—उसकी अनंत आकांक्षाओं की ईप्सित पूर्णता है ।

षड्जादि सप्तस्वर अथवा भावों के विचित्र समावेश से विशेष-विशेष राग-रागिनियों की सृष्टि होती है । यह जलस्थल तथा असीम आकाश में जो अनंत सौंदर्य छाया हुआ है, जिसके आदर्श को ग्रहण कर कवि के काव्य, शिल्पी के शिल्प तथा प्रेमी के प्रेम की सृष्टि होती है, उसका उद्गम भी भाव ही है । भाव का अस्तित्व तत्त्व-पदार्थों में सन्निहित होने से ही वे भी मानो स्वतंत्र रूप से एक-एक भाव-विशेष की प्रतिमूर्ति हैं ।

रूप—सत्त्व, रज, तम गुणत्रय विशिष्ट होता है । गुणत्रय भाव की अन्य प्रकार अभिव्यक्ति है । प्रत्येक अपनी स्वतंत्र अवस्था में एक-एक पृथक् भाव-विशेष होते हैं । निरवच्छिन्न सत्त्व या रज अथवा तम रह नहीं सकता । न्यूनाधिक परिमाण में विषय गुण के सम्मिश्रण से एक-एक भाव-विशेष की उत्पत्ति होती है ।

इन सब भावों में से जब किसी विशेष भाव से रूप की कल्पना की जाती है, तो वह उसी के अनुरूप आकार धारण करता है । रज और तम को पराभूत कर शुद्ध सत्त्व भाव में रूप के स्थित होने पर फिर उसे ढूँढ़कर नहीं पाया जा सकता । जिस प्रकार जल का बिंब जल में लय हो जाने पर फिर उसे ढूँढ़ निकालना असाध्य है, वही अवस्था रूप की भी सत्त्व में लीन हो जाने पर होती है । उस समय वह अपने में ही लीन हो जाता है । अस्तु, विशुद्ध सत्त्व के अभाव में रूप का प्रकाश होता है ।

प्रत्येक पदार्थ का अपना स्वतंत्र रूप होता है । एक का सादृश्य दूसरे में पाना कठिन है । फल-फूल, पेड़-पल्लव आदि साधारण पदार्थों में भी कितनी असाधारणता विद्यमान रहती है । समपर्यायभुक्त पदार्थों में भी सब क्षेत्रों में पारस्परिक सामंजस्य नहीं पाया जाता, यहाँ तक कि एक ही पेड़ की दो पत्तियाँ भी रूप, रस, गंध और आकार-प्रकार आदि सब भावों से एक ही प्रकार की नहीं होंगी । रूप, रस, गंध, वर्ण आदि के यथोचित विन्यास में, इस सत्य और शिव की सार्वभौमिकता में भाव और रूप की कैसी विचित्र प्रतिष्ठा है ! मानों उसी में इस सृष्टि की संपूर्ण सार्थकता छिपी हुई है । हम यह भी देखते हैं कि बेला और गुलाब के रूप की तुलना में एक न होने पर भी भाव की तुलना में कौन बड़ा है और कौन छोटा है, यह निर्णय करना अत्यंत कठिन है । सूर्यकरोज्वल शरत् के मेघमुक्त निर्मल निविड़ नीलाकाश के निकट, तारका रत्न-खचित कौमुदी-वसनावृत चंद्रिका का किरीटी शारदीय नभ रूप की गरिमा में किसी प्रकार कम न होने पर भी भाव की गरिमा में क्या स्थान है, कहना दुष्कर है । सहस्ररश्मि के रश्मि-विशेष को धारण करने से चंद्र की कांति है, पुनः भाव की ओर देखने से भावमहाजन मरीचिमाली के निकट उसके भावऋण की मात्रा कितनी अधिक है ! यहाँ पर रूप और भाव का क्षेत्र संकीर्ण न होने पर भी संभवतः विस्तृत नहीं कहा जा सकता । वह पंगु न होने पर भी परमुखापेक्षी नहीं है—यह भी नहीं कहा जा सकता । इस प्रकार देखा जाता है कि रूप और भाव दोनों ही एक दूसरे का हाथ पकड़कर न चलते हों—ऐसा नहीं है । पुनः एक दूसरे का संग पाने के लिये व्याकुल नहीं हैं—ऐसा भी नहीं प्रतीत होता है ।

सुंदर कहकर जिसे हम पुकारते हैं, वह रूप में भाव तथा भाव में रूप के लुकने-छिपने की क्रीड़ा के अतिरिक्त और क्या कहा जा सकता है ? जहाँ पर जिस परिमाण में यह क्रीड़ा-प्रावृट की घनघटा के बीच घनीभूत हो उठता है, वहाँ उसी अनुपात में सौंदर्य का अथवा भावसौदामिनी का विकास देखने में आता है ।

हम पहले कह आए हैं कि भाव, रूप में रहकर अपने को विकसित करने में सर्वदा सचेष्ट रहता है तथा इस विकास में ही उसकी सार्थकता है । पुनः देखते हैं कि भाव का या अरूप का आस्वादन करते-करते स्वयं उसी रस में शराबोर होकर, उसी में तल्लीन होकर अपने को उसी में परिणत करने में ही मानो रूप की संपूर्ण सफलता है । भाव या अरूप सोचता है कि हममें ऐसा कौन-सा माधुर्य अलक्षित रूप से सन्निहित है जिसके लिये रूप इस तरह आत्म-विस्मृत-सा है कि हममें अपने को एकदम विलीन, एकाकार अथवा हमरूप हो जाने के लिये व्याकुल रहता है । रूप की इस अनिर्दिष्ट व्याकुलता से हम यही समझते हैं कि भाव के मध्य ऐसा कोई एक अस्पष्ट माधुर्य अपने को निरंतर छिपाए रखना चाहता है, जिसकी पुकार रूप के कण-कण में पड़कर उसे पूर्ण करना चाहती है । भाव और रूप का जो यह पार-

स्परिक आकर्षण है, वह केवल आकर्षण ही नहीं है एक का दूसरे को पूर्ण भाव से, घनिष्ट भाव से पाने के लिये—समुद्र-प्राप्ति के उद्देश्य से निरंतर बहती हुई नदी के समान जो उद्दाम और उच्छल चंचलता है, वह—मानो एक के लिये दूसरे का अभिसार है। भावसागर की असीम विपुलता में, अपार विशालता में, अपरिमेय अगाध गंभीरता के अतल तल में अपने को खो देना ही मानो रूप का लक्ष्य है, उसके साथ एकतास्थापन या निकट संबंध जोड़ना ही मानो रूप का उद्देश्य है। रूप समझ सकता है और समझकर यही प्रत्यक्ष करता है कि 'आनंदरूपममृतं यद्विभाति'—वह इसी भाव में है, इसी से उसके इस आनंद के इस अमृत के निमित्त, विकारग्रस्त रोगी की अनिवार्य पिपासा के समान यह पिपासा, जन्म-जन्मांतर पान करने पर भी परितृप्त नहीं होती। रूप मानो फिर यह भी अनुभव करता है कि विश्व के निखिल सौंदर्य के निभृत प्रदेश में जो महीयसी शक्ति तिल-तिल संचित होकर पुंजीभूत हो गई है, यह भाव-सौंदर्य उसी का पूर्ण विकास है, इसी से वह रूप की अतृप्त इच्छा का फल है—उसके संपूर्ण सुख-दुख का सारतत्त्व है। भाव के मलय-मधु के प्रस्तुत होने पर भाव-मधुचक्र से मधु झरकर रूप को संजीवित रखता है। भाववधू के घनिष्ट आलिंगन से रूप जिस अवस्था पर पहुँचता है, वह स्वप्न या जागरण है, माया या मति-भ्रम है। इसे स्थिर न कर सकने के कारण वह निस्पंद हो पड़ता है, सर्वेंद्रिय की शिथिलता से विह्वल हो उठता है, मानो किसी एक विकार से उसकी चैतन्य-शक्ति विलुप्त हो जाती है। इस प्रकार यह द्वैत का पारस्परिक आदान-प्रदान है अथवा एक शब्द में दोनों की चिर-अतृप्ति का एक करुण प्रवाह है।

इससे प्रकट होता है कि रूप मानो अरूप के राज्य से आता है। अरूप, नित्य एकरस है; और रूप रस वैचित्र्य है। तथापि ये रूप और 'अरुप' परस्पर नित्य संबंध में आबद्ध हैं। अरूप में मानों रूप की संपूर्ण पिपासा छिपी हुई है, जिसकी परितृप्ति नहीं है। निशि-दिन मानो वह शुष्क कंठ शुष्क तालु, 'Tantalus Cup' के समान अधर पर आते-न-आते ही दूर हट जाता है; वेदना को दूर करने के लिये ही आकर वेदना को और भी अधिक बढ़ा देता ह। इसी से सृष्टि के आदि-काल से ही उसके हृदय का 'स्वच्छ जल'—'स्वच्छ जल का करुण-आर्त्तनाद'—मानो विश्व के प्रत्येक हृदयद्वार पर समवेदना की आशा से निरंतर आघात करता आ रहा है।

भाव या अरूप के लिये रूप की तथा रूप के लिये भाव की इस तृषा में ही मानो एक दूसरे की सार्थकता है, जिस प्रकार चक्षु आदि पंचेंद्रिय होने से ही इनके विषय रूप रस गंध स्पर्श शब्द की तथा इन विषयों के लिये इंद्रियों की सार्थकता है। भाव के या अरूप के अनुपम महिमामय मंदिर में रूप चिरमुग्ध स्तब्ध नीरव पुजारी है। भाव ही उसके शाश्वत तन्मय ध्यान का संचित तप है। पुनः भाव या अरूप की ओर से विचार करने से विदित होता है कि भाव या अरूप संपूर्ण माधुरी देकर मानो रूप को अपनी इच्छानुसार तैयार करता है। रूप की इस तैयारी से ही उसकी संपूर्ण साधना सिद्धि-लाभ नहीं करती; रूप में अपना स्थान ढूँढ़कर वहाँ अपना आसन जमाकर तब वह शांति पाता है—परितृप्त होता है।

पुनः देखने में आता है कि एकमात्र रूप ही भाव या अरूप की संपूर्ण साधनाओं का साध्य फल नहीं है। रूप उसका मूक-मौन चित्र है और भाषा उसकी पूर्णता। रवि, शशि और तारों के प्रकाश में, निर्मल आकाश की निविड़ नीलिमा में, विकसित कुसुमों के वर्ण-वैचित्र्य में, सरित्सरोवर के छलकते सलिल में भाव या अरूप के निर्मल नीरव हास्य का चित्र अंकित है; चिड़ियों की चहकन में, भ्रमरों के गुंजार में, समीर के सुरभित निःश्वास में, मनुष्य के कंठरव में उसके संगीत का परिचय मिलता है और कलाकार की कला में तथा कवि की वाणी में उसकी भाषा का प्रकाश है। चित्रकार की निपुण तूलिका में उसकी अभिव्यक्ति है। किंतु क्या सभी चित्रों में यह भाषा परिस्फुट हुई है? क्या कहीं भी कुछ-न-कुछ अव्यक्त नहीं रह गया है? भाव जितना ही निविड़ और गहन हो उठता है, भाषा भी साथ-ही-साथ उसी परिमाण में इच्छा न रहने पर भी अस्पष्ट हो जाती है। एक दूसरे के ऊपर आधिपत्य जमाने की चेष्टा करता है; अंत में यही होता है कि जो व्यक्त होने के लिये व्याकुल होता रहता है, उसका वह अंश उतना ही परिस्फुट होता है, जो योग्य-तम होता है, शेष अयोग्य न होने पर भी प्रतियोगिता में पराभूत होकर भाव में ही अप्रकट रह जाते हैं। अपनी

संपूर्ण शक्ति लगाकर जब भाषा अपने को व्यक्त करने में, अपनी आकांक्षा को परितृप्त करने में असमर्थ हो जाती है, तो बेचारी लाचार भाव-जननी के निकट यही कहकर अपने हृदय-भार को हलका करती है कि "रही वेदना मन की मन में" 'मन में सोचा था कि कहूँगी पर न सकी कुछ भी कह,' 'लज्जावश कुछ न कह सकी मैं'! इत्यादि। इस प्रकार यह अनुमान होता है कि भाषा की यह असमर्थता मानो भाव को ही अभिप्रेत है। अपने आत्मप्रकाश के लिये भाव का एक ओर जिस प्रकार व्याकुल प्रयास रहता है, दूसरी ओर उसी तरह स्वात्मावगुंठन में स्वभाव-सुलभ अयत्नसंभूत शीलता रहती है। पीछे कोई कुछ कह न दे, इस भय से मानो वह अपने को छिपाने के लिये व्यग्र रहता है। कुलवधू के समान वह अपने को पूर्णरूपेण प्रकट करने में मानो बहुत ही कुंठित और लज्जा से संकुचित रहता है। अपने को कुछ परिमाण में अज्ञेय, अनधिगम्य करने का प्रयास ही भाषा को उसके तत्त्वानुसंधान के लिये व्याकुलता उत्पन्न करने का कारण है। भाषा भाव को पकड़ने के लिये जितना ही व्याकुल रहती है, भाव उतना ही अपने को दूर हटा ले जाता है। यही अस्फुट अवास्तविक भाषा प्राणी को मुग्ध और भ्रांत कर देती है तथा स्वयं भी भ्रमित होकर गंतव्य पथ की सीमा के भीतर ही नीरव और निस्पंद हो रहती है।

अव्यक्त और व्यक्त की, भाव अरूप और रूप की अथवा असीम और ससीम की एक दूसरे के लिये जो व्यग्रता व्याकुलता और चंचलता है, वह अवाङ्मनसोगोचर है। ससीम खंड होने के कारण अतृप्त है; अस्तु असीम में अपने को लीन कर देने की उसकी आकांक्षा तनिक भी अस्वाभाविक नहीं है। परंतु असीम अखंड और पूर्ण होकर भी ससीम के साथ के लिये जो लालायित है, यह एक अवाङ्मनसोगोचर दुर्ज्ञेय और दुर्भेद्य रहस्य है। इसी से रूप या ससीम, अरूप या असीम के निकट शाश्वत-काल से यह करुण कातर प्रार्थना करता आ रहा है— "वाङ्मे मनसि प्रतिष्ठिता मनो मे वाचि प्रतिष्ठितम्—आविरावीर्मएधि"—हमारा वाक्य मन में तथा मन वाक्य में प्रतिष्ठित है! हे स्वप्रकाश! तुम हमारे अंतर में आविर्भूत हो।

अखौरी गंगाप्रसादसिंह

संगीत और विनोद

शब्दकार—अज्ञात] [स्वरकार—श्रीराजाराम भार्गव

त्रिताल—रूपमंजरी मल्हार

बनवारी बिन लागे मोकू रैन भयावन।
युग समान अवध बितत, नेक न सरात आली
लागो सावन।

अस्थायी

धा	धिन	धिन	ना	धा	धिन	धिन	ना	ता	तिन	तिन	ना	धा	धिन	धिन	ना
×				३				०				१			
							सस	स म	र	प	मग	म	र	स	सस
							बन	वा	ऽ	ऽ	ऽऽ	ऽ	री	ऽ	बिन
स	—	स	ऩ	ध़	ऩ	प़	सस	स म	रग	मप	मग	म	र	स	सस
ला	ऽ	गे	मो	कू	ऽ	ऽ	बन	वा	ऽऽ	ऽऽ	ऽऽ	ऽ	री	ऽ	बिन
स	—	स	न	ध़	न	प़	—	ऩ स	—	—	न	ध़	न	प़	रग
ला	ऽ	गे	मो	कू	ऽ	ऽ	ऽ	रै	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	न	भऽ
सर	म	—	—	प	न	ध	नध	पम	रग	मप	मग	म	र	स	
याऽ	ऽ	ऽ	ऽ	व	ऽ	न	वन	वाऽ	ऽऽ	ऽऽ	ऽऽ	ऽ	ऽ	री	

अंतरा

							म र	र	म	म		प	—	प	पम
							यु	ऽ	ग	स		मा	ऽ	न	अऽ
न	—	ध	न	ध	प	—	सं	न	ध	प	न	ध	प	म	ध
व	ऽ	ध	बि	त	त	ऽ	ने	ऽ	क	न	स	रा	ऽ	त	आ
प	म	ऽग	स	—	नध़	नप़									
ली	ला	ऽगो	सा	ऽ	वऽ	नऽ									

तानें

×				३				०				१			
१. सरस	रमर	मपम	पधप	धनध	नसंन	संरंसं	नसंन	धनध	पधप	मपम	गमग	सगस	ऩसऩ	धऩप़	

२. सम रप मग रग | मप मग रस |

३. | सम रप मग | रग

मप नुध नुप सं | नुध पम गर |

४. सम रप मग रग | मप नुध नुप संनु | धप नुध पम धप | मग सनु धप |

५. रग मप नुध पसं | रंसं नुध पम गग |

६. स — नुध नुप | सर मप नुध पसं | नुध नुप रंगं संरं | मंगं सं रंसं | ऽनु

ध पम ऽग र | सनु ऽध प |

सूचना

माधुरी के गतांक पृष्ठ ६३५ पर—"अनुभूतप्रयोगसंग्रह" का एक विज्ञापन प्रकाशित हुआ था, उसमें ग़लती से पता छपने से रह गया है। अतः जिन्हें "अनुभूतप्रयोगसंग्रह" मँगाना हो, वह "धन्वंतरि कार्यालय नं० १, विजयगढ़, ज़िला अलीगढ़" से मँगावें।

जूते
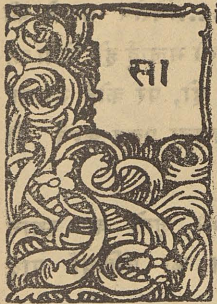
साहित्य में जूतों का क्या स्थान है या यों कहा जाय कि साहित्यसेवियों का जूतों से कैसा संबंध रहा है, इस विषय की विवेचना करने से पहले यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि इस लेख का किसी विचाराधीन मामले से कुछ लेना-देना नहीं है। समालोचना को सार्थक करने के लिये, जूतों का प्रयोग भारतवर्ष में कब से चला, यह कहना कठिन है। स्वामी दयानंदजी के गुरु स्वामी विरजानंदजी को कुछ लोग इस प्रथा का प्रवर्तक मानते हैं, और पंडित महावीरप्रसादजी द्विवेदी ने एक विशेष अवसर पर उन्हें जूतेबाज़ संन्यासी के नाम से पुकारकर आर्यसमाज में काफ़ी खलबली मचा दी थी। स्वामी विरजानंदजी प्राचीन काल के दो-एक ऋषियों के विरोधी थे, और उनका विरोध इतना बढ़ा-चढ़ा था कि वृद्धावस्था में भी वह समालोचना में संयम का पालन करने में असमर्थ थे। किंवदंती है कि वह जिस ऋषि पर विशेष क्रुद्ध होते, उसकी मिट्टी की प्रतिमा बनाकर उस पर जूतों का प्रहार करते। मालूम नहीं, असलियत क्या थी, पर द्विवेदीजी ने उन्हें जो विशेषण दिया, वह भारतवर्ष के एक सजीव समाज को अत्यंत आपत्तिजनक जँचा और थोड़े समय के लिये एक ख़ासा आंदोलन खड़ा हो गया। सुना जाता है, अंत में द्विवेदीजी ने 'कर कुठार आगे यह सीसा' कहते हुए अपना सिर आर्यसमाज के सामने कर दिया और इसका असर यह हुआ कि विरोधी शांत हो गए, द्विवेदीजी को और विषयों पर लेख लिखने की फ़ुरसत मिल गई।

साहित्य में समाज के जीवन का प्रतिबिंब रहता है, इसलिये जिस प्रश्न से यह लेख आरंभ होता है, उसका यथार्थ उत्तर पाने के लिये यह जानना आवश्यक है कि समाज में जूते किस नज़र से देखे जाते हैं? कहा जाता है कि ज़माना बदल रहा है, क्रांति की लहर चारों ओर फैल रही है। इसमें संदेह नहीं कि परिवर्तन काफ़ी हो चुका है, हो रहा है और होनेवाला है। पर क्या जूतों के प्रति हमारे हृद्गत भाव में भी कोई अंतर पड़ा है या हमारा दृष्टिकोण बदला है? यह बताना व्यर्थ है कि कुछ मारवाड़ी सज्जन चमड़े की जगह कपड़े का व्यवहार कर रहे हैं या साबरमती-आश्रम से चप्पलों की रफ़्तनी हो रही है। मैं तो यह जानना चाहता हूँ कि क्या हमारे साम्यवादी भाई भी जूतों की वकालत करने और उनके लिये लड़ने-मरने को तैयार हैं? अर्थात् जब ऊँच-नीच के भेद के लिये इस बीसवीं सदी में स्थान नहीं है, तब पैर के जूते आपके सिर की पगड़ी से किसी भी बात में कम क्यों माने जायँ और साम्यवादियों या क्रांतिकारियों के प्रोग्राम में उन्हें उनका उचित स्थान क्यों न मिले?

कुछ दिन से कलकत्ते के अख़बारों में जूतों की काफ़ी चर्चा है। कल रात मैंने साफ़ देखा कि मेरे कमरे में बाहर बरामदे में जूतों की विराट् सभा हो रही है और बड़े जोशीले व्याख्यान हो रहे हैं। स्त्रियों की ओर से कोई आपत्ति न हो, इसलिये जहाँ जूते इकट्ठे हुए थे, वहाँ जूतियाँ भी थीं। दूसरी बात मार्के की यह थी कि गोरे-काले मग़रिबी-मशरिक़ी का कोई भेद न था—चौरंगी के ह्वाइटवे लेडला, बेंटिंग स्ट्रीट के ह्वांकांग-च्वांग, कालेज स्ट्रीट की ग्वालियर टैनरी और मछुआ बाज़ार के आस-पास की देशी दूकानों के माल एक प्लाटफ़ार्म पर अपनी अपनी विभिन्नता को भूलकर सम्मेलन-सुख का अनुभव कर रहे थे। मुझे यह भी जान पड़ा कि मेरी चट्टी सभा की कार्यवाही में पूरा भाग ले रही है। मुझे इस समय याद नहीं कि किसने क्या कहा, कितने प्रस्ताव पास हुए; पर उस भारी-भरकम बूट की बातें जिसे सभापति का आसन प्रदान किया गया था, मेरे कानों में इस समय भी गूँज रही हैं—

> "हीन हों हम किंतु रखते मान हैं;
> गो-प्रमुख पशु-जाति की संतान ह।
> न्याय से अधिकार अपना चाहते;
> कब किसी से माँगते हम दान ह।

सोचने की बात है कि जूतों के प्रति प्रचलित व्यवहार कौन-से न्याय की भित्ति पर अवलंबित है? साफ़-से-साफ़ जूतों के लिये आज हज़ारों नहीं लाखों घरों के द्वार बंद हैं, और गंदी-से-गंदी टोपी या पगड़ी के लिये कोई रुकावट नहीं है।" बाबू शिवप्रसादजी गुप्त ने जूतों के संबंध में जो ऐलान कर रक्खा है, उससे काशीवासी तो

क्या, भारतवासी भी बहुत कुछ परिचित हो चले हैं; पर अगर इससे कोई निष्कर्ष निकाले कि गुरुजी अछूतों के हिमायती नहीं या उनके लिये मंदिरों का दरवाज़ा बंद रखना चाहते हैं, तो यह उसकी भयकर भूल होगी। वास्तव में बात यह है कि साम्यवादी होते हुए भी और क्रांति की वेदी पर अपने आपको बलिदान कर देने के लिये तैयार रहते हुए भी लोग अभी जूतों को उसी निगाह से देखते हैं, जिससे वे हज़ार या लाख बरस पहले देखे जाते थे। इस विषय में सनातनी और सुधारक, प्राचीन पंथी और परिवर्तनवादी सभी समान हैं। पर जूते अपना अधिकार चाहते हैं किसी के दयादान के भिखारी नहीं हैं।

शूद्र ईश्वर के पैरों से निकले थे, यह लिखकर किसी अदूरदर्शी ने हिंदू-समाज की जो हानि की, वह अकथनीय है। इसमें जो आक्षेप या अपमान है, उसे दूर करने की या वास्तविक अर्थ समझाने की इधर कुछ बरसों से पूरी चेष्टा हो रही है। व्याख्याता बराबर इस पर ज़ोर देते हैं कि पैरों का महत्त्व और किसी अंग से कम नहीं है, इसलिये लिखनेवाले का उद्देश्य शूद्रों की उपयोगिता सिद्ध करना था, न कि उन्हें हीन बताना या उन्हें नीचा दिखाना। मैं स्वयं आज तक किसी नतीजे पर न पहुँच पाया कि उस लेखक का अभिप्राय क्या था, पर मुझे अच्छी तरह मालूम है कि पैर या लात के संबंध में हमारी रूढ़ियाँ क्या हैं और उन्हें दूर करने के लिये कैसे प्रयत्न या आंदोलन की आवश्यकता है। जब पैरों का यह हाल है, तब जूतों का क्या कहना! कहने के लिये हमारे नेता कह देंगे कि जूतों का दर्जा टोपी या पगड़ी से कम नहीं है, बल्कि उपयोगिता की दृष्टि से तो जूतों को ऊँचा स्थान दे देंगे; पर व्यवहार में जैसे अभी पैर पैर और शूद्र शूद्र हैं, वैसे ही अभी बहुत समय तक जूते जूते ही रहेंगे।

साम्यवाद की दिल्ली अभी बहुत दूर है। जिन व्याख्याता ने कल अछूतों की सभा में पद्भ्यां शूद्रोऽजायत का वास्तविक अर्थ बताते हुए पैरों का गुणगान किया था और उनकी प्रशंसा के पुल बाँधे थे, वह मुझे क्षमा करें अगर मैं यह कहूँ कि वह स्वयं रूढ़ियों के दास हैं और उनके हृदय में पैरों का वह महत्त्व नहीं जो उनकी ज़बान पर है। अगर किसी को इसकी सत्यता पर विश्वास न हो, तो वह 'पद्भ्याम्' उनका सत्कार करके देख लें। वही अवस्था जूतों के संबंध में भी है। मैं अपनी पगड़ी उतार कर आपके सामने रख दूँ, तो आप गद्गद हो जायँगे, पर अगर मैं अपने जूते.........विशेष कहने की आवश्यकता नहीं। जूतों में चाहे जितनी भलाई हो, सेवा का भाव हो, सद्गुणों का सन्निवेश हो, पर कोई उनका स्वागत करने या उनके स्पर्श पर प्रसन्नता प्रकट करने को तैयार नहीं है।

यही कारण है कि साहित्य में भी जूतों का स्थान इतना नीचा है। उस उर्दू-कवि की पंक्तियाँ याद कीजिए—

बूट डासन ने बनाया,
मैंने एक मज़मूँ लिखा;
हिंद में मज़मूँ न फैला,
और जूता चल गया।

इसमें कवि ने समाज के प्रकृत भाव को प्रकट कर यह दिखाया है कि जूतों को हम-आप क्या समझते हैं, और अभी हमारा समाज उस मंज़िल से कितनी दूर है, जहाँ गोरे और काले, पूँजीपति और मजूर, ब्राह्मण और अछूत, जूते और साफ़े—सब समान समझे जायँगे, और जूतेबाज़ी का वह अर्थ न रह जायगा जो आज है।

हाँ, इस बीच में वह पत्र जो विशेषांकों के इतिहास में अमरत्व पाने का इच्छुक हो, अगर एक जूतांक निकालने का आयोजन करे, तो उसकी और भी बड़ाई और भलाई हो। क्रांतिकारी साहित्य में वह अंक विशेष स्थान रखनेवाला होगा और जैसे साधारण 'प्रगति' में जूते सहायक होते हैं, वैसे ही मानव-समाज की 'प्रगति' में वह विशेषांक सहायक होगा।*

पारसनाथसिंह

---

* 'स्वतंत्र' के साधारण मारवाड़ी-अंक से धन्यवाद उद्धृत।

SURE CURE FOR

CUTS, BURNS, SCALDS, DHOBISITCH, ECZEMA, BILSTER SCABIES ULCER, GANGRENE, CHAPPED FINGER AND TOES, PILES EXTERNAL & INTERNAL ALSO DOGS MANGE AND ANY STUBBORN SORE ON ANIMALS.

AS. 8 PER POT.

SHAW FRIEND & Co.
P. O. JHAJHA, E. I. R.
DIST. MONGHYR.

३१

केवल

मोहिनी फ़्लूट हारमोनियम

ख़रीदो

क्योंकि आजकल वही एक चलताऊ और विश्वास करने योग्य हारमोनियम है।
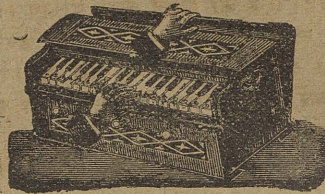
मूल्य सिंगल रीड २५), ३०), ३५), ४०) डबल रीड ४०), ५०), ६०)

वायोलिन बाजा और फ़िडिल्स (Fiddles), मूल्य १२) से

आर्डर के साथ ५) पेशगी भेजो और सबसे नज़दीक रेलवे स्टेशन का पता दो।

३४ पत्र आने पर सूचीपत्र मुफ़्त।

पता—**मोहिनी फ़्लूट कम्पनी,**
६।२, आरपुली लेन, (M.) कलकत्ता.

बिजली

के लैंप घर पर बनाकर जलाना चाहो तो "ड्राइ वैटरी"-नामक सचित्र पुस्तक मँगाकर पढ़ो। यदि सच्ची पुस्तक न हो तो १००) जुरमाना लो मू० १) ख़र्च माफ़।

कौड़ियों

से रुपया कमाना हो तो साबुन बनाओ। हमारी साबुनसाज़ी पुस्तक में सैकड़ों सच्ची विधियाँ छपी हैं। पुस्तक झूठी होने पर वापसी की शर्त है। मू० १) ख़र्च ।⁄)

नोट—दोनों पुस्तकें २) में ख़र्च माफ़।

पता—**मैनेजर तिजारत, शाहजहाँपुर**

६०

वशीकरण अंजन (सुर्मा)

ग़लत होने पर १००) इनाम

हमारा वशीकरण मैस्मरेज़म से तैयार किया हुआ जादू का सुर्मा आँख में डालकर जिस किसी स्त्री-पुरुष को चाहे वह कैसा ही पत्थरदिल, मग़रूर और सख़्त-क़लाम क्यों न हो. सामने चला जावे तो उसी समय मोहित करके वशीभूत हो जायगा। आपका संग ही उसे पसंद होगा, आपके बिना माही बे आब (बिना पानी की मछली) की तरह बेताब होगा यानी तड़फेगा, आपको मिलकर ही चैन लेगा। बहुत लिखना फ़िज़ूल। आज़मायश शर्त है। जो कोई इसे ग़लत साबित कर देवे, उसे १००) रु० इनाम दिया जावेगा। पर्चा तरकीब इस्तेमाल साथ भेजा जाता है। क़ीमत सिर्फ़ ३) रु०, डाक-महसूल माफ़।

पता—**मैनेजर दी आल इंडिया मैस्मरेज़म, हाउस रोड, मैजीकल वर्क्स,** ६२
नं० (M. L.) १५, फ़िरोज़पुर सिटी

सुमन-संचय

१. महामहोपाध्याय पांडेय रामावतार शर्मा के संस्मरण
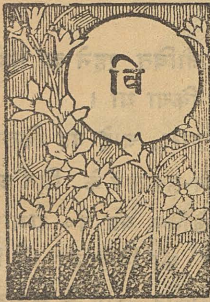
बिहार-प्रांत ने आधुनिक युग में जितने गण्यमान पुरुष उत्पन्न किए हैं, उनमें स्वर्गीय महामहोपाध्याय पंडित रामावतार शर्मा एम्० ए० का स्थान मुख्य है। आप हिंदी तथा संस्कृत के प्रगाढ़ पंडित, दर्शनशास्त्र के प्रतिभा-शाली विद्वान् और निरंकुश स्वतंत्रता एवं उच्च नैतिक सिद्धांतों से परिपूर्ण महानुभाव थे। उनके काशी-हिंदू-विश्वविद्यालय के अध्यापनकाल में मुझे आपको जानने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था, अतः मैं पंडितजी के जीवन की प्रशंसा में यह पंक्तियाँ लिखने का साहस कर रहा हूँ। यह जहाँ कहीं विद्वत्ता का समादर और महान्-मास्तिष्किक शक्ति का यशोगान होता है, वहाँ अंतस्तल की अनुभूत बातें समझी जायँगी। आइए, ऐसा कुछ करें जिससे हमारे विरुद्ध यह अवसर न आने पावे कि राजनीति के कोलाहल-पूर्ण वातावरण में हमने अपनी जाति के उन महान् मस्तिष्कवालों की ओर ध्यान नहीं दिया, जिन्होंने अपने शांत और विनम्र ढंग से हमारी मातृभूमि का गौरव बढ़ाने में हाथ बटाया है।

बहुत-से विद्वानों के सदृश पंडित रामावतार शर्मा में भी कुछ नियम-वैपरीत्य अवश्य पाया जाता था! जब कोई उनके कुछ-कुछ रूखे ढंग देखता था, तो उसे उनकी अमूल्य संपत्ति, उच्च मस्तिष्क-निर्मलता का पता लगा सकना कठिन हो जाता था। उनका भारी लट्ठ जिसे वह डाक्टर जानूसन के समान छड़ी की तरह सदा साथ रखते थे, उनकी बेढंगी पोशाक, जिसे वह उत्सव-समारोहों के अतिरिक्त अन्य अवसरों पर पहना करते थे, उनकी लापरवाही की दशा, जिसमें वह कदाचित् अपनी विशेष मास्तिष्किक समस्याओं में लीन घूमा करते थे और उनके असाधारण तरीक़े—यह सब उनके विपरीत थे। उनके मस्तिष्क और हृदय की निर्मल विशेषताओं के समझने में कुछ समय लगा करता था। किंतु उनके बलिष्ट और सुगठित शरीर से उनकी स्वच्छंदता का आभास मिलता था। उनका सगर्व ब्राह्मणत्वसूचक ललाट तुरंत ही उनके बौद्धिक जीवन की ओर लोगों का ध्यान आकर्षित कर लिया करता था। घनिष्ठता बढ़ने पर पंडित रामावतार के प्रति आदर और प्रेम का भाव भी बढ़ता जाता था। उनकी असामयिक मृत्यु से उनके परिचय के सौभाग्य-प्राप्त अगणित व्यक्तियों को असह्य वेदना हुई होगी।

इस विद्वान् पुरुष की स्मरणशक्ति आश्चर्यजनक थी। जिन मास्तिष्किक क्षेत्रों को पंडित रामावतार ने अपना-सा बना लिया था, उनकी कोई ऐसी बात नहीं जान पड़ती थी, जिसका उन्हें ज्ञान और स्मरण न हो। जो उद्धरण,

विषय एवं वाक्य उनके मस्तिष्क में एक बार प्रवेश पा जाते थे, वे वहाँ जम-से जाते थे और यथावसर विना प्रयास निकल आया करते थे। वह प्राचीन भारतीय परिपाटी के पंडित के महान् अध्ययन और आधुनिक विद्यार्थी के आलोचनात्मक गुणग्राहकत्व के आश्चर्यपूर्ण सम्मिश्रण थे। उन्हें इन दोनों समुदायों में एक ही भाँति सुख जान पड़ता था। उनकी भारतीय दर्शनों की विवेचना से जाना जाता है
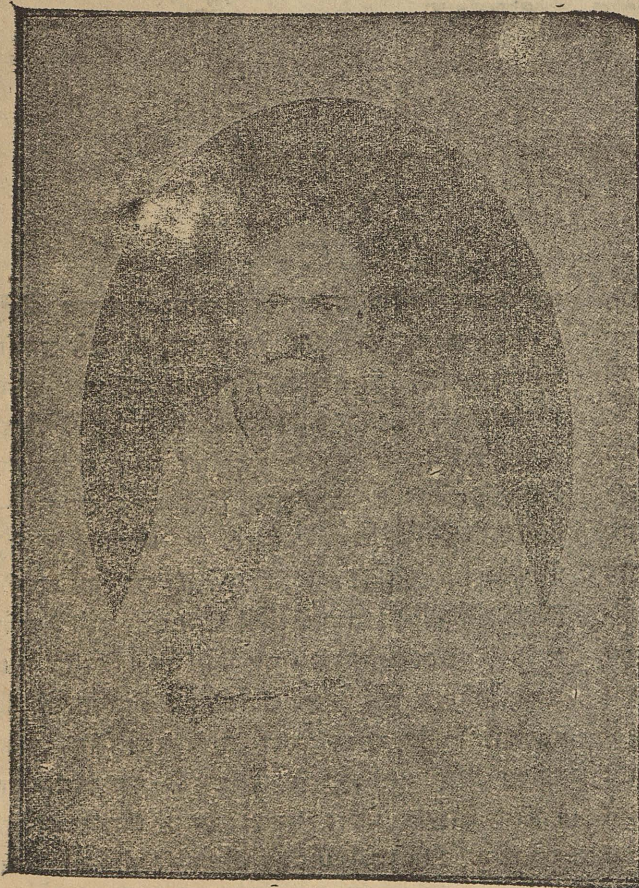
स्व० पं० रामावतार शर्मा

कि पं० रामावतार शर्मा गंभीर विचारशील पुरुष थे। यदि उन्हें निश्चित और सफल साहित्यिक ग्रंथों की रचना करने के लिये अवकाश और अवसर मिला होता, तो भावी संतति के लिये वह न-जाने कितने मस्तिष्कजन्य प्रसाद छोड़ गए होते। जिस प्रकार 'एपीक्यूर' सांसारिक सुखों के उपभोग में निमग्न रहता था, वैसे ही वह मास्तिष्किक आनंद में लवलीन रहते थे। उनकी तुलना लार्ड 'ऐक्टन' और तत्सदृश अन्य विद्यावारिधों से की जा सकती है। उनके जीवन का सबसे अधिक संतोष का विषय यह था कि उन्होंने अपने विषय का अगाध ज्ञान संपादित कर लिया था। इसका व्यावहारिक उपयोग दूसरों को सिखाने अथवा साहित्यिक ग्रंथों की रचना में होता था या नहीं, यह विचार उनकी शांति को कभी भंग नहीं करता था। वास्तव में, जीवन को तुच्छ भौतिक लाभ की दृष्टि से देखने के इस युग में यदि कभी कोई एक भी ऐसा व्यक्ति पैदा हुआ है, जो विद्या केवल ज्ञान के लिये चाहता था, तो वह थे पंडित रामावतार शर्मा। अध्ययन-शीलता के ऐसे दिव्य उदाहरण से स्फूर्ति प्राप्त करने से प्रत्येक विद्यार्थी का निःसंदेह हित होगा। कवि ब्राउनिंग के 'ग्रामेरिन' की भाँति उनके विषय में कहा जा सकता है कि—

"This man decided not to live but to know."

अर्थात्—इस व्यक्ति ने जीवित रहने का नहीं, ज्ञानार्जन करने का निश्चय किया था।

किसी अकेले व्यक्ति के द्वारा, चाहे वह कितना ही विद्वान् क्यों न हो, कोष-संकलन के दिन अब सदा के लिये चले गए हैं। लेकिन यह पं० रामावतार के मास्तिष्किक साहस की विशेषता थी कि उन्होंने संस्कृत के एक बृहदाकार कोष के संपादन करने का विचार किया और इस पर कई वर्ष अनवरत एवं अथक परिश्रम किया था। मुझसे उनकी जो अंतिम बातें हुई थीं, उनमें से एक इस ग्रंथ के प्रकाशित करने के हो सकनेवाले प्रबंधों के विषय में थी। मैंने प्रसन्नतापूर्वक वचन दिया था कि मैं उनके जीवन के सबसे महत्कार्य के लिये कुछ भारतीय नरेशों से सहायता उपलब्ध करने का प्रयत्न करूँगा। किंतु शोक! उनके जीवन का स्वप्न पूरा न हो पाया। अब वह ऐसे देश में बुला लिए गए, जहाँ महत्तम मास्तिष्किक उद्योगों के लिये, चाहे उनमें जितने अन्य आकर्षण हों, प्रकाशरूप से कोई स्थान नहीं है।

वैयक्तिक जीवन में पं० रामावतार विशेष सादगी-पसंद, खरे और स्पष्टताप्रिय थे। साथ ही वह अत्यंत

आवभगत करनेवाले एवं सुंदर स्वभाव के थे। एक बार मैं पटने होकर जा रहा था। मैंने उनको अपने लिये भोजन की व्यवस्था करने की सूचना दी। उस समय उन्होंने पंजाबमेल में मेरा डिब्बा अत्यधिक खाद्य वस्तुओं से भर दिया। वह दृश्य मैं कभी नहीं भूल सकता। जो वस्तुएँ केवल एक व्यक्ति के लिये लाई गई थीं, उनसे एक अच्छा दल खिलाया जा सकता था। विशाल आत्मगौरव से पूर्ण पं० रामावतार किसी प्रकार भी दूसरों की अधीनता नहीं सह सकते थे। अपने व्यवसाय के सम्मान की रक्षा के लिये वह सदैव अत्यंत प्रशंसनीय ढंग से अड़ जाया करते थे। संकुचित वचारों के दक़ियानूसी परिवार में उत्पन्न होकर भी उन्होंने कितने ही ऐसे सामाजिक सुधार करने का साहस किया था, जिनकी प्रशंसा पूर्णरूप से वही लोग कर सकते हैं, जो विहार की सामाजिक स्थिति से परिचित हैं। ईश्वर करे, विहार इसी ढंग के ऐसे व्यक्ति पैदा करे, जो उनकी मास्तिष्किक प्रतिभा, अध्ययन-तत्परता और चारित्रिक सिद्धांतों की महत्ता से स्पर्द्धा कर सकें।*

पी० शेषादि

× × ×

* अनुवादक—श्रीरामबहोरी शुक्ल बी० ए०, विशारद।

२. प्रश्न

सरस सुधा का स्रोत सतत वसुधा-सुंदरता ;
धारे सिंदुर भाल चहकती मधु-मादकता ।
तम-प्रकाश के बीच खेलती नव सुरबाला ;
ओसकणों की गूँथ अलौकिक अनुपम माला ।
अरुणांशुकवसना उषा चुपके-से कहँ जा रही ;
किसके हिय की पीर को हँस-हँसकर यों गा रही ?

भुवनेश्वरनाथ मिश्र 'माधव'

× × ×

३. चतुर्मुकुट की कथा

यह एक आख्यानक-काव्य है, जिसका उल्लेख काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा द्वारा की गई खोज की सन् १६०४ ई० की वार्षिक रिपोर्ट में पृ० १२ पर नं० ७ में हुआ है । खोज में जो प्रति प्राप्त हुई थी, वह काशी-नरेश के राजकीय पुस्तकालय में सुरक्षित है । यह प्रति अपूर्ण है, जिससे पुस्तक का लिपिकाल और ग्रंथकर्ता का संक्षिप्त वर्णन भी अप्राप्त है । उक्त सभा की पत्रिका के भाग ७ सं० १६८२ में एक लेख आख्यानक-काव्य पर निकला है, जो अभी अपूर्ण है । उसमें चित्रमुकुट की कथा का निर्माणकाल बीसवीं शताब्दी (वि० संवत्) माना गया है ।

इधर इस पुस्तक की एक प्रति मेरे छोटे भाई व्रजजीवनदास को गुदड़ीबाज़ार में मिली, जो पूर्ण है; पर इससे भी ग्रंथकर्ता की जीवनी पर कुछ प्रकाश नहीं पड़ता । यह पुस्तक पुराने देशी काग़ज़ पर गुरमुखी अक्षरों में किसी प्राचीनतर प्रति की प्रतिलिपि है । इसका लिपिकाल इसकी समाप्ति से 'सं० १८४६ मिती पूस वदी १३ रोज़ बुधवार' ज्ञात होता है । इससे स्पष्ट है कि इस कथा का रचनाकाल सं० १८४६ के पहले उन्नीसवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध या अठारहवीं शताब्दी हो सकता है । यह प्रति ६६ पृष्ठों में समाप्त हुई है और प्रति पृष्ठ में साधारणतः बीस पंक्तियाँ हैं । आरंभ में श्रीगणेशजी का चित्र है और पैंतीस अन्य चित्र हैं, जो कथा ही को चित्रित करते हैं । ये सब कई रंगों में हैं और रंग ऐसे हैं कि डेढ़ सौ वर्ष होने आए, पर कहीं फीके नहीं हुए हैं । सोने का भी रंग हलका नहीं पड़ा है ।

इस आख्यानक-काव्य के रचयिता कोई मुसलमान हैं, यह इनके प्रथम मुहम्मद तथा चार यारों की स्तुति से स्पष्ट है । कवि ने मसनवी के प्रथानुसार यह काव्य लिखा है, पर न तो अपने विषय में कुछ लिखा है और न रचना का कारण ही बतलाया है । पुस्तक का आरंभ यों है—

श्रीगनेसजी सहाय
श्रीपोथी चतुरमुकुट
राजा का कथा लिखा

धन वे अँखियाँ हैं रतनारी ; अलहरूप की दरस भिखारी ।
जिन्ह यह रूप अनूप निहारा ; पावै लाज तजै संसारा ।
प्रेम न प्रीति देहि सो करिए ; देहि देहि के जीभ सुधरिए ।
सुरति करो यह बिनती मेरी ; जाके श्वास बहुत है चेरी ।
यह बिनती सुनि लीजै ईठा ; ऐस पीउ कहँ नैनों दीठा ।
निसिदिन तेही ओर निहारो ; तुअ सोए मुख अंचल डारो ।
रूप रीत पर सब ही भूले ; भाग जाहि के जाहि सो बोले ।
दैआ चाहि पटरानी सोई ; उत्तिम मद्धिम निखरिट होई ।
अलख अमूरत है पिय मेरा ; जेहि निरखत सुख चैन घनेरा ।
छन न अठौनी कीजिए राखिए हृदया माँह ;
अंत न जाने दीजिए गहिए पिय की बाँह ।

अंत इस प्रकार है—

"समुँदर तीर जहाज मँगाए ; जब वह राजा बाहर आए ।
बुरे हाल जो मीत निहारे ; रोए राजा तब आँसू ढारे ।
बिछुरे मीते सब दइअ देखाए ; चतुरमुकुट को गले लगाए ।
किए मुकाम तहाँ दुइ तीना ; माल अधिक सबही को दीन्हा ।
मैला बस्त्र बेगि उतराए ; बस्त्र देइ तब तुरँग चढ़ाए ।
देखौ परम प्रीति की बार्ता ; चतुरमुकुट की सुनौ कहानी ।
प्रीति रीति का बरनौ का पूछत हौ मोहिं ;
प्रेमकहानी जो सुनै सिद्ध काज सब होहिं ।

इतिश्री पोथी चतुरमुकुट-कथा संपूरन जो देखा सो लीखा मम दोख न दीअते दसखत बबुआजी गुरु साकिन सुखदेसाह की गली उरफ़ चेतसींघ कायस्थ साकीन महले लोदी कटरे सं० १८४६ मीती पूस वदी १३ रोज बुधवार पोथी लीखाया मनूलाल साकिन कठौतिया बजार की गली ।"

कथा संक्षेप में प्रायः वही है, जो इस प्रकार के आख्यानकों में होती है । कहानी यह है कि उज्जैन के राजा चतुर्मुकुट अहेर खेलने गए और मार्ग भूलकर घने वन में जा पहुँचे । यहाँ एक व्याधा मिला, जिसने एक हंस फँसा रक्खा था । राजा ने उस हंस को छुड़वा दिया, जिसने इन्हें मार्ग बतलाकर घर पहुँचाया । राजा को अपनी एक सुंदर रानी का दास

बनते हुए सुनकर यह हंस हँसा और राजा के पूछने पर उसने अनूपनगर की राजकुमारी चंद्रकिरण की प्रशंसा करते हुए कहा कि उसके आगे यह रानी कुछ भी नहीं है। राजा प्रेमोन्मत्त होकर उसे ढूँढ़ने निकला। मार्ग में जब समुद्र मिला, तब मित्रों को वहीं किनारे पर छोड़कर हंस की पीठ पर सवार होकर अनूपनगर गया। वहाँ अंत में चंद्रकिरण से विवाह हो गया और कुछ दिन वहीं ठहरकर हंस पर सवार हो दोनों घर लौटे। मार्ग में गर्भवती रानी को प्रसव-वेदना उठी, जिससे समुद्र के बीच एक द्वीप में उतरना पड़ा। यहीं एक पुत्र हुआ। तब राजा चतुर्मुकुट हंस पर सवार होकर प्रसूति का सामान लेने किसी पास के नगर में गए; पर लौटते समय घी के गिरने तथा अग्नि की चिनगारी पड़ने से हंस के पर जलने लगे, जिससे बीच के किसी अन्य टापू में वह हंस गिरकर भस्म हो गया। राजा निरुपाय होकर उसकी भस्म पर एक चौरा बनाकर वहीं रहने लगे। कुछ दिनों बाद कंचनपुर के राजा के मृत होने तथा उसके पुत्र की अल्पावस्था के कारण वहाँ की प्रजा ने इन्हें ही योग्य देखकर अपना राजा बनाया।

इधर इनकी रानी ने किसी प्रकार फलादि से अपना जीवन धारण करते हुए कई वर्ष व्यतीत किए। एक रात्रि—

ज्यों-ज्यों कटै अँध्यारी रैना; श्रवन सुना मानुस के बैना।
एक जहाज आवत है भारी; खत्री जात महा अधिकारी।

वह इस रानी को पुत्र सहित घर ले गया, जो उसी कंचनपुर में था। व्यभिचार की इच्छा प्रकट करने और रानी के अस्वीकार करने पर उसने उसे एक वेश्या के हाथ बेच दिया तथा पुत्र को अपने पास रक्खा। दैव-वशात् यह लड़का युवा होने पर एक दिन उस वेश्या के घर गया, जिसे देखकर रानी चंद्रकिरण ने पहचाना और उससे कुल वृत्तांत कहा। लड़के ने राजा के यहाँ न्याय चाहा। राजा चतुर्मुकुट अपनी स्त्री तथा पुत्र को पहचान कर बड़े प्रसन्न हुए और उस दुष्ट को दंड दिया। रानी ने अपने सतीत्व के परीक्षारूप में उसी के प्रभाव से मरे हुए हंस को जिला दिया। तब तीनों प्राणी कंचनपुर के मृत राजा के पुत्र को राज्य देकर अपने देश लौट गए।

व्रजभूषणदास

× × ×

४. मेरा भाग्य

टूट गए मेरी जीवन वीणा के सारे तार;
सुधि-बुधि के अभाव में बरबस छूट पड़े पतवार।
कैसे बचे तरणी लहराता पारावार;
नाच रही वक्षःस्थल पर है यह जलराशि अपार।
पर उदार करुणाकर की यह अकरुण निष्ठुर रीति;
क्यों उपजाती है सकरुण अगाध सागर-संगीत।

भुवनेश्वरसिंह 'भुवन'

× ×

५. अभिलाषा

ऊपर विस्तृत नील गगन में तरस रहे बंदी तारे;
नीचे फूल कूल दुनिया का पूछ रहे रो-रो सारे।
सागर अपने पंख पसारे उड़ता है ऊपर को;
चैन नहीं बादल के घर में वर्षाऋतु की झर को।
ऐ अनंत ! तेरी गोदी में
भी । अभिलाषा रोती !
एक बूँद कहती सागर से—
'मैं भी सागर होती।'

हरिकृष्ण 'प्रेमी'

---

१. राजनीति-रंगमंच

इस बार राष्ट्रीय महासभा का अधिवेशन बड़े दिन की छुट्टियों में लाहोर में था। इसके सभापति पं० जवाहरलालजी नेहरू थे। अधिवेशन धूमधाम के साथ समाप्त हो गया। पं० जवाहरलालजी का भाषण संक्षिप्त किंतु सारगर्भित था। उसमें गंभीरता, स्पष्टवादिता और निर्भीकता का अपूर्व सम्मिश्रण है। पंडितजी ने जिन बातों की अपने भाषण में चर्चा की है, उनका बहुत तफ़सील के साथ तो वर्णन नहीं किया है; परंतु सैद्धांतिक विवेचना बहुत साफ़ है। आपने व्यवस्थापिका सभाओं के बहिष्कार पर अधिक ज़ोर दिया है एवं भारत का अंतिम ध्येय पूर्ण स्वाधीनता बतलाया है। भाषण के अंत में कहा है कि सरकार गुप्त षड्यंत्रों पर मुक़द्दमें चला रही है, परंतु राष्ट्रीय महासभा तो प्रकट षड्यंत्र करने जा रही है। आपने इँगलैंड में होनेवाली गोलमेज़ कानफरेंस का स्वागत नहीं किया है एवं उसमें महासभा के प्रतिनिधियों को न भेजने की राय दी है। राष्ट्रीय महासभा में इस बार महात्मा गांधी के दो महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव पास हुए हैं। एक में यह बतलाया गया है कि पूर्ण स्वाधीनता (जिसमें ब्रिटिश-सरकार से कोई सरोकार न हो) ही भारत का अंतिम ध्येय है तथा गोलमेज़ कानफरेंस में महासभा के प्रतिनिधियों को न जाना चाहिए। दूसरे का आशय यह है कि भद्र अवज्ञा फिर से जारी की जाय तथा महासभा के प्रतिनिधि बड़ी और प्रांतीय व्यवस्थापक सभाओं से तुरंत इस्तीफ़ा दे दें। इन दोनों प्रस्तावों को व्यावहारिक रूप देने के लिये २६ जनवरी को समग्र देश में प्रदर्शन किया जायगा और सभाएँ होंगी। विगत २३ दिसंबर को भारत के बड़े लाट लार्ड अरविन की ट्रेन उलट देने के लिये किसी ने उस पर बम चलाया था। महात्माजी ने अपने प्रस्ताव में इस काम की घोर निंदा की थी एवं लाट साहब के बच जाने पर उनको बधाई दी थी। महासभा में इस प्रस्ताव का घोर विरोध किया गया, परंतु महात्मा गांधी की ही अंत में विजय हुई। उन्होंने यह बात साफ़-साफ़ कह दी कि महासभा का सब काम अहिंसात्मक असहयोग की भित्ति पर होना चाहिए, हिंसा का भाव उसके पास नहीं फटकना चाहिए। इसी प्रकार एक प्रस्ताव में महात्माजी ने लाट साहब की नेकनीयती की सराहना की थी। प्रस्ताव के इस अंश का भी ख़ूब विरोध हुआ, पर अंत में वह भी पास हो गया। आगामी वर्ष महासभा कराँची में होगी। एक प्रस्ताव के द्वारा यह भी निश्चय किया गया कि महासभा के अधिवेशन दिसंबर में न होकर फ़रवरी या मार्च में किए जायँ; क्योंकि घोर शीत के कारण महासभा के सदस्यों (विशेष करके जो प्रतिनिधि विशेष संपन्न नहीं हैं) को बड़ा कष्ट होता है।

जिस प्रकार राष्ट्रीय महासभा का उत्सव लाहोर में हुआ, उसी प्रकार भारतीय लिबरल संघ का उत्सव मदरास में मनाया गया। मदरास के अधिवेशन के सभापति सर फ़ीरोज़ सेठना थे। आपने अपने भाषण में भारत को औपनिवेशिक स्वराज्य से संतुष्ट होने की सलाह दी। पूर्ण स्वाधीनता का आपने विरोध किया और बतलाया कि औपनिवेशिक स्वराज्य का महत्त्व पूर्ण स्वाधीनता से बढ़कर है। आपने भारतीय प्रतिनिधियों को बिना शर्त के गोलमेज़ कानफ़रेंस में उपस्थित होने की सलाह दी। सभापति के भाषण के अनुकूल इसी आशय के प्रस्ताव भी संघ में पास हुए। बड़े लाट की गाड़ी पर बम चलाने के काम की निंदा तथा लाट साहब के बच जाने पर उनको बधाई देने के प्रस्ताव भी पास हो गए। संघ ने एक कमेटी नियुक्त की, जो औपनिवेशिक स्वराज्य का मसविदा तैयार करेगी। इसके अलावा भारत में औपनिवेशिक स्वराज्य चाहनेवाले जितने दल हैं उनको एक बड़े संघ में संगठित करने के लिये भी लिबरल दल उद्योग करेगा। सर फ़ीरोज़ सेठना का भाषण बहुत बड़ा है। उसमें जिस बात की विवेचना की गई है, उसका विस्तार के साथ वर्णन है। यह वर्णन तर्कमय और ख़ूब संयत है। इसमें भावावेश बहुत कम है। इस भाषण में न तो कादरतापूर्ण 'भिक्षां देहि' की नीति की दुहाई है और न वह ऐसा कठोर और उद्दंड ही है कि नौकरशाही को आपत्तिजनक जान पड़े। भाषण में एक ओर कोरी प्रार्थनावाली मनोवृत्ति बचाई गई है और दूसरी ओर चुनौती और धमकी देने की मनोवृत्ति का अभाव रक्खा गया है। सर सेठना तुरंत औपनिवेशिक स्वराज्य पाने के पक्ष में हैं। यद्यपि सभापति महोदय ने पूर्णस्वाधीनता के ध्येय का विरोध किया है, फिर भी आपने उद्धरण देकर यह प्रमाणित किया है कि जो दलीलें भारत को तत्काल स्वराज्य न देने के पक्ष में सरकार पेश करती है, वही दलीलें वह उस समय भी पेश करती थी जब अमेरिका ने स्वाधीनता की घोषणा की थी।

निदान लाहोर और मदरास के अधिवेशनों में मतैक्य कम और मतभेद अधिक दिखलाई पड़ा। लाहोर ने गोलमेज़ कानफ़रेंस ठुकराई और मदरास ने उसे हृदय से लगाया। लाहोर पूर्ण स्वाधीनता चाहता है और मदरास केवल औपनिवेशिक स्वराज्य। लाहोर असहयोग के पक्ष में है और व्यवस्थापिका सभाओं का बहिष्कार चाहता है; पर मदरास सहयोग के पक्ष में है और व्यवस्थापिका सभाओं में रहना आवश्यक मानता है। लाहोर में जो कुछ हुआ, उसमें सत्य, आदर्श, हृदय, उत्साह और ओज का प्राधान्य है, पर मदरास की काररवाई में नीति, व्यावहारिकता, बुद्धि, तर्क और संयम का बोलबाला है। लाहोर के प्रधान पुरुष हैं महात्मा गांधी, पं० मोतीलाल और पं० जवाहरलाल तथा मदरास के सर तेजबहादुर सप्रू, श्रीनिवास शास्त्री और सर फ़ीरोज़ सेठना। लाहोर में गांधी-आंदोलन की विजय हुई और मदरास में वैध आंदोलन की।

हम पूर्ण स्वाधीनता के ध्येय को औपनिवेशिक स्वराज्य के ध्येय से उच्च मानते हैं। आदर्श सदैव ऊँचा होना चाहिए। पर पूर्ण स्वाधीनता का ध्येय स्वीकार करना एक बात है और पूर्ण स्वाधीनता की घोषणा करना दूसरी बात है। पूर्ण स्वाधीनता की घोषणा के बाद घोषणा करनेवालों को अपनी सरकार बनानी चाहिए और शासन का काम प्रारंभ करना चाहिए। यह कुछ नहीं किया गया, वरन् ब्रिटिश-शासकों द्वारा स्थापित न्यायालयों का बहिष्कार भी नहीं किया गया। ऐसी दशा में यह स्पष्ट है कि पूर्ण स्वाधीनता का ध्येय स्वीकार करना और पूर्ण स्वाधीनता की घोषणा करना एक बात नहीं है। ऐसी दशा में महासभा के ध्येय परिवर्तन को अधिक आपत्तिजनक मानना ठीक नहीं है। हाँ, गोलमेज़ कानफ़रेंस का ठुकराया जाना हमारी राय में उचित नहीं हुआ। हमारी राय में यदि महासभा यह प्रस्ताव पास करती कि यदि इँगलैंड के प्रधान मंत्री महासभा को प्रतिनिधि भेजने के लिये निमंत्रित करें, तो उस दशा में महासभा विशेष अधिवेशन करके परिस्थिति के अनुकूल उस निमंत्रण का जवाब दे, तब कोई हानि न होती। पूर्ण स्वाधीनता की परिधि बहुत व्यापक है। औपनिवेशिक स्वाधीनता उसी परिधि के अंतर्गत है। तब उच्चतम आदर्श को सामने रखते हुए भी यदि उच्चतर आदर्श मिल रहा हो, तो उसे क्यों न लिया जाय। व्यवस्थापिका सभाओं के बहिष्कार में न हमें अधिक हानि ही दिखलाई देती है और न विशेष लाभ ही। लिबरल संघ ने औपनिवेशिक स्वराज्य का मसविदा बनाने को कमेटी नियुक्त करके अच्छा काम किया, परंतु

बिना शर्त के (राजनीतिक क़ैदियों की रिहाई कराए बिना) गोलमेज़ कानफ़रेंस में जाना हमें उचित नहीं जान पड़ता है।

हम औपनिवेशिक स्वराज्य के पक्ष में हैं, परंतु पूर्ण स्वाधीनता के आदर्श को हम बुरा नहीं मानते हैं। औपनिवेशिक स्वराज्य व्यावहारिक राजनीति है और पूर्ण स्वाधीनता आदर्शमयी, परंतु सच्ची राजनीति है। गोलमेज़ कानफ़रेंस से हमें यह आशा नहीं है कि उसके द्वारा औपनिवेशिक स्वराज्य तत्काल मिल जायगा, परंतु फिर भी उसमें सम्मिलित होने से हमारा बिगड़ेगा कुछ भी नहीं, वरन् हमारे प्रतिनिधियों को इँगलैंड के चतुर राजनीतिज्ञों की चालों का अनुभव प्राप्त होगा। यह दुःख की बात है कि लाहौर महासभा के निर्णय के कारण भारत की राजनीतिक एकता भंग हो गई। पर संभव है, इससे सांप्रदायिक विभीषिका कुछ कम हो जाय। लाहौर की अपील भारत के हृदय से है। वह भारत से आत्मसम्मान के लिये बहुत बड़ा त्याग चाहता है। इसका सर्वस्व सत्य, आदर्श और अहिंसा है। मदरास भारत की बुद्धि को प्रेरित कर रहा है। वह परिस्थिति के अनुकूल व्यावहारिक राजनीति की दुहाई देता है। क्या ही अच्छा हो कि भारत का भविष्य हृदय और मस्तिष्क के समन्वय से एवं सत्य, आदर्शमयी, अहिंसात्मक व्यावहारिक राजनीति के संयोग से, चमक उठे और उसे अपना अभीष्ट तत्काल प्राप्त हो। हम महासभा और लिबरल संघ दोनों को ही अपने-अपने अधिवेशनों की सफलता पर बधाई देते हैं।

× × ×

२. फाँसी की सज़ा

संसार में इस समय इस मत का प्राधान्य है कि प्राणदंड अथवा फाँसी की सज़ा अनुचित है और जिन देशों में अभी तक उसका प्रचार है, वहाँ भी उसका बंद हो जाना ही श्रेयस्कर है। दुर्भाग्य से भारतवर्ष में प्राणदंड की व्यवस्था पूर्ण रूप में है और प्रतिवर्ष बहुत-से मनुष्य इस दंड के कारण अपने जीवन से हाथ धोते हैं। भारतवर्ष में ब्रिटिश-सरकार का अधिकार है और इँगलैंड में भी फाँसी की सज़ा की व्यवस्था है। जब तक उक्त देश में प्राणदंड का लोप नहीं होता है, तब तक उसके मातहत भारतवर्ष में फाँसी की सज़ा बंद होगी, इसकी आशा बहुत कम है। भारत में हिंदुओं और मुसलमानों के शासनकाल में भी प्राणदंड की व्यवस्था थी, यह बात निर्विवाद है।

संसार की प्रधान शक्तियों में इस समय इँगलैंड का विशेष स्थान है। उक्त देश के स्वातंत्र्य-प्रेम की प्रशंसा सभी करते हैं। न्यायप्रियता और मनुष्यता का अभिमान इँगलैंड को अन्य किसी भी देश से कम नहीं है, फिर भी यह आश्चर्य की बात है कि जब संसार के अधिकांश देशों से प्राणदंड का लोप हो गया है, तब भी उक्त देश में अभी लोग फाँसी की सज़ा पाते हैं। फिर भी प्राणदंड का इतिहास देखने से जान पड़ता है कि धीरे-धीरे उस देश में भी फाँसी के अपराधों की संख्या कम की जा रही है और वह समय कदाचित् दूर नहीं, जब इँगलैंड में भी प्राणदंड का सर्वथा लोप हो जाय। सम्राट् जार्ज तृतीय के समय में उन अपराधों की संख्या २०० थी, जिनमें प्राणदंड की व्यवस्था थी। अपराधी चाहे १२ वर्ष का अबोध बालक हो अथवा ८४ वर्ष का जराजीर्ण और रोगी पुरुष, पर यदि उसके विरुद्ध प्राणदंड का अपराध प्रमाणित हो जाय, तो फिर वह छोड़ा नहीं जा सकता था, उसको प्राणदंड अवश्य मिलता था। विकृत मस्तिष्क होना भी प्राणदंड से बचने का उपाय न था। वे अपराध जिनके लिये फाँसी की सज़ा मिलती थी, और भी आश्चर्य उत्पन्न करनेवाले थे। किसी के बाग़ में किसी ने अंगूर की बेल काट डाली या अन्य कोई झाड़ नष्ट कर दिया, कंजड़ों के साथ घूमता पाया गया, जहाज़ी पेंशनर बनने का जाल किया या आम सड़क पर रूप बदले जाता देख पड़ा अथवा लिखकर जाल बनानेवाला प्रमाणित हुआ, तो बस उसको फाँसी की सज़ा मिलना अवश्यंभावी था। धीरे-धीरे ऐसे छोटे अपराधों के लिये प्राणदंड लोगों को क्रूर और कठोर जान पड़ने लगा। सन् १८२३ में २०० के स्थान में केवल १०० अपराध ऐसे रक्खे गए जिनमें प्राणदंड की व्यवस्था थी। फिर भी १८२८ तक किसी के घर में घुसकर चोरी करने अथवा घोड़ा चुराने एवं काग़ज़ी जाल बनाने का अपराधी प्राणदंड ही पाता था। सन् १८६१ से अब केवल चार अपराध अर्थात् (१) सरकारी जहाज़ी अड्डों में आग लगाना (२) बलपूर्वक सामुद्रिक लूटपाट करना (३) राजद्रोह (४) हत्या

ही ऐसे अपराध रह गए हैं, जिनमें प्राणदंड का विधान है। पहले दो प्रकार के अपराधों पर विगत ७० वर्ष से कोई मामला ही नहीं चला है एवं राजद्रोह के अपराध में बोअर युद्ध के समय एक व्यक्ति को तथा विगत महासमर के समय एक व्यक्ति को फाँसी हुई है। इँगलैंड में इस समय हत्या के अपराध में फाँसी की सज़ा पानेवालों की संख्या प्रतिवर्ष १२ के लगभग है। सन् १८७२, १८७७, १८८१ और १८८६ में पार्लामेंट में फाँसी की सज़ा को उठा देने के लिये प्रस्ताव किए गए, पर प्रत्येक बार अस्वीकृत हो गए। उपर्युक्त संक्षिप्त विवरण से इतना स्पष्ट है कि लोग धीरे-धीरे फाँसी की सज़ा को उठा देने का विरोध कम करने लगे हैं। हालैंड, रूमानिया, स्विट्ज़रलैंड, आस्ट्रिया, बेल्जियम, डेन्मार्क, नार्वे, पुर्तगाल और स्वेडन में प्राणदंड की व्यवस्था नहीं है। इटली में राजनीतिक हत्या को छोड़कर अन्य प्रकार के अपराध में फाँसी नहीं होती है। अमेरिका की आठ रियासतों में प्राणदंड का विधान नहीं है, ३२ ऐसी रियासतें हैं, जिनमें प्राणदंड के अपराधी को आजन्म क़ैद की सज़ा देने की व्यवस्था है। फ्रांस तथा अमेरिका की सात रियासतों में फाँसी की सज़ा दी जाती है।

जो लोग फाँसी की सज़ा उठाए जाने के विरोधी हैं, उनकी सबसे बड़ी दलील यह है कि इससे हत्याओं के अपराधों में वृद्धि होगी; परंतु अनुभव इसके विरुद्ध है। ऊपर जिन देशों का उल्लेख किया गया है, उनमें से जिनमें फाँसी की सज़ा का विधान है, उनमें उन देशों की अपेक्षा हत्याएँ कम नहीं हुई हैं जिनमें प्राणदंड उठा दिया गया है। प्राणदंड के भय से हत्याएँ कम नहीं हो सकती हैं। उनके दूर करने का उपाय तो यही है कि समाज के सदाचार का आदर्श ऊँचा कर दिया जाय एवं समाज में हत्याओं के प्रति घोर घृणा के भाव उत्पन्न किए जायँ।

जो लोग फाँसी की सज़ा के विरोधी हैं, वे प्राणदंड में नैतिक दोषों के अतिरिक्त कई ऐसे प्रबल दोष दिखलाते हैं, जिनका समर्थन बहुत कठिन है। मान लीजिए, किसी व्यक्ति-विशेष पर कोई अभियोग चल रहा है। उपलब्ध साक्ष्य के आधार पर अभियुक्त अपराधी पाया गया और उसे फाँसी दे दी गई। इसके बाद कुछ ऐसे प्रमाण मिले, जिनसे अभियुक्त की निरपराधिता सिद्ध होती है। पर अभियुक्त तो फाँसी पा चुका। अब उसे जीवनदान कौन दे सकता है। ऐसी दशा में क्या एक निरपराध व्यक्ति के साथ अन्याय नहीं हुआ और क्या यह अन्याय ऐसा नहीं है, जिसका प्रतीकार असंभव है ? इस प्रकार प्रतीकार की असंभवनीयता प्राणदंड को अत्यंत भयंकर और सर्वथा निरापद नहीं प्रमाणित करती है। फिर जो मनुष्य प्राण देने में असमर्थ है, वह दूसरे का प्राण लेनेवाला कौन है। पुनः जो न्यायाधीश प्राणदंड देता है, उससे लगाकर फाँसी पर चढ़ानेवाले व्यक्ति तक का कितना ज़बर्दस्त नैतिक पतन होता है। ये सब लोग जान-बूझकर एक व्यक्ति को इस संसार से दूसरे संसार में कितनी क्रूरता के साथ ढकेलते हैं। जनता पर फाँसी पर लटकाए जानेवाले आदमी के देखने का जो प्रभाव पड़ता है, वह भी बुरा ही होता है। Capital punishment in the Twentieth Century नामक विख्यात ग्रंथ की भूमिका में Lord Buckmaster ने लिखा है—

"The rule which should guide us however is not that of doing what the law says we have power to do but what reason, justice, and humanity say we ought to do, and these forbid the continnance of Capital punsihment... even looked at materially, the death penalty fails utterly of its purpose. It does not stop murders in the least."

इसका सारांश यह है कि बुद्धि, न्याय और मनुष्यता इन सभी से यदि हम प्रेरित हों, तो हमें प्राणदंड देना बंद कर देना चाहिए। प्राणदंड के भय से हत्याओं में ज़रा भी कमी नहीं होती है।

निदान किसी भी दृष्टि से देखा जाय, फाँसी की सज़ा में भयंकर क्रूरता भरी हुई पाई जाती है। जिस उद्देश्य-सिद्धि के लिये उसकी व्यवस्था है, वह भी उससे पूरा नहीं होता। संसार के विचारशील न्यायवेत्ताओं का मत प्राणदंड के विरुद्ध है एवं संसार के अधिकांश उन्नतिशील सभ्य राष्ट्रों ने अपने-अपने देशों में प्राणदंड देना भी बंद कर दिया है। ऐसी दशा में इँगलैंड को भी इस अमानुषी दंड को बंद कर देना चाहिए। भारतवर्ष में तो फाँसी का दंड पानेवालों की संख्या बहुत अधिक है। फाँसी पानेवालों में यदि एक व्यक्ति भी भूल से निरपराध होते हुए इस लोक से हटाया जाता है, तो उसका उत्तरदायित्व

कितना भयंकर है। भारत के न्यायवेत्ताओं को इस प्रश्न को गंभीरता से उठाना चाहिए और बड़ी व्यवस्थापिका सभा के द्वारा फाँसी की सज़ा को रद्द कराना चाहिए। भारतवर्ष में सर्वसाधारण को बंदूक़ आदि रखने का अधिकार नहीं है तथैव विष आदि की बिक्री में भी पूरा नियंत्रण है। ऐसी दशा में प्राणदंड के हट जाने से हत्याओं की संख्या में वृद्धि होने की कोई संभावना नहीं है। हत्या के अपराध में जेल में घुल-घुलकर मरने की अपेक्षा क्षण-भर में फाँसी के तख़्ते पर झूल जाना अधिक सरल और कम भयावह है। इस नोट के लिखने में हमें Horace Wyndham की Crimnology पुस्तक से सहायता मिली है।

× × ×

३. तीन पुरुष-रत्नों का स्वर्गवास

महाराज चंद्रशमसेर राना नेपाल-राज्य, महाराज सर मनींद्रचंद्र नंदी कासिमबाज़ार-नरेश एवं बंबई के श्रीनरोत्तममुरारजी-गोकुलदास के स्वर्गवास से भारत की जो हानि हुई है, उसकी पूर्ति शीघ्र होना कठिन है। उपर्युक्त तीनों ही पुरुषरत्नों का कार्यकलाप भिन्न-भिन्न प्रकार का था, परंतु अपने-अपने ढंग से तीनों ही स्वदेश का हितसंपादन करते थे। हम तीनों के ही स्वर्गवास से दुखी हैं और ईश्वर से प्रार्थना करते हैं कि परलोक में वह उनकी आत्मा की सद्गति करें एवं दुखी कुटुंबों को इस कष्ट के सहने की शक्ति दे। यहाँ पर हम तीनों ही पुरुष-रत्नों का संक्षिप्त परिचय देते हैं—

महाराजा चंद्रशमसेर राना

इनका जन्म सन् १८६३ में हुआ था। इनके पिता का नाम जनरल धीरशमसेर था। जब यह ६ वर्ष के हुए, तो इन्हें अँगरेज़ी शिक्षा दी जाने लगी। अपने घर में पढ़कर पहलेपहल मैट्रीकुलेशन परीक्षा इन्होंने पास की थी। इनका विचार और भी आगे पढ़ने का था, पर इसी बीच में इनके पिता की मृत्यु हो गई। इसके बाद नेपाल-राज्य में क्रम-क्रम से इन्होंने सैनिक विभाग, वैदेशिक विभाग एवं नगर-निर्माण-विभाग में उच्च पदों पर काम किया। जब इनके बड़े भाई का देहांत हुआ तो यह नेपाल के सर्व-प्रधान सेनापति हो गए और इसके बाद प्रधान अमात्य का पद भी इनको मिला। ब्रिटिश-सरकार से महाराज चंद्रशमसेर की बहुत बड़ी घनिष्ठता थी। महाराज सप्तम एडवर्ड के राजगद्दी बैठने पर दिल्ली में जो दरबार हुआ था, उसमें महाराज उपस्थित थे। लार्ड कर्जन ने जब तिब्बत को कमीशन भेजा था, तो इन्होंने सरकार की बड़ी मदद की थी। सन् १६०८ में इन्होंने इँगलैंड की भी यात्रा की थी और उस समय वहाँ इनका बड़ा

महाराज चंद्रशमसेर जंग राना

सम्मान हुआ था। सन् १९११ में जो द्वितीय दिल्ली-दरबार हुआ था, उसमें स्वतंत्र नरेश के प्रतिनिधि होने के कारण स्वयं उपस्थित नहीं हुए थे, परंतु तराई में इन्होंने महाराज जार्ज को शिकार खिलाई थी। नेपाल में दासताप्रथा का अंत महाराज चंद्रशमसेर जंग के ही उद्योग से हुआ। इसमें राज्य को छत्तीस-सतीस लाख रुपया व्यय करना पड़ा। सती-प्रथा को भी महाराज ने नेपाल में बंद कर दिया। इन्होंने राज्य में आधुनिक ढंग के न्यायालय बनवाए एवं एक आयुर्वैदिक कालेज भी स्थापित किया। सड़कों, पुलों एवं आने-जाने के अन्य साधनों में महाराज ने ऐसे ढंग से सुधार किया, जिससे व्यापार में बहुत अधिक सुविधा हो गई है। विगत महासमर में महाराज ने अँगरेज़-सरकार की दिल खोलकर मदद की, जिसके फलस्वरूप सन् १९२३ में इँगलैंड और नेपाल के बीच नई संधि स्थापित हो गई।

महाराज सर मनींद्रचंद्र नंदी

महाराज मनींद्रचंद्र नंदी का जन्म सन् १८६० में हुआ था। गद्दी पर बैठने के बाद से अपनी मृत्यु तक इन्होंने शिक्षा-विस्तार के लिये एक करोड़ रुपए दान किया। आधुनिक भारत में अकेले एक पुरुष ने शायद ही इतना रुपया व्यय किया हो। बरहामपुर में इन्होंने अपने मामा के नाम पर एक कालेज खोल रक्खा था और उसमें पचास हज़ार रुपया प्रतिवर्ष ख़र्च करते थे। इसके अतिरिक्त अन्य कितने ही स्कूलों, कालेजों, अस्पतालों आदि को इनसे मासिक सहायता मिला करती थी। अनेक विद्यार्थी इनसे छात्रवृत्ति पाकर विद्योपार्जन करते थे। इन्होंने हिंदू विश्वविद्यालय को एवं बोस-इंस्टीट्यूट को एकमुश्त दो-दो लाख रुपए का दान दिया। महाराज कासिमबाज़ार को संस्कृत-साहित्य से बड़ा प्रेम था। आप संस्कृत कालेज के ५० विद्यार्थियों की फ़ीस देते थे एवं ग़रीब परीक्षार्थियों की और भी सहायता कर दिया करते थे। संस्कृत के विद्वान् पंडितों के द्वारा, महाराज कासिमबाज़ार संस्कृत-ग्रंथों का अनुवाद और संपादन-कराया करते थे। साहित्य-सम्मेलन की नींव भी महाराज की ही डाली है।

श्रीनरोत्तममुरारजी-गोकुलदास

श्रीनरोत्तममुरारजी-गोकुलदास बड़े ही कुशल व्यापारी और अर्थशास्त्र के गंभीर ज्ञाता थे। इनको बालचर-आंदोलन से बड़ा प्रेम था। राजनीति में इनके विचार लिबरलों के विचारों से मिलते थे। गत वर्ष जेनोआ में जो मज़दूर-सम्मेलन हुआ था, उसमें आप भारतीय मज़दूरों के प्रतिनिधि होकर गए थे। सरकार से भी आपकी ख़ूब पटती थी और आवश्यकता के अवसरों पर इन्होंने सरकार की पूरे तौर से सहायता भी की थी। सींधिया स्टीम नैवीगेशन कंपनी को खोलकर आपने बहुत बड़ी ख्याति प्राप्त की। आपका जन्म सन् १८७७ में हुआ था और आपने बंबई के एल्फ़िंस्टन कालेज में शिक्षा पाई थी। मिलों के संचालन में आपका बहुत बड़ा नाम था। बंबई में कालबादेवी रोड पर आपने मोरारजी क्लाथ मार्केट भी खोली थी। निदान जहाँ नरोत्तममुरारजी-गोकुलदास व्यापार के राजा थे, वहाँ स्वदेशभक्ति के भाव भी उनमें ख़ूब थे। प्रत्येक प्रगतिशील राजनीतिक आंदोलन में वह भाग भी लेते थे और धन द्वारा उसकी सहायता भी करते थे।

× × ×

४. खेती की उन्नति

अभी उस दिन प्रयाग में विज्ञान-कांग्रेस का अधिवेशन धूम-धाम के साथ संपन्न हो गया। इस कांग्रेस की एक शाखा में कृषि से संबंध रखनेवाली बातों पर विचार किया गया। इस शाखा के सभापति मिस्टर जी० क्लार्क महोदय थे। आप युक्तप्रांतीय कृषि-विभाग के डाइरेक्टर हैं। आपने सभापति की हैसियत से जो भाषण दिया है, वह बड़ा ही महत्त्वपूर्ण है। जो लोग कृषि-कार्य में दिलचस्पी रखते हैं, उन्हें इस भाषण को ध्यानपूर्वक पढ़ना चाहिए और कृषि की उन्नति के लिये इसमें जो उपाय बतलाए गए हैं, उनकी परीक्षा करके लाभ उठाना चाहिए।

क्लार्क महोदय का कहना है कि संसार में इस समय जनसंख्या प्रतिवर्ष २ करोड़ के हिसाब से बढ़ रही है। जिस हिसाब से जन-संख्या में वृद्धि हो रही है, उसी हिसाब से यदि खाद्य सामग्री की उत्पत्ति में वृद्धि न होगी, तो एक समय ऐसा आवेगा, जब लोग भूखों मरने लगेंगे। यह प्रश्न विश्व-व्यापक है और भारत उसका अपवाद नहीं हो सकता। भारत में कृषि-कार्य के करने वालों की संख्या बहुत बड़ी है। भारत में जो भूमि खेती के काम में लाई जा रही है, उसको छोड़कर अभी बहुत-सी

भूमि ऊसर के रूप में पड़ी है। इस बेकाम ज़मीन का कुछ अंश खेती के काम का बनाया जा सकता है। परंतु मुख्य प्रश्न का सुधार नई भूमि को खेती के काम में लाने से न होगा। इस समय जो भूमि खेती के काम में लाई जाती है, उसकी उपज-शक्ति बढ़ाने से उतनी ही भूमि में अधिक पैदावार हो सकती है। उपज-शक्ति बढ़ाने के लिये यह आवश्यक है कि भूमि में जो नाइट्रोजन का अंश मौजूद है, वह घटने न पावे एवं खाद आदि के द्वारा उसकी वृद्धि की जाय। भूमि में नाइट्रोजन जितना ही अधिक होगा, पैदावार भी उतनी ही अधिक होगी। क्लार्क साहब का कहना है कि उन्होंने अनुभव से जाना है कि थोड़े ही परिश्रम से पैदावार बढ़ाई जा सकती है। युक्तप्रांत की भूमि बहुत अच्छी है। उसकी देखरेख सहज में हो सकती है। पैदावार बढ़ाने के वैज्ञानिक प्रयोगों का प्रभाव भी इस प्रांत की भूमि पर बहुत शीघ्र होता है। इसके अतिरिक्त खेती के लिये काम करने-वाले मनुष्यों की भी कमी नहीं है। यहाँ के किसानों के समान मितव्ययी और कार्यदक्ष किसान संसार में और कहीं भी नहीं दिखलाई पड़ते हैं। यह सब बातें पैदावार बढ़ाने के मार्ग में परम सहायक हैं। हाँ, यहाँ के किसानों में अज्ञान और अच्छे स्वास्थ्य का अभाव ज़रूर है। आवश्यकता इस बात की है कि खेतिहरों को ग्राम्य-जीवन के उपयुक्त शिक्षा दी जाय। क्लार्क साहब सनई की हरी खाद को बहुत उपयोगी बतलाते हैं। खाद और वैज्ञानिक ढंग से खेती करने से पैदावार में कहाँ तक वृद्धि हो सकती है, इसके कुछ उदाहरण भी भाषण में मौजूद हैं। सन् १७७९ के पूर्व इँगलैंड में गेहूँ की पैदावार फ़ी एकड़ ७ मन थी। इसके बाद जब कुछ सुधार किए गए, तो वह प्रति एकड़ १४ मन के हिसाब से हो गई। सन् १८४० तक यही दशा रही। इसके बाद कुछ और सुधार किए गए। परिणाम यह हुआ कि इस समय इँगलैंड में एक एकड़ में २० मन गेहूँ पैदा होता है। सन् १९२६ में सारे संसार में गेहूँ की पैदावार बहुत अच्छी हुई थी। पैदावार की दृष्टि से बेल्जियम सबसे आगे बढ़ा रहा। वहाँ प्रति एकड़ २६ मन गेहूँ पैदा हुआ। इसके बाद इँगलैंड का नंबर आया। वहाँ की पैदावार २२ मन प्रति एकड़ रही। जर्मनी ने १७½ मन प्रति एकड़ पैदा किया। फ़्रांस और कनाडा ने प्राय: १३ मन। युक्तप्रांत की पैदावार १२ मन प्रति एकड़ रही और अमेरिका की १० मन। मिस्टर क्लार्क ने शाहजहाँपुर के फार्म में २४ और २८ मन तक प्रति एकड़ पैदा किया है। इन अंकों से यह स्पष्ट है कि यदि उद्योग किया जाय, तो इस समय जितनी भूमि खेती के काम में आ रही है, उसी में दुगनी पैदावार उत्पन्न की जा सकती है। अवश्य ही इसमें प्रारंभ में कुछ व्यय होगा, पर क्लार्क साहब का कहना है कि यह व्यय ऐसा है, जो तुरंत आयरूप में अधिक परिमाण में मिल जाता है। ऐसे व्यय में किसी को हिचकिचाहट न होनी चाहिए। क्लार्क साहब का मत है—फ़सल की बाढ़ के लिये जो मौसम उपयुक्त है, वह अल्प समय का होता है, जिससे विकास का पूरा अवसर नहीं मिलता है। इस-लिये आवश्यकता इस बात की है कि भूमि में ऐसी खाद दी जाय, जो फ़सल को शीघ्र विकास की अवस्था में पहुँचा दे। एवं बीज भी ऐसा हो, जो स्वल्पकाल में पूर्ण वृद्धि प्राप्त कर ले। क्लार्क साहब का विश्वास है कि वैज्ञानिक रीति से यदि जुताई, खाद, बीज आदि का प्रयोग किया जाय, तो पैदावार दूनी से भी अधिक हो सकती है। हमारे प्रांत के किसानों और ज़मींदारों को मिस्टर क्लार्क के अनुभवों से लाभ उठाना चाहिए।

× × ×

५. बाल-साहित्य

हिंदी में इस समय बालोपयोगी साहित्य का प्रकाशन अच्छे ढंग से हो रहा है। बालकों की रुचि को लक्ष्य में रखकर सुंदर और सचित्र पुस्तकें निकल रही हैं। इनके पढ़ने से बालकों का मनोरंजन और ज्ञान-वर्द्धन साथ-साथ होता है। 'शिशु', 'खिलौना', 'बालक' और 'बालसखा' नाम के चार मासिक पत्र भी बालकों के लिये निकल रहे हैं। इन पत्रों में बालोपयोगी साहित्य प्रचुर परिमाण में रहता है। शिशु और खिलौना बहुत छोटे बालकों के लिये निकलते हैं। दोनों ही पत्र बहुत सुंदर हैं। खिलौना ख़ूब लोकप्रिय है, परंतु 'शिशु' का संपादन भी हमें बहुत पसंद है। 'बालक' और 'बाल-सखा' बड़े बालकों के लिये उपयोगी पत्र हैं। 'बालक' बालकों में राष्ट्रीयता के बीज वपन करने का भी उद्योग करता है। 'बालसखा' में मनोरंजन के साथ-साथ बालसुलभ गंभीरता भी है। हम हृदय से इन चारों पत्रों की उन्नति चाहते हैं। बालिकाओं के लिये भी कुछ

पत्रिकाएँ निकलती हैं, परंतु उनमें प्रौढ़ा स्त्रियों के उपयुक्त साहित्य भी रहता है। केवल बालिकाओं के मनोरंजन के उपयुक्त एक अच्छी पत्रिका की अब भी हिंदी में आवश्यकता है।

तीन जनवरी सन् १९३० के लीडर पत्र में (Books children like best) 'वे पुस्तकें जिन्हें बालक बहुत पसंद करते हैं'-शीर्षक एक नोट प्रकाशित हुआ है। यहाँ पर हम उक्त नोट का सारांश देते हैं। जो सज्जन बालकोपयोगी साहित्य का निर्माण कर रहे हैं, अथवा जो संपादक बालकोपयोगी पत्रों का संपादन करते हैं, उनसे हमारी प्रार्थना है कि उक्त नोट में प्रकट किए गए भावों से लाभान्वित होकर यदि वे बालसाहित्य का निर्माण और संपादन करें, तो बहुत अच्छा हो।

इँगलैंड के वेल्शप्रांत के दो अध्यापकों ने बाल-रुचिकर पुस्तकों के संबंध में एक जाँच की। जाँच का उद्देश्य यह था कि वे एक ऐसी योजना तैयार करें, जिसके अनुसार ऐसी पुस्तकें लिखी जायँ, जो बालकों को रुचिकर हों। वे यह भी जानना चाहते थे कि चित्रों में बालकों का अनुराग कहाँ तक है, एवं चित्रों के कारण अन्य पुस्तकों की अपेक्षा सचित्र पुस्तकों का प्रभाव बालकों पर क्या पड़ता है। इन अध्यापकों ने जो पहली जाँच की, वह केवल दो स्कूलों से संबंध रखती थी। परंतु उनकी दूसरी जाँच में सात से पंद्रह वर्ष की अवस्था वाले १७ स्कूलों के ३,३५७ बालकों की रुचि का विश्लेषण है। इस दूसरी जाँच को इन अध्यापकों ने एक पुस्तिका के रूप में प्रकाशित किया है।

अध्यापकों का कहना है—

(१) बालकों के लिये संसार-व्यापी बातों में दिलचस्पी उत्पन्न करानेवाली जो पुस्तकें बनाई जायँ, उनमें क्रिया-शीलता और साहस के भावों का प्राधान्य होना चाहिए।

(२) १० और ११ वर्ष के बालक सचित्र कहानियों की पुस्तकें चाव के साथ पढ़ते हैं।

(३) साधारण बालकों में पुराने ढंग की कथा-कहानियों की पुस्तकों के पढ़ने का चाव नहीं है।

(४) बालकों में सनसनी उत्पन्न करानेवाली कहानियों और फ़िल्म में दिखलाई जानेवाली कथाओं के पढ़ने का उत्साह अधिक है।

(५) पद्य-संग्रह पढ़ने में बालकों का अनुराग नहीं है।

(६) वैज्ञानिक प्रगति और अन्वेषणों से संबंध रखनेवाली बालोपयोगी पुस्तकों की कमी है।

ऊपर जो निष्कर्ष दिए गए हैं, वे उन उत्तरों के आधार पर हैं, जो उक्त अध्यापकों ने बालकों से अपने प्रश्नों के उत्तर में पाए हैं। छोटे बालक अधिकतर जानवरों का हाल पढ़ना पसंद करते हैं। बड़े बालकों का रुचि साहसपूर्ण कथाओं के पढ़ने में अधिक है। केवल चित्रमय पुस्तकों के पढ़ने में बालकों का अनुराग कम है।

भारत और इँगलैंड के बालकों की रुचि में भिन्नता का होना स्वाभाविक है। ऐसी दशा में भारतीय बालकों की रुचि भी वही है, जो विदेशी बालकों की, यह निश्चय-पूर्वक नहीं कहा जा सकता है। आवश्यकता इस बात की है कि जैसे वेल्श के अध्यापकों ने अपने देश के बालकों की रुचि जानने का उद्योग किया है, वैसे ही भारत में भी जाँच की जाय और तदनुसार पुस्तकें बनवाई जायँ। इस समय शिक्षा भी एक वैज्ञानिक विषय बन गई है। इसलिये यदि भारतवासी अपने बालकों की यथार्थ मानसिक उन्नति चाहते हैं, तो उनकी रुचि के अनुकूल मनोरंजक साहित्य निर्माण करके ही इसमें सफलता हो सकती है। हिंदी में भी बाल-साहित्य का निर्माण इसी भित्ति पर होना चाहिए।

× × ×

६. मिसर के मृत राजा का शाप

सुदूर आफ़्रिका महाद्वीप में इजिप्ट अथवा मिसर देश आज भी मौजूद है। इतिहास के पाठकों से यह बात छिपी नहीं है कि किसी समय संसार के सभ्य देशों में इसका स्थान प्रमुख था। मिसर का पूर्वगौरव और अभ्युदय अभूतपूर्व था। आज भी उस समृद्धि के स्मृति-चिह्न इमारतों और मूर्त्तियों के रूप में उक्त देश में मौजूद हैं। पुरातत्त्व के पंडितों ने इन स्मृतिचिह्नों का पूर्ण अध्ययन किया है। उनके आधार पर बड़े-बड़े ग्रंथ लिखे गए हैं। इस प्रकार मिसर देश का इतिहास बहुत कुछ प्रकाश में आ गया है। प्राचीन मिसर-निवासियों में शव को समाधिस्थ करने का एक विशेष विधान था। शव में ऐसे मसाले लगाए जाते थे, जिनके प्रभाव से वे बिगड़ते न थे। आज ५,००० वर्ष के पुराने शव मिसर

देश में मिले हैं, जो उसी रूप में मौजूद हैं, जिस रूप में वे रक्खे गए थे। शव के साथ वह सब सामान भी रक्खा जाता था, जो जीवितावस्था में उन प्राणियों को आवश्यक होता था। राजाओं के शवों के साथ राजोचित सामग्री रक्खी जाती थी। मिसर में एक ऐसा सुरक्षित स्थान है, जिसे राजाओं की घाटी के नाम से पुकारते हैं। इस घाटी में मिसर के प्राचीन राजाओं के शव समाधिस्थ हैं। वर्तमान काल में पुरातत्व के अन्वेषकों ने इस समाधिस्थल को भली भाँति खोदकर देखा है। वहाँ पर जो सामग्री उपलब्ध हुई है, उससे वहाँ की सभ्यता का इतिहास लिखने में बड़ी सहायता मिली है। शव के साथ उपलब्ध वस्तुओं में किसी-किसी पर मृत राजा के जीवनकाल की घटनाओं का भी उल्लेख है।

सन् १६२३ की बात है। राजाओं की उसी घाटी में सन् ईसवी के १३५३ वर्ष पूर्व होनेवाले एक युवक राजा टुटांखेमन की समाधि मिल गई। यह समाधि बिलकुल अपने उसी रूप में पाई गई, जिस रूप में बनाई गई थी। राजा के शव के अलावा इसमें और भी बहुत-सी बहुमूल्य सामग्री मिली। बहुत-से बर्तन, मूर्त्तियाँ और कपड़ों से भरे संदूक़ मिले, जिनको देखकर उस समय की कारीगरी की मुक्तकंठ से सराहना करनी पड़ती है। कई तश्तरियों में तो मिठाई भी रक्खी मिली। कई आबख़ोरे ऐसे मिले जिनमें रक्खे गए द्रव पदार्थों की सुगंध उस समय तक मौजूद थी। कहाँ तक कहा जाय सूखे फूलों के गुच्छे भी मिले। समाधिस्थल की दीवारों पर एवं वहाँ रक्खी मूर्त्तियों पर राजा की जीवन-घटनाओं के लेख भी पाए गए। इस खोज से पुरातत्व-संसार में तहलका मच गया। उपलब्ध सामग्री के यथावत् चित्र संसार की बड़ी-बड़ी पत्रिकाओं में निकले और इस खोज के संबंध में पुस्तकें भी प्रकाशित हुईं। इस अन्वेषक दल के प्रधान लार्ड कारनरवान थे। उपलब्ध सामग्री का अधिकांश जहाज़ के द्वारा इँगलैंड पहुँचाया गया और वहाँ वह आज भी मौजूद है।

मिसर देश में यह बात प्रसिद्ध है कि मृत राजाओं के समाधिस्थल में जो कोई गड़बड़ी करता है—उसे स्थानांतरित करता है—उसका अनिष्ट अवश्यंभावी है। विश्वास यह है कि इन शवों में कोई ऐसी पारलौकिक शक्ति भर दी जाती है जो समाधिस्थल में गड़बड़ी करने वाले का सर्वनाश कर देती है। ऊपर जिस राजा की समाधि का उल्लेख किया गया है उसमें प्रवेश करने का गौरव सर्वप्रथम लार्ड कारनरवान को प्राप्त हुआ। लार्ड महोदय के दल में १० व्यक्ति प्रधान थे। लोगों का कुतूहल बढ़ रहा था कि देखें, इन अन्वेषकों का अनिष्ट होता है या नहीं। समाधि-प्रवेश के ठीक डेढ़ महीने बाद लार्ड महोदय मशकदंशन से पीड़ित हुए। पूर्ण उद्योग के साथ चिकित्सा की गई; पर आपका देहांत हो गया। इस घटना का लोगों पर बड़ा प्रभाव पड़ा। धीरे-धीरे दशों प्रमुख अन्वेषकों का देहांत होने लगा। इन सबकी मृत्युओं में एक विशेषता यह हुई कि अन्वेषक यकायक बीमार हुआ और मर गया। हाल में लार्ड कारनरवान के सेक्रेटरी और लार्ड वेस्टबरी के एकमात्र पुत्र और उत्तराधिकारी ऑनरेब्ल रिचर्ड बेथेल की ४५ वर्ष की अवस्था में मृत्यु हो गई। जिस दिन आपकी मृत्यु हुई, उसके प्रातःकाल तक आप भले चंगे थे, परंतु बाद को जब आपका नौकर आपके कमरे में गया तो देखा कि आप बिस्तरे पर मरे पड़े हैं। रिचर्ड महोदय के शाप-ग्रस्त होने का भय गत वर्ष से किया जा रहा है। आपने अपने मकान में वह बहुत-सी बहुमूल्य सामग्री रख छोड़ी थी जो समाधिस्थल में मिली थी। गत वर्ष इनके मकान पर कई प्रकार के उपद्रव दृष्टिगत हुए। जहाँ वह सामग्री रक्खी थी वहाँ पर कई बार अकारण और अज्ञेय रूप से आग लग गई। दहकते हुए अंगारे गद्दे के नीचे पाए गए। बहुमूल्य परदों और कालीनों पर आग से झुलसे हुए दाग देखे गए। रक्खी हुई सामग्री इधर-उधर बिखरी पाई गई। रिचर्ड महोदय इस उपद्रव से डरे नहीं, बरन् उन्हें अपने नौकर पर संदेह हुआ। उनका ख़याल था कि सारी शरारत उसी की है। इसी प्रकार हाल ही में कोलबंस में मोटर दुर्घटना के कारण डाक्टर जोनाथन कार्वर की भी मृत्यु हो गई। आप भी अन्वेषकों में प्रमुख थे। इस प्रकार इन पाँच-छः बरसों के भीतर प्रायः सभी अन्वेषक आकस्मिक घटनाओं के वशीभूत होकर परलोकवासी हो गए हैं। योरप के बहुत लोगों का ख़याल है कि ये मृत्युएँ मृत राजा के शाप के कारण ही हुई हैं।

× × ×

७. क्षत्रिय-युवक

इस नाम का एक साप्ताहिक पत्र हाल ही में लखनऊ से प्रकाशित होने लगा है। यह अखिल भारतीय क्षत्रिय-युवक-संघ का मुख्य पत्र है। इसके संपादक श्रीसुखदयालुजी भट्ट हैं। इसमें 'प्रताप' के आकार के २० पृष्ठ रहते हैं। वार्षिक मूल्य ३) तथा पत्र के मिलने का पता "व्यवस्थापक क्षत्रिय-युवक, जगदीश-प्रेस चारबाग़ लखनऊ" है।

यद्यपि पत्र का नाम देखने से जान पड़ता है कि वह सांप्रदायिक होगा, परंतु सर्वांश में उसे सांप्रदायिक कहना ठीक नहीं है। इधर पत्र की जितनी संख्याएँ प्रकाशित हो चुकी हैं उनको देखते हुए वह होनहार जान पड़ता है। समाचारों का संग्रह श्रमपूर्वक किया जाता है और लेख और कविताएँ भी पर्याप्त परिमाण में दी जाती हैं। पत्र की नीति उदार जान पड़ती है। हम हृदय से इस पत्र की उन्नति चाहते हैं।

× × ×

८. भूल-सुधार

इस संख्या में 'क़ैदी'-शीर्षक जो कविता छपी है वह द्वितीय सर्ग का उत्तरार्द्ध है, प्रथम का नहीं। पर छपना चाहिए था प्रथम सर्ग का उत्तरार्द्ध। आगामी संख्या में प्रथम सर्ग का उत्तरार्द्ध तथा द्वितीय सर्ग का पूर्वार्द्ध छपेगा। पाठकगण कविता को उसी क्रम से मिलान करके पढ़ें और इस भूल के लिये हमें क्षमा करें।

इसी प्रकार गतांक में प्रकाशित पं० जवाहरलालजी की जीवनी में उनके श्वसुर का जो नाम छपा है, उसके स्थान में पं० जवाहरलाल कौल होना चाहिए। इस बात को भी पाठकगण नोट कर लें।

कोई घर ऐसा न रहे

जिसमें विना अनुपान की दवा सुधासिंधु की एक शीशी मौजूद न हो, क्योंकि यह घर में अचानक होनेवाली बीमारियाँ जैसे कफ, खासी, हैज़ा, दमा, शूल, संग्रहणी, अतिसार, पेट दर्द, क़ै, दस्त, ठंड का बुखार, बालकों के हरे-पीले दस्त, क़ै करना और दूध पटक देने की एकमात्र दवा है। नक़ली दवाओं से सावधान रहिए। यदि आपने अब तक ख़रीदकर नहीं रक्खा है तो आज ही मँगाने को हमारे पास लिखिए। क़ीमत फ़ी शीशी ॥) डा० ख़० ।=) आना

शरीर में स्फूर्ति और बल बढ़ाने के लिये स्वादिष्ठ मीठा अंगूरी दाखों से बना

सेवन कीजिए, जाड़े के दिनों में इसकी खास जरूरत है। भूख बढ़ती है, दस्त साफ़ होता है, शरीर में नई जवानी का संचार होता है। शरीर में ख़ून और मांस बढ़ता है। क़ीमत छोटी बोतल १) रु०, बड़ी २) रु० डाकख़र्च जुदा।

हमारी दवाइयाँ सब दवा बेचनेवालों के पास मिलती हैं।

दवाओं पर "सुख संचारक कंपनी" का नाम देखकर खरीदिए।

मँगाने का पता—सुखसंचारक कंपनी, मथुरा.
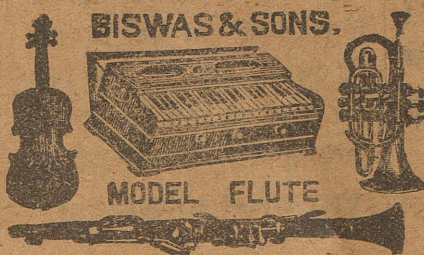
कलकत्ता वाद्य स्टोर

हमारे यहाँ हर प्रकार के बाजे सस्ते दामों पर मिलते हैं। सचित्र सूचीपत्र पत्र आने पर भेजा जाता है।

माडेल फ्लूट हारमोनियम ३ सप्तक सिंगल रीड २०), २५), ३५)
डबल रीड ३५), ४०), ४५), ५०)

और-और क़िस्म के बाजे २५) से ३५०) तक

१०) पेशगी भेजकर ऑर्डर दीजिए।

३४

मिलने का पता—बिश्वास ऍड संस, ५, लोअर चितपुर रोड, (ल) कलकत्ता.

Registered No. A. 1127.

श्रीकेसरीदास सेठ द्वारा नवलकिशोर-प्रेस, लखनऊ में मुद्रित तथा प्रकाशित